भूदान-गंगा

[सप्तम खण्ड]

(१५ मई '५७ से १३ अक्तूबर '५७ तक)

वि नो बा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
रा ज घा ट, वा रा ण सी

प्रकाशक :
पूर्णचन्द्र जैन,
मंत्री, अखिल भारत सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी

पहली बार : २,०००
अगस्त, १९६२
मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे

मुद्रक :
बलदेवदास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, वाराणसी

केरल-पदयात्रा

नि वे द न

पूज्य विनोवाजी की भूदान-पदयात्रा के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर 'भूदान-गंगा' रूपी संकलन तैयार किये गये हैं। संकलन के काम में पूज्य विनोवाजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से भूदान-गंगा की धारा प्रवाहित हुई। देश के विभिन्न भागों में होती हुई यह गंगा सतत बह रही है।

'भूदान-गंगा' के छह खण्ड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पहले खण्ड में पोचमपल्ली से दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा बिहार का कुछ काल यानी सन् '५२ के अन्त तक का काल लिया गया है। दूसरे खण्ड में बिहार के शेष दो वर्षों का यानी सन् '५३ और '५४ का काल लिया गया है। तीसरे खण्ड में बंगाल और उत्कल की पदयात्रा का काल यानी जनवरी '५५ से सितम्बर '५५ तक का काल लिया गया है। चौथे खण्ड में उत्कल के बाद की आन्ध्र और तमिलनाड़ में कांचीपुरम्-सम्मेलन तक की यात्रा यानी अक्तूबर '५५ से ४ जून '५६ तक का काल लिया गया है। पाँचवें खण्ड में कांचीपुरम्-सम्मेलन के बाद की तमिलनाड़-यात्रा का ता० ३१-१०-'५६ तक का काल लिया गया है। छठे खण्ड में कालड़ी-सम्मेलन से पहले तक का यानी ७-५-'५७ तक का काल लिया गया है। इस सातवें खण्ड में कालड़ी-सम्मेलन के बाद की केरल-यात्रा तथा कर्नाटक प्रदेश के ४-५ पड़ावों की यानी ता० १३ अक्तूबर '५७ तक की यात्रा का काल लिया गया है। कालड़ी-सम्मेलन के समय पूज्य विनोवाजी के जो विविध भाषण हुए थे, वे सब कालड़ी-सम्मेलन रिपोर्ट पुस्तक में संकलित हैं।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें पुनरुक्तियाँ भी दीखेंगी; किन्तु रस-हानि न हो, इस दृष्टि से उन्हें चलने दिया है। संकलन का आकार अधिक न बढ़ने पाये, इस ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि इसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना चाहिए। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. संपत्तिदान-यज्ञ, ४. शिक्षण-विचार, ५. ग्राम-दान, ६. मोहब्बत का पैगाम, ७. नगर-अभियान, ८. प्रेरणा-प्रवाह, ९. कार्यकर्ता क्या करें, १०. स्त्री-शक्ति, ११. शान्ति-सेना आदि पुस्तकों को 'भूदान-गंगा' का पूरक माना जा सकता है।

भूदान-गंगा का आठवाँ खण्ड कर्नाटक की पदयात्रा के काल का होगा। वह प्रेस में है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना!

—निर्मला देशपांडे

भूदान-गंगा

(सप्तम खण्ड)

सर्वोदय और साम्यवाद

: १ :

सर्वोदय और कम्युनिज्म

प्रश्न : क्या कम्युनिज्म और सर्वोदय में केवल साधन का ही फर्क है? साधन और साध्य में हम चूँकि बहुत फर्क नहीं करते, इसलिए क्या सर्वोदय में साध्य की प्राप्ति के लिए अपनी युक्ति कुछ बदल सकते हैं?

उत्तर : कम्युनिज्म भी परिस्थिति के अनुसार बदलता जा रहा है। अगर वैसा नहीं बदलेगा, तो वह चलेगा ही नहीं। जिस तरह मार्क्स ने कम्युनिज्म का वर्णन किया, ठीक उसी तरह वह रूस में नहीं चला। जिस तरह रूस में चला, ठीक उसी तरह चीन में नहीं चला। हिंदुस्तान में तो एक अद्भुत ही घटना हुई है। केरल प्रदेश में कम्युनिस्टों के हाथ में वैधानिक तरीके से राज्य आया है और उन्होंने जाहिर किया है कि हम सवैधानिक तरीके से ही उसे चलायेंगे। उन्होंने यह भी जाहिर किया है कि अगर संविधान में कुछ फर्क करने की जरूरत पड़ेगी, तो हम उसके लिए कोशिश करेंगे। इस तरह प्रयत्न करने का हरएक को हक है। जब से संविधान बना, तब से उसमें कुछ फर्क होता भी आया है। जब वे कहते हैं कि बने हुए संविधान के अनुसार या उसमें जो फर्क होगा, उसके अनुसार हम राज्य चलायेंगे, तो हम उनका हृदय से अभिनन्दन करते हैं। अगर वे ऐसा न करते और लकीर के फकीर बन जाते, तो कोई चीज न बनती। यही तरीका है, जिससे कोई चीज चलायी जाती है। हमें समझना चाहिए कि जैसे गणित शास्त्र में कोई परिवर्तन नहीं होता

वैसी हालत समाज शास्त्र या अर्थशास्त्र की नहीं है। उनमें देश, काल और परिस्थिति के अनुसार फर्क पड़ता है और वैसा फर्क करने को कम्युनिस्ट राजी हो जायँ, तब तो वे सर्वोदय के बहुत नजदीक आयेंगे।

सर्वोदय सबका हित चाहता है। दुःखी और गरीब लोगों की तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए, यह सर्वोदय का नियम ही है। परंतु वैसा करने के लिए दूसरों को कोई तकलीफ देने की जरूरत नहीं है। एक के हित के लिए दूसरे के हित को धक्का पहुँचाने की भी कोई जरूरत नहीं है। सर्वोदय का बुनियादी सिद्धांत यह है कि एक के हित के विरोध में दूसरे का हित हो नहीं सकता। आजकल 'क्लैश ऑफ इंटरेस्ट्स' (हित विरोध) की जो बात चलती है, वह गलत कल्पना है। लोग एक ही गाँव में रहते हैं, एक ही हवा लेते हैं, एक ही पानी पीते हैं, एक ही जमीन की फसल खाते हैं, अड़ोस पड़ोस में रहते हैं, तो किसी एक के दुःख से दूसरा कैसे बच सकता है? एक को दुःख हुआ, तो दूसरे को दुःख होना लाजिमी है। गाँव में किसी एक लड़के को चेचक हुई, तो दूसरे को उसकी छूत लगती है। किसी एक घर को आग लगी, तो सारा गाँव जल जाने की संभावना रहती है। इस तरह जब गाँव के सब लोग एक साथ रहते हैं, तो एक परिवार बनाकर रह सकते हैं। उसीमें सबका भला है। इसलिए जब हम कम्युनिज्म के बारे में सोचते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हरएक देश में उसका रूप अलग-अलग होगा।

साम्यवाद के साथ समझौता नहीं, सहयोग

प्रश्न : क्या कम्युनिज्म और सर्वोदय के बीच कोई समझौता या सहयोग हो सकेगा?

उत्तर : दोनों के बीच समझौता बिलकुल नहीं हो सकेगा, लेकिन सहयोग बहुत हो सकेगा। सर्वोदय अपना विचार नहीं बदलेगा, क्योंकि वह किसी विचार की प्रतिक्रिया नहीं है, वह स्वयं एक जीवन विचार है। कम्युनिज्म बदलता रहेगा, क्योंकि वह प्रतिक्रियारूप है।

यूरोप में जो कैपिटलिस्ट सोसाइटी बनी, उसके प्रतिक्रियारूप कम्युनिज्म बना। जो प्रतिक्रियारूप विचार है, वह स्वयमेव पूर्ण जीवन सिद्धांत नहीं बन सकता। वह तो हवा के झोंके के अनुसार बदलता जायगा। आप देखते हैं कि यहाँ पर वैधानिक साम्यवाद शुरू हुआ है, जो कम्युनिज्म का एक विकास है। कम्युनिस्ट ही अपना समझौता करने को राजी होंगे, क्योंकि उनके पास सार्वभौम दृढ सिद्धांत नहीं है। पूँजीवाद में जो दोष थे, उनकी प्रतिक्रिया उन्होंने बनायी। हिंदुस्तान की परिस्थिति यूरोप से बहुत भिन्न है। यहाँ धर्मभेद, जातिभेद, भाषाभेद आदि हैं। समाज कृषिप्रधान है, बहुसख्या कृषकों की है, मजदूरों की नहीं। यूरोप में उन्होंने सारा दारोमदार मजदूरों पर रखा था। वैसा यहाँ नहीं रख सकते। यहाँ मुख्य आधार किसानों पर रखना होगा तथा किसान और मजदूरों को एक मानना होगा। इसके अलावा हिंदुस्तान में जमीन का बड़ा मसला है। यहाँ और खासकर केरल में जमीन बहुत कम है और जनसख्या ज्यादा है। यूरोप के समान यहाँ पूँजीवाद इतना विकसित नहीं हुआ है। उस हालत में कम्युनिज्म ही अपना समझौता करता जायगा। इसलिए सर्वोदय उसके साथ सहयोग करने को तैयार होगा। जितना वह अपना रूप बदलेगा और सर्वोदय के नजदीक आयेगा, उतना सर्वोदय उसके साथ सहयोग के लिए तैयार होगा।

समझौते का अर्थ है, आप कुछ छोड़ो, हम कुछ छोड़ते हैं। इस तरह यहाँ नहीं होगा। आप कुछ छोड़ो, हम कुछ नहीं छोड़ेंगे, तो फिर आपका और हमारा सहयोग होगा। इस तरह हमारी स्थिति कायम रहेगी और उनकी स्थिति बदलती रहेगी। इसलिए हमने कहा कि धीरे धीरे कम्युनिज्म की नदी सर्वोदय के समुद्र में मिल जायगी। दूसरी भी नदियाँ यहाँ आकर मिल जायँगी। समाजवाद, कल्याणकारी राज्य आदि भी आखिर अपने को समाप्त करके सर्वोदय में डूबेंगे।

हम साम्यवादियों को हजम करेंगे

प्रश्न : क्या अहिंसा, शराबबंदी आदि के काम में कम्युनिस्टों के साथ कोई समझौता या सहयोग हो सकेगा?

उत्तर : अहिंसा को समझौता करने की क्या जरूरत है ? जरूरत है हिंसावालों को हिंसा छोड़ने की। धीरे-धीरे वे उसे छोड़ेंगे। अभी कुछ साम्यवादी भाई पार्लियामेंट में हैं। वहाँ वे क्या करेंगे ? वहाँ जो बिल आयेगा उसे देखेंगे, उसमें कोई दोष है, तो वे दिखायेंगे। इस तरह दूसरे लोग भी दोष दिखायेंगे। और दोष नहीं है, तो बिल को मंजूरी देंगे। इस तरह उनका समझौता या सहयोग होगा। अच्छी चीज के साथ सहयोग देने के लिए वे राजी होंगे, तो क्या उस हालत में हम उनका सहयोग नहीं लेंगे ? दूसरी कुछ गलत बातें वे करते हैं, इसलिए क्या हम उनका सहयोग नहीं लेंगे ? ध्यान रहे कि दूसरों के साथ मेल करके उन्हें हजम करना सर्वोदय का धर्म है।

सर्वोदय कानून में फर्क लायेगा

प्रश्न : सर्वोदय-आन्दोलन देश के कानून में किस तरह फर्क लायेगा ?

उत्तर : सर्वोदयवाले चुनाव के लिए खड़े नहीं होते। हमारे जैसे कुछ तो ऐसे होते हैं, जो वोट देने भी नहीं जाते। तो, इन सबसे अलग रहकर ये कानून में बदल कैसे लायेंगे ? एक शख्स पेड़ पर नहीं चढ़ता, तो सवाल यह है कि वह पेड़ को कैसे काटेगा ? इसका उत्तर यही है कि वह पेड़ पर नहीं चढ़ता, उससे अलग रहता है, इसलिए उसे काट सकता है। सर्वोदय कानून के सारे पचड़े में नहीं पड़ता, इससे बाहर रहता है। इसलिए उसमें बदल कर सकता है। वह तो मालिक पर कब्जा कर लेगा। सरकार में जाकर कानून बनानेवाले नौकर हैं और आप सब हैं मालिक। हम नौकरों का कान क्यों पकड़ें ? मालिक जैसा चाहेंगे, वैसा कानून बनाया जायगा। यह ध्यान में रखना चाहिए कि लोकशाही में कुल सत्ता जनता के हाथ में रहती है। जनता की भावना बदल जाय, तो सरकार का कानून बदलेगा। अभी ग्रामदान मिलने लगे हैं। यद्यपि वे बहुत ज्यादा नहीं हैं, फिर भी ढाई हजार हैं और काफी अच्छे हैं। कम्युनिटी प्रोजेक्टवाले मंत्री हमारे पास आते हैं और पूछते हैं कि इसमें हम क्या मदद दें ? पहले वे कहाँ पूछते थे ? अब वे ही हमारे पास आते हैं। हम उनके पास नहीं गये। हमारी यात्रा अपने मार्ग से चलती है। वे पूछते हैं, तो हम कुछ

सलाह देते हैं। अब वे उस पर सोचने लगे हैं। तो, क्या वे अपनी योजना में फर्क नहीं करेंगे ? फर्क इसलिए करेंगे कि लोक-मानस बदलने लगा है। ग्रामदान प्राप्त हो रहे हैं। बहुत से लोगों का कहना है कि सरकार पर असर डालने के लिए पार्लियामेंट में जाकर कैद होना पड़ता है। हम वैसा नहीं समझते। हमारा मानना है कि जनता में जाकर कार्य करेंगे, तो पार्लियामेंट पर असर होगा। पार्लियामेंट पर प्रभाव डालने का साधन वहाँ जाकर आवाज उठाना ही नहीं है। यह एक छोटा उपाय है। बड़ा उपाय यह है कि देश में जन-आन्दोलन खड़ा करके जन शक्ति पैदा की जाय। फिर उसका असर सरकार पर पड़ता है। इसलिए सर्वोदय-आन्दोलन कानून में फर्क लाने की ताकत रखता है।

प्रश्न : क्या कानून की व्यवस्था बदले बिना समाज परिवर्तन किया जायगा ?

उत्तर : लोगों का दिमाग कैसा उलटा सोचता है ! उन्हें लगता है कि कानून बदलेगा, तब समाज बदलेगा—कानून में जन-समाज की रचना बदलने की ताकत है। आप ही देखिये कि आज तक कितने राजा महाराजा हुए ! उनकी कितनी सत्ताएँ चलीं ! उस-उस जमाने म उन्होंने कानून भी बनाये ! पर उन कानूनों का क्या आज कोई असर है ? जनता का काम अपने विचार से चल रहा है। आप अपने ही जीवन में देखिये कि किन किन कानूनों से आपका जीवन बना है। क्या माताएँ अपने बच्चों को किसी कानून के आधार से दूध पिलाती है ? दूध न पिलाने पर सजा होगी और पिलाने पर पद्मविभूषण जैसा कोई इनाम मिलेगा ? किस सरकार के कानून के कारण हिंदुस्तान के बहुत से लोग बिना स्नान किये खाना नहीं खाते ? जीवन की कितनी मुख्य चीजें कानून से बनी हैं ? बहुत सारे लोग चोरी नहीं करते, तो क्या कानून के कारण नहीं करते ? यह सही है कि चोरी करने से सजा मिलती है, पर लोग चोरी नहीं करते, इसका कारण यह है कि लोगों के हृदय में धर्म भावना पैठी हुई है। वे समझते हैं कि चोरी करना उचित नहीं है।

साम्यवादी सोचते हैं, हम करते हैं

प्रश्न : केरल में साम्यवादी शासन है। वे भी जमीन का प्रश्न हल करना चाहते हैं और आप भी। तो, दोनों की योजना में क्या फर्क है?

उत्तर : फर्क इतना ही है कि वे लोग सोच रहे हैं और बाबा कर रहा है। सोचने में और काम करने में जो फर्क है, वही इन दोनों योजनाओं में फर्क है।

हम जब उड़ीसा में घूमते थे, तब आंध्र की कम्युनिस्ट पार्टी ने घोषित किया था कि हमारी सरकार बनेगी, तो हम २० एकड़ तरी जमीन का सीलिंग करेंगे। पहाड़ खोदकर चूहा निकाला! अगर गोदावरी-कृष्णा के किनारे २० एकड़ तरी जमीन का सीलिंग वे बनायेंगे, तो भूमिहीनों को कुछ भी जमीन नहीं मिलेगी। वहाँ पर कम्युनिस्टों ने अपनी असलियत खो दी। उन्हें कहना चाहिए था कि हमारे हाथ में सत्ता आयेगी, तो हम जमीन की मालकियत मिटा देंगे। लेकिन वैसा वे नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे अपने को व्यवहारवादी बताते थे और बाबा को आदर्शवादी समझते थे। इसलिए वे सीलिंग के विचार में फँस गये। हम उनसे कहते हैं कि सीलिंग का विचार क्या करते हो, रॉशन कर दो। सबको काम मिलना चाहिए, इसलिए सबको जमीन मिलनी चाहिए। किसीको तिगुना, चौगुना क्यों मिले? पेटभर अन्न मिले, बस है। परन्तु ये लोग कहते हैं कि जितना पेटभर अन्न हो सकता है, उससे दुगुना, चौगुना खाने का अधिकार देंगे। मैं आपको योगशास्त्र की बात बता रहा हूँ। वह कहता है कि आधा पेट अन्न से भरना चाहिए, चौथाई पेट पानी से भरना चाहिए, चौथाई पेट हवा के लिए खाली रखना चाहिए। लेकिन ये लोग कहते हैं कि आर्थिक स्वत्व से तिगुनी जमीन रखने का अधिकार है। सर्वोदय कहता है कि जमीन सबको मिलनी चाहिए।

चालकुडी (केरल)
१२-५-'५७

इन्सान इन्सान से डरता है !

इस समय दुनिया जितनी भयभीत है, उतनी पहले कभी नहीं थी। छोटे देश तो हैं ही, बड़े-बड़े देश भी भयभीत है। यह भी कहा जा सकता है कि इस समय भय की सीमा हो चुकी है। भयानक शस्त्रास्त्रों का शोध हो रहा है, प्रयोग हो रहे हैं। यह सब किसके खिलाफ ? क्या जगल के जानवरों का डर है ? वे तो बेचारे कहाँ छिपे हैं, पता नहीं। एक जमाना था, जब जंगल के बहुत से जानवर दुनिया में घूमते थे, परन्तु मनुष्य ने काफी जगल साफ कर दिये हैं। परिणाम यह हुआ कि जंगल के प्राणी छिप गये। वे मनुष्य से डरते हैं। सौराष्ट्र के गिरनार के जगल में ४० ५० सिंह होंगे। मनुष्य चाहे तो सिंह की जाति ही दुनिया से नष्ट कर सकता है। परन्तु इससे उलटे मनुष्य यह कोशिश कर रहा है कि बेचारे सिंह जिंदा रहें। वह उन्हे सरक्षण देना चाहता है। याने अब जंगली जानवरों का भय नहीं रहा है।

तब ये सारे भयानक शस्त्रास्त्र किस काम के लिए ? मनुष्य के भय से ही इसकी खोज हो रही है और यह मनुष्य ही कर रहा है ! मनुष्य को मनुष्य का बड़ा डर मालूम हो रहा है। इसीलिए बड़े पैमाने पर द्वेष की शक्ति पैदा हो रही है। हिंसा शक्ति का उत्कर्ष हो गया है। वह इतनी मजबूत हो गयी है कि सारी मनुष्य-जाति का खातमा हो सकता है। इस हालत में कौन सा उपाय ढूँढा जाय, यह मनुष्य के सामने सवाल है। एक राष्ट्र अपनी फौजी ताकत बढ़ाता जाय, तो क्या वह सुरक्षित रहेगा ? आज यही प्रयत्न हो रहा है। हर देश सैन्य शक्ति से सुसज्जित है। पाकिस्तान और हिंदुस्तान, रूस और अमेरिका एक दूसरे से डरते हैं। एक दूसरे के भय से शस्त्रों की खोज हो रही है। इसमें से किस तरह छुटकारा हो सकता है, यह हमें सोचना चाहिए।

प्रेम-शक्ति में विश्वास नहीं

द्वेष को मिटाने के लिए प्रेम शक्ति ही निर्माण करनी होगी। भय के विरोध में निर्भयता ही पैदा करनी होगी। दुनिया में प्रेम का अभाव नहीं है। हरएक को प्रेम का अनुभव है। प्रेम से ही उनका पालन होता है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसे प्रेम का अनुभव और उसकी महिमा मालूम न हो। लेकिन जैसे हिंसा में बल है, वैसे प्रेम में भी बल है, यह लोग नहीं सोच रहे हैं। अभी बुद्ध-भगवान् के २५००वें जन्म दिन का उत्सव हुआ। सर्वत्र कारुण्य की महिमा गायी गयी। परन्तु जहाँ समाज और देश के बचाव की बात आती है, वहाँ वे शस्त्र की बातें करते हैं। करुणा की और प्रेम की महिमा मान्य है, परन्तु प्रेम और करुणा में रक्षण की शक्ति है, यह वे नहीं मानते। समाज के रक्षण के लिए हिंसा की ही आवश्यकता बताते हैं। परन्तु हिंसा इतनी बढ़ गयी है कि वह अब रक्षणकारी हो नहीं सकती। मेरे हाथ में पिस्तौल है। उससे मैं अपना रक्षण कर सकता हूँ। परन्तु कब तक? जब तक आपके हाथ में पिस्तौल नहीं है। आपके हाथ में अगर पिस्तौल आ जाय, तो मेरी शक्ति खतम! इसी तरह आज दुनिया में शस्त्र शक्ति चारों ओर फैल रही है। वह सुपरिणाम लायेगी, रक्षण करेगी, दुनिया को बचायेगी, उससे मसले हल होंगे, यह विश्वास ही अब नहीं रहा है। फिर भी शस्त्र-शक्ति की वृद्धि हो रही है। शस्त्र शक्ति पर से विश्वास उठा है, परन्तु प्रेम शक्ति पर बैठा नहीं है। इसलिए पुराने तरीके से शस्त्र शक्ति का विकास चालू है। लोग उधर प्रेम में आनंद भी महसूस करते हैं, परन्तु उसमें रक्षण की शक्ति है, ऐसा नहीं मानते।

प्रेम-शक्ति का प्रयोग : भूदान

प्रेम से मसले हल करने का एक प्रयत्न भूदान के आंदोलन के रूप में छह साल से देश में चल रहा है। उस दृष्टि से इस काम की तरफ देखना चाहिए। जो आता है, वह भूमि के मसले की बात करता है। भूमि कैसे बाँटी जायगी? एक एक परिवार को दी जायगी या सबकी रहेगी? सहकारी कृषि करनी चाहिए कि अलग अलग? हम कहते हैं यह चर्चा हमारे साथ क्यों करते हो?

हम काम कर रहे हैं। जमीन का मसला हमने एक प्रयोग के लिए हाथ में लिया है। सामूहिक प्रेम शक्ति निर्माण हो सकती है या नहीं, इसका प्रयोग चल रहा है। आज प्रेम रुक गया है, बहता नहीं है। पानी बहता रहे तो स्वच्छ रहता है। बहना रुका तो वह सड़ जाता है।

प्रेम कामरूप बना

इधर प्रेम परिवार में बंद हो गया, तो उधर संपत्ति भी आ गयी। उससे आगे बढ़े। फिर उस प्रेम का रूप भी बदल जाता है—मेरे लड़के पर प्रेम याने बाकी लड़कों पर अप्रेम, मेरे परिवार की चिंता याने दूसरे परिवार की अचिंता! उस प्रेम को बहुत अल्प प्रेम का याने व्यापक द्वेष का रूप आ जाता है। अगर स्पष्ट रूप से कहना हो, तो वह प्रेम काम के रूप में प्रकट हुआ है। जैसे पानी का बहना रुक गया, तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। फिर पानी का मूल धर्म खत्म हो जाता है। वह पानी पीने लायक नहीं रहता। उससे बीमारी पैदा हो सकती है। वह 'जीवन' नहीं रहता, मरण बन जाता है। इसी तरह जो प्रेम अपने को एक परिवार में सीमित करता है, वह कामरूप बन जाता है। वह सड़ा हुआ प्रेम है। वह हक की बात करता है। वह मुक्ति का साधन बन ही नहीं सकता, बंधन का साधन बनता है।

हिंसा का व्यापक संगठन

पिछले महायुद्ध में व्यापक परिमाण में हिंसा का प्रयोग किया गया। करोड़ों की तादाद में सैनिक मारे गये, करोड़ों जख्मी हुए। हर घर का जवान उसमें दाखिल हो गया और बाकी लोगों ने युद्ध में मदद की। बहनें भी सैनिकों की सेवा में लगीं। प्रत्यक्ष उत्पत्ति का काम छोड़कर करोड़ों रुपयों का स्वर्ण रोज किया गया। याने द्वेष काम के लिए व्यापक संगठन बना।

प्रेम की ताकत कैसे बनेगी?

आज एक भाई व्यक्तिगत मालकियत और परिवार की पवित्रता बता रहे थे। हम इन दोनों को अलग-अलग समझते हैं। पवित्रता याने एक कुटुम्ब पर

दूसरे का आक्रमण न हो। प्रेम की ताकत कायम रखनी है, तो मेरे और आपके परिवार में सहयोग होना चाहिए। मैं आपके घर पर पत्थर नहीं फेंकता और आप मेरे घर पत्थर नहीं फेंकते, तो इससे ताकत पैदा नहीं होती। यह अभावात्मक व्याख्या है। ईसामसीह के नाम पर लोग ऐसे व्यक्तिगत मालकियत की पवित्रता बताते हैं। उनकी इससे अधिक विडंबना नहीं हो सकती। उन्होंने कहा था : 'लव दाई नेबर ऐज दाईसेल्फ।' पड़ोसी पर प्रेम करो, इतना ही नहीं कहा; थोड़ा प्रेम करो यह भी नहीं कहा; बल्कि यह कहा कि जितना अपने पर प्रेम करते हो, उतना पड़ोसी पर करो। याने मैं और मेरा पड़ोसी यह भेद मिट जाय। यह शत्रु को भी अपने प्रेम में दाखिल करने की बात है।

प्रेम का हमला

हम दुश्मन पर भी प्रेम का हमला करेंगे, तब प्रेम की शक्ति प्रकट होगी। आज प्रेम डरपोक बना है, घर में बैठा है, पत्नी के साथ, लड़के के साथ प्यार करता है; लेकिन पड़ोसी के साथ प्यार करने से डरता है और दुश्मन के साथ प्यार करने से काँपता है। जहाँ द्वेष फैलने की हिम्मत करता है, वहीं प्रेम डरता है। यह (प्रेम) मैदान म आता ही नहीं, घर में बैठा रहता है। कुछ लोग पत्नी को परदे में रखते हैं। इसी तरह ये लोग प्रेम को परदे में रखते हैं। पत्नी परदे से बाहर खुली हवा में आती है, तो उन्हें डर लगता है। उसी तरह जिन्हें प्रेम को बाहर लाने में भय लगता है, वे पड़ोसी के साथ प्रेम से नहीं रहते। घर में सबको समान रूप से खाना पीना मिलना चाहिए, यह प्रेम का कानून घर में रखते हैं, तो वही समाज में लाने में क्यों डरते हैं? प्रेम इतना डरपोक बन गया कि हमें दया आती है। इसलिए शंकराचार्य ने कहा कि प्रेम से नफरत करो। द्वेष प्रेम वर्जित दया करो, द्वेष से नफरत करो, वैसे प्रेम से भी करो। प्रेम को काम का रूप आया, वह कैदी बना, इसलिए उसका विपरीत रूप बना। समाज का कल्याण करने की शक्ति उसमें नहीं रही, इसलिए उसकी भी नफरत करो। हिंसा शक्ति जोर कर रही है, कोटि कोटि लोग सेना में दाखिल होने लगे। एक दिन

स्टालिन का आज्ञापत्र निकला, प्यारे सैनिको, तुम शत्रु से लड़ोगे, यह नाकाफी है। पूरे मन से, पूरे दिल से, हृदय से शत्रु के साथ द्वेष करो, तब तुम्हें जय मिलेगी। इस तरह द्वेष की अत्यन्त व्यापक व्याख्या की गयी है। द्वेष-शक्ति इतनी व्यापक बन गयी और प्रेम शक्ति कैद हो गयी। कुलवधू के समान प्रेम सामने नहीं आ रहा है।

आज दुनिया के सामने यही प्रश्न है कि हम प्रेम को व्यापक कर सकते हैं या नहीं ? अपना सारा प्रेम सेवा में लगा सकते हैं या नहीं ? प्रेम के आधार पर दुनिया सहयोग कर सकती है या नहीं ? प्रेम से करोड़ करोड़ लोग इकट्ठा हो सकते हैं या नहीं ? सामूहिक रूप से प्रेम की रचना हो सकती है या नहीं ? इस दृष्टि से ग्रामदान की ओर आप देखिये। छह लाख लोगों ने आज तक दान दिया है। पहले व्यक्तिगत तौर पर दान देते थे। पर क्या यह दान परलोक में पुण्य मिलेगा इसलिए देते हैं ? यह दान इसलिए है कि समूह की शक्ति पैदा हो। जिस परिमाण में द्वेष शक्ति बढ़ रही है, उस हिसाब से ६ करोड़ का दान कम ही है, फिर भी दुनिया का ध्यान इसने खींचा है। अच्छे-अच्छे लोगों को आश्चर्य होता है, आशा भी होती है कि शायद इसमें से दुनिया को राह मिलेगी, प्रेम शक्ति से मसले हल करने का मार्ग खुलेगा। उन्हें हल किये बिना दुनिया को शांति नहीं मिल सकती।

ऐटम या प्रेम

हमारे सामने सवाल यह है कि द्वेष के विरोध में हम प्रेम की शक्ति प्रकट कर सकते हैं या नहीं ? भूदान-यज्ञ से ऐसी शक्ति प्रकट कर सकते हैं, ऐसी आशा, ऐसी कल्पना लोगों को होने लगी है। इसलिए दुनियाभर के लोग इसे देखने आते हैं, वे दिल से आशीर्वाद भी देते हैं और इसका जयजयकार करने-वाले ग्रंथ लिखते हैं, क्योंकि वे तंग हैं, आपत्ति में हैं, मसले हल करने की वे एक राह चाहते हैं, पर वह उनको नहीं मिल रही है। जैसे हमने पहले कहा, शस्त्र पर से उनका विश्वास उठा है। पचीस साल के अन्दर दो-दो महायुद्ध हो गये ! इसलिए शायद इसम से मार्ग मिल जाय, ऐसी आशा से वे इस काम में लगे हैं।

एक भाई कह रहे थे कि "आप कहते हैं कि इस काम के लिए केरल में अनुकूल हवा है, लेकिन हम तो उलटा देखते हैं। यहाँ व्यक्तिवाद बढ़ा है। धर्म और जाति के अनेक भेद हैं, एकत्र होने की भावना हम यहाँ के लोगों में नहीं देख रहे हैं।" वे भाई समझते नहीं कि कुल दुनिया की हालत आज क्या है। करोड़-करोड़ लोग सेना में जायँ, यह काम आसान नहीं है। सोचना चाहिए कि हमारे सामने विकल्प क्या है? ऐटम या प्रेम? गम्भीरता से सोचेंगे, तो ध्यान में आयेगा कि आज हवा कैसी बह रही है। तलवार सिर पर लटक रही है।

वे भाई हमसे आज कह रहे थे, बाइबिल में कहा है कि ईसा ने कम्यून बनाया और बाँटकर खाया, लेकिन ईसामसीह फेल हुए, याने मनुष्य-स्वभाव में परिवर्तन करने का काम बाइबिल और ईसा नहीं कर सके, तो आप क्या करेंगे? हमारे सामने एक बड़ी समस्या यह खड़ी है कि पशु-स्वभाव को ही हम मानव-स्वभाव समझते हैं। यह गलत है। द्वेष-शक्ति अत्यन्त व्यापक परिमाण पर संगठित हो चुकी है। उसके खिलाफ प्रेम-शक्ति भी उतनी ही व्यापक बनानी होगी। वैसा हम नहीं करेंगे, तो समाज का नाश होगा। ईसामसीह के शिष्य सफल नहीं हुए, तो भी हम होंगे। सारे प्रयोग उन्हींको करने होते, तो हमारा जन्म किसलिए हुआ? इतिहास-काल में जो घटना नहीं हुई, उसीको करने के लिए तो हमारा जन्म हुआ है। रामचन्द्र ने वंशी नहीं बजायी, इसलिए कृष्ण का जन्म हुआ। राम ने वंशी नहीं बजायी, इसलिए मैं भी नहीं बजाऊँगा, यह कृष्ण ने नहीं कहा। जो प्रयोग हुए, उनसे आगे हमें जाना है, उनमें सफल होना है, अन्यथा समाप्त होना है। सारे मानव-समाज के खात्मे की तैयारी हो चुकी है। जिन शस्त्रास्त्रों के परीक्षण मात्र से मानव-जाति को खतरा हो सकता है, वे शस्त्रास्त्र प्रत्यक्ष उपयोग में लायेंगे, तो क्या होगा? इसलिए अब प्रेम-शक्ति को घर में सीमित नहीं रखना चाहिए और परिवार की भावना का विस्तार होना चाहिए। अपने पड़ोसी पर थोड़ा प्यार करना काफी नहीं है। जितना प्यार तुम स्वयं अपने पर करते हो, उतना पड़ोसी पर करना चाहिए। यह सिर्फ बाइबिल

और गीता की अपेक्षा नहीं है, यह युग की और विज्ञान की अपेक्षा है, धर्म की तो है ही। इसलिए हम कहते हैं कि सारा वातावरण, सारी हवा तैयार हो रही है।

यही देखिये, कम्युनिस्ट और धर्म संस्था दोनों की कभी पटरी बैठ सकती है? दोनों दो सिरे पर हैं, लेकिन बाबा के काम को दोनों कबूल करते हैं, क्योंकि यह परिस्थिति की माँग है। परिस्थिति कह रही है कि प्रेम को व्यापक नहीं बनाओगे, तो द्वेष व्यापक होगा। सामने हिंसा है, तो हमें प्रेम करना चाहिए। जहाँ अत्यन्त व्यापक परिमाण पर हिंसा हो रही है, वहाँ छोटे से क्षेत्र में प्रेम को सीमित रखोगे तो नहीं टिकोगे। इस दृष्टि से देखें, तो ध्यान में आयेगा कि बाबा इतना तीव्र क्यों है? वर्षा में, धूप में और ठण्ड में क्यों चलता है? इतनी आर्तता इसलिए है कि बाबा देख रहा है कि प्रेम को इतने व्यापक परिमाण पर प्रकट न किया जाय, तो मनुष्य जाति का खात्मा होगा।

प्रेम का व्यापक प्रयोग आवश्यक

हमने आज जो दृष्टि आपके सामने रखी, उस दृष्टि से आप भूदान और ग्रामदान की ओर देखिये। यह सिर्फ भूमि का सवाल नहीं है। प्रेम को व्यापक बनाना है। यह अगर भूदान और ग्रामदान के बिना भी बननेवाला है तो चाहिए, परन्तु वह नहीं होगा; क्योंकि हिन्दुस्तान में सबसे पहली आवश्यकता जमीन की है। आपको पानी की प्यास है, उस पर ध्यान न देते हुए मैं आप पर प्यार दिखा दूँ, तो कैसे चलेगा? इसलिए भूमि का मसला हाथ में लिया है। परन्तु यह मुख्य काम नहीं है। मुख्य काम प्रेम को व्यापक बनाना है, शक्ति बढ़ाना है। इसलिए दूसरा मार्ग हो तो आप सोचिये। मुझे तो हिन्दुस्तान के लिए भूदान और ग्रामदान के सिवा दूसरा मार्ग नहीं दीखता।

आज जो बिल्कुल हिंसा में मग्न हैं, वे भी दिल में हिंसा नहीं चाहते। इधर प्रेम की शक्ति प्रकट नहीं हो रही है, उधर मसले हल करने हैं, इसलिए द्वेष का सहारा लेते हैं। प्यासे को स्वच्छ पानी मिलेगा, तो वह गन्दा पानी नहीं पियेगा। लेकिन उसे स्वच्छ पानी हासिल नहीं हुआ, तो वह गन्दे पानी से अपनी प्यास

बुझायेगा। हिंसा पर प्रेम न होते हुए भी लोग हिंसा कर रहे है, क्योंकि स्वच्छ पानी नहीं मिल रहा है, इसलिए हम उन्हें दोष नहीं देते। यह आपका और हमारा कर्तव्य है कि हम प्रेम की शक्ति प्रकट करें। सत्य, प्रेम और करुणा की शक्ति व्यापक होगी, तभी दुनिया से हिंसा दूर होगी।

त्रिचूर (केरल)
१७-५-'५७

व्यापक आत्मज्ञान की आवश्यकता : ३ :

विज्ञान के साथ आत्मज्ञान को व्यापक बनाइये

इस समय विज्ञान के कारण हम नजदीक आये हैं। विज्ञान बढ़ा है, हमारा सृष्टि ज्ञान भी बढ़ा है। यहाँ के बच्चे बच्चे विश्व-राजनीति की बात करते हैं। विज्ञान के कारण एक तरफ हम विशाल बनते जा रहे हैं, परंतु हमारा आत्मज्ञान छोटा बन गया है। पुराने जमाने के लोग समझते थे, हम सारी दुनिया के निवासी हैं। आज कोई कहता है हम केरल के नागरिक हैं, अफगानिस्तान के हैं, मिस्र के हैं। यह सब आत्मज्ञान कम होने का परिणाम है। शंकराचार्य ने हमें बड़ी बात यह सिखायी है कि मैं कौन हूँ, यह पहचानो, समझ लो। 'कोऽहम्' मैं कौन हूँ, यह पहले समझ लेने की जरूरत है। अगर मैं देह हूँ, तो दूसरों से अलग होता हूँ। अगर ब्राह्मण हूँ, तो अब्राह्मणों से अलग पड़ता हूँ। मलयाली हूँ, तो तमिलवालों से अलग पड़ता हूँ। भारतीय हूँ, तो दूसरे देशों से अलग रहता हूँ। अगर जीव हूँ, तो जड़ से अलग हो जाता हूँ। इसलिए तय करो कि मैं कौन हूँ। मैं कौन हूँ, इसका जितना विशाल उत्तर आयेगा, उतने हम सुखी होंगे। जितना छोटा उत्तर आयेगा, उतने दुःखी होंगे। इसलिए सबसे बड़ा ज्ञान है मैं कौन हूँ, यह जानना!

दुनिया की सारी जमीन सबकी है

सर्वोदय, भूदान वगैरह जाति भेद, धर्म भेद, भाषा-भेद आदि भेदों को

निर्मूल करना चाहता है। हवा पर किसीकी मालिकी नहीं हो सकती। वैसे ही जमीन पर किसीकी मालिकी नहीं हो सकती। भूमि परमेश्वर की बनायी हुई चीज है। उस पर सबका हक है। दुनिया में जो भी भूमि है, वह सबकी है। यह गलत है कि भारत देश भारतीयों का है। भारत सबका है। वैसे ही सब देश हमारे हैं। यह भूदान का विचार है। आस्ट्रेलियावालों को जापानवालों से कहना चाहिए कि तुम्हारे पास जमीन कम है, हमारे पास ज्यादा है—तुम इस भूमि पर आओ। लेकिन वे समझते हैं कि यह हमारा देश है। हम किसीको यहाँ नहीं आने देंगे। हमारी भूमि याने किसकी? जो आज यहाँ आ पहुँचे हैं, उनकी। मेहरबान, हजार साल पहले आप यहाँ थे? यहाँ तो थे नहीं। बाहर से आये हो, तो कैसे कहते हो कि यह देश हमारा है? यह भूमि हमारी है? इसका मतलब यह है कि अगर दूसरे लोग हमला करेंगे, आपको हटायेंगे, तो उनका देश होगा। तब क्या आप पर आक्रमण होना चाहिए? उनको आपसे ज्यादा बलवान् बनना चाहिए? सौ-दो सौ साल के बाद मानोगे कि हम सारे भाई-भाई हैं। तब तक झगड़ा करते रहोगे? आखिर में मानोगे, तो पहले से ही प्रेम क्यों नहीं करते? प्रेम से सबका स्वागत क्यों नहीं करते? इस तरह का संकुचित हृदय विज्ञान के खिलाफ है।

आत्मज्ञान को व्यापक बनाना आवश्यक

विज्ञान मनुष्यों को व्यापक बना रहा है। वह आपको संकुचित नहीं होने देगा। आज दुनिया के किसी भी कोने में छोटा सा सवाल पैदा हो जाता है, तो वह अंतर्राष्ट्रीय सवाल बन जाता है। विज्ञान की यह विशेषता है कि वहाँ राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय का भेद नहीं रह जाता। इसके साथ साथ आत्मज्ञान विशाल होना चाहिए। जैसे पुराने जमाने के लोग कहते थे कि हम सारे विश्व के निवासी हैं, वैसे ही हमें कहना चाहिए। उनके पास विज्ञान कम था। आज जैसा विकसित नहीं हुआ था। इस कारण उनको बहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी। आत्मज्ञान विशाल और विज्ञान छोटा था। हमारी हालत इससे विपरीत है। हमारा विज्ञान विशाल है, आत्मज्ञान छोटा है, इसलिए हम तकलीफ भोग रहे हैं। जितना आत्मज्ञान है, उतना विज्ञान बढ़ेगा या जितना विज्ञान है, उतना

आत्मज्ञान बढ़ेगा, तब झगड़ा मिटेगा और शांति होगी। आज विज्ञान जितना बढ़ा है, उसको छोटा करेंगे, तब भी सुख नहीं मिलेगा। विज्ञान छोड़ना करना हो तो रेल्वे खतम करो, उखाड़कर फेंक दो, विमान, रेडियो तोड़ डालो। पर विज्ञान को आप तोड़ नहीं सकते। तोड़ना भी नहीं चाहते। लेकिन सुखी होना चाहते हैं। तो, आपको उपनिषदों का आत्मज्ञान हासिल करना होगा और आधुनिक विज्ञान को कबूल करना होगा। उपनिषदों के आत्मज्ञान से हृदय का विकास और अद्यतन विज्ञान के कारण बुद्धि का विकास—दोनों का योग होगा, तभी हम सुखी होंगे।

विज्ञान छोटा था, तब अलग अलग परिवार हो सकते थे। परन्तु अब विज्ञान की विशालता म वह नहीं चलेगा। कुल ग्राम को एक परिवार समझना होगा। अब छोटे छोटे स्वार्थ छोड़ दीजिये। नहीं छोड़ोगे, तो टिकोगे ही नहीं। टिकने की कोशिश करोगे, तो मार खाओगे। हृदय विशाल बनाना होगा, यही भूदान ग्रामदान का संदेश है।

पलयान्नुर (केरल)
२२-९-'५७

सम्मिलित परिवार और ग्राम-परिवार : ४ :

हमसे अक्सर यह कहा जाता है कि आज पुराने सम्मिलित परिवार टूट रहे हैं, भाई भाई अलग हो रहे हैं, बूढ़े माँ बाप की भी चिन्ता नहीं की जाती, जमीन का बँटवारा हो रहा है। ऐसी हालत में आपके ग्राम परिवार कैसे टिकेंगे? आप तो नदी को उलटी दिशा में बहाने की बात कर रहे हैं। हम जवाब देते हैं कि पुराने सम्मिलित परिवार टूट रहे हैं, क्योंकि वे टूटने लायक ही थे। अंग्रेजी में कहावत है—'खून पानी से गाढ़ा होता है।' उसके माने हैं कि रक्त सम्बन्ध ज्यादा गाढ़ा होता है। हम कहते हैं कि 'पानी खून से पवित्र होता है।' यानी रक्त सम्बन्ध की अपेक्षा हृदय सम्बन्ध पवित्र होता है। रक्त-सम्बन्ध आसक्ति पर खड़ा है। पहले आसक्ति के लिए अवकाश था। शादियाँ भी पास के गाँवों म

होती थी, लेकिन अब विज्ञान के जमाने में आसक्ति नहीं टिक सकती। इस समय आप बम्बई में हैं, तो बेटी कलकत्ते में। ऐसी हालत में आसक्ति कैसे टिक सकती है? विज्ञान के जमाने में आसक्ति नहीं, विचार टिकेगा। ग्राम परिवार विचार की बुनियाद पर खड़े होंगे, इसलिए टिकेंगे। गाँववाले एक होंगे, तो गाँव उन्नति कर सकेगा, सबकी भलाई हो सकेगी, उत्पादन बढ़ेगा, यह एक विचार है। पुराने परिवारों में समय के भी झगड़े तो चलते ही थे, परन्तु आसक्ति के कारण लोग साथ रहते थे। लेकिन जब विचार से कोई बात होती है, तभी श्रद्धा टिकती है।

खादी का अधिष्ठान

खादी पर भी यही आक्षेप किया जाता है कि पुराने जमाने में भी लोग कातते थे, लेकिन अब सब खतम हो गया है। मिलें आ गयी हैं, ऐसी हालत में खादी कैसे चलेगी? हम जवाब देते हैं कि पुराने जमाने की खादी लाचारी की खादी थी, इसलिए वह टिक नहीं सकी। उस समय मिलें नहीं थीं, इसलिए लोग चरखा न चलाते, तो उन्हें नंगा रहना पड़ता। उनके पास दूसरा चारा ही नहीं था। लेकिन आज की खादी विचार की खादी है। दुनिया में चाहे जितनी मिलें चलें, तो भी हम अपने गाँव में बना हुआ कपड़ा ही पहनेंगे। बाहरी मिलों का कपड़ा मुफ्त में मिले, तो भी नहीं पहनेंगे। इस प्रकार का ग्राम सकल्प जब होता है, तब इस विचार की मजबूत बुनियाद पर खड़ी खादी जरूर टिकेगी।

सम्बन्ध-भेद

परिवार में आसक्ति के कारण हक की बात आती है। वहाँ पर बाप, बेटा, पति, पत्नी आदि हरएक का हक माना गया है। जहाँ अधिकार या हक की बात आती है, वहाँ एक-दूसरे के प्रति भावना बदल जाती है। भ्रातृमण्डल और मित्रमण्डल में यही फर्क है। भ्रातृमण्डल में दुश्मनी भी चलती है। कौरव पाण्डव भाई भाई थे, लेकिन उनके बीच लड़ाई हुई। पत्नी जिन्दगीभर पति की सेवा करती है, लेकिन यदि एकआध बार उसने पति की बात नहीं मानी, तो पति उसीको याद रखता है। जिन्दगीभर की हुई सेवा को याद नहीं रखता, क्योंकि

यह मानता है कि पत्नी से सेवा लेना उसके अधिकार की ही बात है। भाइयों में भी यही होता है। लेकिन मित्रों की बात अलग है। किसी मित्र ने एकआध दफा मदद की, तो हम उसे जिन्दगीभर याद रखते हैं और उसका उपकार मानते हैं; क्योंकि उसमें हक की बात नहीं है। मित्र संघ अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से, स्वेच्छा से बनते हैं; लेकिन परिवार तो बने हुए ही हैं। आप चाहें या न चाहें, जो आपके पिता हैं, वे पिता ही रहेंगे। वहाँ चुनाव का सवाल ही नहीं है। परन्तु ग्राम-परिवार स्वेच्छा से बनते हैं। उसमें शामिल होना, न होना हरएक की मर्जी की बात है। हर कोई सोच सकता है कि उसमें लाभ है या हानि और सोच समझकर दाखिल होता है। इस तरह सामूहिक परिवार में लाचारी की बात है। ग्राम-परिवार का प्रयोग विचार का प्रयोग है। विज्ञान के जमाने में ग्राम परिवार बनाना जरूरी है। इसलिए ग्राम परिवार बनेंगे और टिकेंगे।

पालघाट (केरल)
२१-९-'५७

शंका-समाधान : ५ :

श्रीमान् और गरीब दोनों वासना न रखें

प्रश्न : कहा जाता है कि श्रीमान् लोग त्याग करें। परंतु श्रीमानों की संपत्ति पर गरीब लोग वासना न रखें, यह क्यों नहीं कहा जाता ? क्या गरीबों को अपने ही परिश्रम पर आधृत नहीं रहना चाहिए ?

उत्तर : यह अच्छा सवाल है। इस विषय में जरा बारीकी से सोचना चाहिए। धर्म दुहरा होता है। हरएक बच्चा माता पिता की आज्ञा का पालन करे, यह धर्म है। पर दूसरा धर्म यह भी है कि माता पिता बच्चे का अच्छी तरह पालन करें। पति और पत्नी का यह धर्म है कि वे एक-दूसरे के प्रति वफादार रहें और अपना जीवन संयमी रखें। चोरी करना पाप है, तो संग्रह करना भी पाप है। आप एक चीज को पाप मानें और दूसरी को नहीं, तो धर्म एकांगी होगा।

धर्म कहता है कि समाज में स्तेय न हो, तो साथ साथ संग्रह भी नहीं होना चाहिए। अस्तेय के साथ असंग्रह भी जोड़ दिया गया है।

आपने बताया कि श्रीमानों के धन पर गरीब वासना रखते हैं। हममें भी तो वासना है। इसीलिए हम संग्रह करके रखते हैं। नहीं तो क्या जरूरत थी संग्रह करने की? गरीबों से हम जरूर कहेंगे कि दूसरों के धन पर वासना नहीं रखनी चाहिए। 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' का शंकराचार्य ने अर्थ किया है कि दूसरों के धन की वासना मत रखो और अपने धन की भी वासना न रखो। श्रीमान् अपने धन की वासना रखता है और सौ के हजार कब होंगे, हजार के लाख कब होंगे, यही सोचता रहता है। वह तो वासना रखेगा, पर दूसरों से कहेगा कि वासना नहीं रखनी चाहिए, यह कैसे संभव है? हम गरीबों से कहते हैं कि श्रम-शक्ति से संपन्न होने के कारण आप उसे समाज को समर्पित कर दें। श्रीमानों से कहते हैं कि आपके पास संपत्ति है। उसे समाज को अर्पण कीजिये। आज तो दोनों संग्रही बने हैं। इसलिए देना सबका धर्म है। जो धर्म होता है, वह सबके लिए होता है। सत्य बोलना, हिंसा न करना, यह सब पर लागू होता है; क्योंकि यह धर्म है। इसमें श्रीमान्, गरीब का फर्क नहीं हो सकता। गरीब खेत पर मजदूरी करने के लिए जाता है, तो कम-से-कम श्रम करना चाहता है। श्रीमान् कम-से-कम मजदूरी देना चाहता है। याने दोनों समाज की चोरी करते हैं। दोनों अधर्म करते हैं।

गरीब को अगर हम अपने परिश्रम और प्रयत्न पर निर्भर रहने के लिए कहें, तो श्रीमानों को भी कहना होगा। श्रीमान् कहेगा, हम अपने परिश्रम से संपत्ति कमाते हैं। धनवान् अपनी बुद्धि के उपयोग से दूसरों के श्रम का लाभ उठाता है। अनेक लोगों का शोषण होता है, फिर भी यह समझता है कि अपने ही परिश्रम से मैं कमाता हूँ। यह गलत है। उपनिषद् में आदर्श समाज का वर्णन आता है। 'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः'—मेरे राज्य में न चोर है, न कंजूस। संग्रह करनेवाले ही चोर के बाप हैं। तो लड़कों को बाप की स्टेट मिलनी ही चाहिए। श्रीमान् लोग पढ़े लिखे हैं, समझदार हैं, ज्यादा जिम्मेदार हैं, इसलिए वे स्वयं धर्म का पालन करें, तो उसका असर समाज पर पड़ेगा। वे अगर

संपत्तिदान, ग्रामदान, भूदान का काम उठा लेते हैं, तो गरीबों को प्रेम से वश कर सकते हैं।

व्यक्तिगत स्वामित्व और जिम्मेवारी

प्रश्न क्या व्यक्तिगत स्वामित्व के बिना समाज चल सकता है?

उत्तर समाज के लिए खानगी मालकियत की जरूरत नहीं है, खानगी सेवा की जरूरत है। प्राइवेट सेक्टर के बिना समाज नहीं टिकेगा। प्राइवेट सेक्टर याने व्यक्तिगत जिम्मेदारी। लड़के की सेवा करनी है। दस आदमियों को वह काम सौंप दिया, तो क्या अच्छा पालन होगा? नहीं। जिम्मेदारी तो एक की ही होनी चाहिए, तभी अच्छा पालन हो सकेगा। लड़का गुरु के घर जाता है। गुरु प्यार करता है, पढ़ाता है, ज्ञानी बनाता है। पर इसके लिए मालकियत की क्या जरूरत है? व्यक्तिगत स्वामित्व की जरूरत नहीं है। जरूरत है व्यक्तिगत जिम्मेवारी की। दस पन्द्रह प्रधानमन्त्री हम मुकर्रर नहीं करते, एक ही व्यक्ति प्रधानमन्त्री होता है, क्योंकि वह जिम्मेदार होता है। व्यक्तिगत स्वामित्व के बगैर समाज नहीं चलेगा, यह भासमात्र है। व्यक्तिगत संपत्ति, स्वामित्व एक बात है और व्यक्तिगत जिम्मेदारी दूसरी बात। यह फर्क ध्यान में रखना होगा।

प्रश्न हरएक के पास आर्थिक स्वत्व रहना असम्भव है। इससे क्या जमीन की भूख नहीं बढ़ेगी?

उत्तर हम जमीन की भूख की चिन्ता नहीं करते। हम भूख की चिन्ता करते हैं। हम नहीं जानते कि कोई मिट्टी खाने की इच्छा करता है, इच्छा रखता है अन्न की। राष्ट्र की जिम्मेवारी है कि हरएक को अन्न दे, काम दे। इंग्लैंड में आज भी बेकारी है। मशीनरी से काम लेते हैं, तो सबको काम नहीं मिलता। जो बेकार हैं, उनको सरकार मदद देती है। यह हक माना जाता है कि सरकार मदद दे या काम दे। यहाँ की सरकार मदद नहीं दे सकती, क्योंकि यह दरिद्रों की सरकार है। इसलिए यह जिम्मेवारी गाँवों को लेनी चाहिए। हरएक को काम मिले, ऐसी योजना गाँवों में हो सकती है। इसलिए सवाल

जमीन की भूख का नहीं, काम की भूख का है। हिन्दुस्तान की क्षुधा मिटानी है, तो हरएक को काम देना होगा। काम का सर्वोत्तम साधन है जमीन। सारे देश में ही आज आर्थिक स्वत्व का अभाव है, इसलिए जो है, उसे बाँटकर खाना चाहिए। पूर्ति के लिए धन्धे भी देने होंगे, सहायक धन्धों के बिना केवल खेती से नहीं चलेगा।

आलस का इलाज

प्रश्न : ग्रामदान होने पर आलसी लोगों का उत्साह कैसे बढ़ेगा?

उत्तर : जब समूह होता है, तो उत्साह आता ही है। परिवार में सब काम करते हैं, तो आलसी को भी उत्साह आता है। परिवार बड़ा होने पर उत्साह बहुत बढ़ेगा। दूसरों के लिए काम करने में उत्साह बढ़ता है, यह मनुष्य का लक्षण है। हमारे गाँव में, हमारे घर में ही कटहर का पेड़ था। जब कटहर होते थे, तो पिताजी हमसे कहते थे कि पड़ोसवालों के यहाँ थोड़ा-थोड़ा बाँटकर आओ। हमें बहुत आनन्द आता था बाँटने में। यह अनुभव हरएक बच्चे को होता है। हमें उस कटहर बाँटने में कहाँ से उत्साह आया? समूह जब बड़ा बनता है, व्यापक होता है, तो उत्साह बढ़ता ही है। लेकिन वह इतना व्यापक नहीं होना चाहिए कि आँख से न देख सकें। गाँव में कोई आलसी भी रहा तो उसको मारेंगे पीटेंगे नहीं, गाँव की उस पर नजर रहेगी। गाँव में सबको अलग अलग जमीन न दी गयी, तो भी आलसी के लिए स्पेशल केस मानकर एक जमीन का टुकड़ा उसको स्वतन्त्र रूप से देंगे। आलसी है, इसलिए पानी की सुविधा भी कर देंगे और कहेंगे, अब तू इस पर काश्त कर और तू ही खा। लेकिन उस पर उसकी मालिकी नहीं होगी, नहीं तो वह बेच डालेगा या रेहन रख देगा। आलस से कितने ही लोगों ने अपनी जमीन खोयी है। अलग जमीन होने से आलसी को भी कुछ न कुछ काम करना ही पड़ेगा। इस तरह तालीम की दृष्टि से आलसी को उत्साहित करने के उपाय करेंगे।

चित्तूर (केरल)
२८-२-'५७

मिलें हमारे हाथ में आयेंगी। आज आप मिल का कपड़ा खरीदकर मिलवालों को गाली देते हैं, तो उसका कुछ भी असर नहीं होता। मिलवालों का सच्चा दुश्मन तो है बापा। यद्यपि वह मीठा बोलता है, पर काम ऐसा करता है कि मिल की जड़ ही उखड़ जाय। लेकिन लोग खादी की ताकत पैदा नहीं करते, मिल को ही जोर पहुँचाते हैं। कहने का मतलब यह कि ताकत बोलने में नहीं होती। निषेध या गाली से बल का क्षय होता है, बल का संचार नहीं होता।

चेल्लिनेलि (केरल)
१३-६-'५७

सादगी की महिमा : ७ :

प्रश्न क्या इस तरह का सादा जीवन बिताने से आपको कोई खास सुखानुभूति होती है?

उत्तर हम यहाँ सादे ढग से यात्रा चला रहे हैं, यह सही है। लेकिन हम जितनी सादगी चाहते हैं, उतनी अभी नहीं आ पायी है। मनुष्य के लिए सादगी बड़ी शोभा है। विशेषकर तब, जब कि जनता दरिद्र हो। सादगी जरूर चाहिए। दरिद्रता न हो और समृद्धि हो, फिर भी सादगी की जरूरत है। जब हम सादगी से रहते हैं, तो ज्यादा ध्यान बाहर की चीजों में नहीं लगाना पड़ता। हृदय के अन्दर ध्यान लग सकता है, ज्यादा सोच सकते हैं। मान लीजिये कि बड़ा मकान है, बहुत अधिक फर्नीचर है, दीवार पर चित्रादि टँगे हैं। उन्हें रोज साफ करना पड़ता है, नहीं तो घर गदा हो जायगा। साफ करते हैं तो समय जाता है। फिर भक्ति के लिए, ज्ञान के लिए, ध्यान के लिए कहाँ समय मिलेगा? यह हो सकता है कि कमरा जरा बड़ा हो, बिल्कुल एक ही जगह रसोई और शयन न हो। सामान ज्यादा रहेगा, तो ध्यान उसी पर ज्यादा लगाना पड़ेगा। उपनिषद् में याज्ञवल्क्य से मैत्रेयी ने सवाल पूछा: "क्या सम्पत्ति के सग्रह से अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है?" उत्तर मिला·

'अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति वित्तेन'—"पैसे से अमृतत्व मिलने की आशा नहीं है।" लोग पैसा संग्रह करने लगते हैं, तो अन्दर की चीजें नहीं देख पाते। अन्दर जितना आनन्द है, वह नहीं पहचानते; बाहरी चीजों पर ही ध्यान देते हैं। रातभर रेडियो पर गाना सुनते हैं, हृदय के अन्दर जो श्वासोच्छ्‌वास का सुन्दर गायन चल रहा है, वह नहीं सुनते। एक श्वास अन्दर आता है, दूसरा बाहर जाता है, यह तो वीणा चल रही है। अन्दर का ध्यान करेंगे, तो उत्तम-से-उत्तम संगीत सुनने को मिलेगा।

सादगी से मनुष्य का जीवन ऊँचा उठता है, इसलिए हम सादगी पसंद करते हैं। हम आश्रम में रहते थे, तो दो ही धोती रखते थे। अब कभी-कभी बारिश में घूमना पड़ता है, अतः चार धोती रखी है। पर आज जितनी सादगी चाहिए, उतनी नहीं है। हम नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान अमेरिका के समान दौलत बढ़ाता चला जाय। आज हिन्दुस्तान गरीब है, खाना भी नहीं मिलता तो, जरूरी है कि अभी उत्पादन बढ़े, संपत्ति भी बढ़े; परन्तु एक हद तक ही बढ़नी चाहिए। आज अमेरिका में काफी संपत्ति है, तरह-तरह के साधन हैं, सुविधाएँ हैं, फिर भी सन्तोष कहाँ? लोगों में अन्तःसमाधान नहीं है। वहाँ आत्महत्याएँ भी ज्यादा हुआ करती हैं, क्योंकि सबका ध्यान बाहर ही बाहर है। ध्यान नहीं होता, एकांतवास नहीं मिलता। भजन करने के लिए अवसर नहीं, शायद हफ्ते में एक बार चर्च में जाते होंगे। सदा सर्वदा सघर्ष! रात को इधर उधर बिजली की चमक! फिर आसमान के सुन्दर नक्षत्रों को कौन देखेगा? चाँद की तरफ ध्यान भी किसका जाय? इस तरह उन्होंने जीवन के आनन्द का खजाना खोया है। हमारा यह आन्दोलन सम्पत्ति और उत्पादन बढ़ाने के साथ साथ आध्यात्मिक साधना के लिए भी है। सम्पत्ति कुछ मर्यादा तक बढ़ाना आवश्यक है, क्योंकि दरिद्रता में ध्यान नहीं लगता और प्रचुरता में भी व्यक्ति अन्तर्मुख नहीं हो सकता। इसलिए समत्व की आवश्यकता है। जीवन में समत्व और सादगी हो, पर सादगी याने दरिद्रता न हो।

चरगा टुकरा (केरल)
१६-६-'५७

अक्सर माना गया है कि बीमारी में अगर मनुष्य सोचता रहे, तो उसका चिन्तन दुर्बल रहता है; लेकिन हमें इससे उलटा ही अनुभव आया है। इस महीने में हम काफी बीमार रहे। हमें शरीर का खास भरोसा था, पर वह अब नहीं रहा। लेकिन बीमारी की हालत में भी चिन्तन में हमने बहुत ज्यादा ताकत पायी है।

वर्ग है ही नहीं

कार्ल मार्क्स से एक बड़ा भारी तत्त्व दुनिया को मिला है—'दुनिया के तमाम गरीब लोग एक हैं, वे खड़े हो सकते हैं, स्वतन्त्र हो सकते हैं।' इतने स्पष्ट और इतने असंदिग्ध शब्दों में यह विचार पहले किसीने नहीं रखा था कि गरीब मनुष्य भी अपनी जंजीर तोड़कर उठ खड़ा हो सकता है। इसका बहुत अच्छा परिणाम हुआ, लेकिन साथ-साथ एक यह गलत विचार भी स्थिर हुआ कि समाज में जो पूँजीपति हैं, वे मानवता को नहीं पहचानते। अतः उनके विरोध में विचार खड़ा हुआ। गरीब लोगों में जो अब तक दीन बने हुए थे, एक प्रतिक्रिया शुरू हुई कि हम दीन नहीं रहेंगे। फलस्वरूप प्रतिहिंसा की भावना जाग उठी। वास्तव में हम सब माता के उदर से ही पैदा हुए हैं। किसीके भी हाथ या सिर काटने की कल्पना कितनी भयंकर है! भगवान् की योजना में हर बच्चे के लिए, चाहे वह श्रीमान् का हो या गरीब का, समान योजना है। गरीब की कुटिया में या श्रीमान् के प्रासाद में दोनों जगह उसने प्रेमामृत का प्रबंध कर रखा है। इस हालत में वर्ग का क्या अर्थ होता है? मेरा कहना है कि वर्ग है ही नहीं, जातियाँ हैं ही नहीं। अभी पक्ष बन गये हैं, तो क्या ये पक्ष हम नहीं तोड़ सकते? जिस चीज को हम बनाते हैं, क्या उसको तोड़ नहीं सकते?

शांति-सेना खड़ी की जाय

इस बीमारी में जो विचार हमारे मन में हुआ, वह यह है कि एक बड़ी-भारी शांति सेना की स्थापना हमें करनी है। यह सेना निरंतर घूमती रहकर लोगों की सेवा करे, लोगों पर नैतिक असर डालती रहे। हिंसा को कभी आगे आने का मौका न दे। कम से कम हर पाँच हजार व्यक्तियों के पीछे एक कार्यकर्ता हो। इन कार्यकर्ताओं को अच्छी तालीम देनी होगी। इन्हें यह विचार समझाना होगा कि हमें सत्ता मिटानी है। जब तक यह सत्ता लोगों के पास रहेगी, तब तक समाज में शांति नहीं होगी। इसलिए कार्यकर्ता पक्ष निरपेक्ष होने चाहिए। इस प्रकार की शांति सेना भारत में होनी चाहिए। क्या ऐसी योजना सरकार कर सकती है ? वह तब करेगी, जब उसकी सेना से मुक्ति होगी। तब उसको खुद की मुक्ति मिलेगी। यह ऐसा काम है कि जनता को करना है। कोई राजनैतिक पार्टी यह कर नहीं सकेगी।

लोगों में बहुत भ्रम है और कुछ लोग सोचते हैं कि राजनैतिक पार्टियाँ शांति और अहिंसा पर खड़ी हैं। हम चाहते हैं कि अहिंसा और शांति कायम रहे। लेकिन उनके आधार पर हम पार्टियाँ खड़ी नहीं कर सकते। सामने एक पार्टी खड़ी है, हमारी दूसरी पार्टी। तू मेरा नहीं, वह मेरा है—इस तरह का भेदभाव जहाँ होगा, वहाँ अहिंसा कैसे रहेगी ?

शांति-सेना के सैनिक को सत्याग्रह के लिए तैयार होना चाहिए। सत्याग्रही के हृदय को अनुशासन में रखने का रास्ता अहिंसा के सिवा कोई नहीं हो सकता। सत्य के सिवा और कोई भी सत्ता हम पर अधिकार चलाती है, तो हम सत्याग्रही नहीं बन सकते। ऐसे सत्याग्रही इन कार्यकर्ताओं में से निकलने चाहिए। यह सब हमें करना है। ऐसा एक बलवान् विचार इस रोगावस्था में मेरे मन में पैदा हुआ। मैं नहीं जानता कि इस शरीर से कहाँ तक हो सकेगा। ईश्वर चाहे तो काम चलेगा। परंतु विचार मैंने आपके सामने रखा। आप इसलिए तैयार हो जाइये कि केरल में हमें शांति सेना खड़ी करनी है। सामान्य समय में समाज की सेवा, ग्रामदान प्राप्ति इत्यादि की प्रवृत्ति और विशिष्ट मौके पर अपना सिर

समर्पण करके शांति लाने की तैयारी, यह इस सेना का काम है। अतएव एक-मेत्र की पूरी सेवा करनेवाले सेवक चाहिए।

हम स्थल-कालातीत हैं

अब यहाँ हमारा कितना समय इसमें लगना चाहिए, यह प्रश्न आता है। दुनिया में काल नाम का एक बड़ा तत्त्व माना गया है। लेकिन हमारे चिंतन में काल नहीं है। जहाँ भी हम हैं, वहाँ शाश्वत के लिए हैं। इसलिए यहाँ हम कब तक हैं, इसकी चिंता आप लोग न कीजिये। हम सर्वव्यापी विचार को मानते हैं। ऐसा महसूस नहीं करते कि हम केरल में घूम रहे हैं—हम तो सारी दुनिया में घूम रहे हैं। केरल के बाहर जायँगे, तो भी पूरा सबंध आपसे रखनेवाले हैं, चाहे आप हमसे सबंध रखें या न रखें।

ज्ञानी के वियोग से अधिक प्रेरणा

आखिर हम यहाँ क्या करते हैं? क्या हम ग्रामदान हासिल करते हैं? आप घूमते हैं, हमारी सभा का सयोजन करते हैं। किसी खास मौके पर हम चार शब्द बोल देते हैं। परतु हमारे रहने से यह होता है कि आप सब लोगों को निरतर काम करने की प्रेरणा होती है। किसीके सान्निध्य से अत्यन्त उत्साहयुक्त कर्म प्रेरणा मिले और उसके वियोग में उससे भी अधिक प्रेरणा मिले, वही ज्ञानी पुरुष है। ऐसा समझनेवाले ही ज्ञान को समझते हैं। इसकी मिसाल गाधीजी का और हमारा सबंध है। गाधीजी जीवित थे, तब प्रत्येक क्षण हमारा-उनका सबंध था। हमारा प्रत्येक कर्म उनकी प्रेरणा का परिणाम होता था। आज जब वे परलोक में हैं, तब भी वे हमारे प्रत्येक क्षण के स्वामी हैं। हम यह नहीं समझते कि एक क्षण भी हम उनसे अलग हैं। उनका वियोग बिल्कुल महसूस नहीं होता। उनकी प्रेरणा सतत मिलती रहती है। इस-लिए इस बात को महत्त्व नहीं देना है कि हम यहाँ कितने दिन रहेंगे, कितने दिन नहीं रहेंगे। हम निरतर आपके बीच हैं।

कालीकट (केरल)
११-७-'५७

मनुष्य का जीवन दो प्रकार का होता है। दोनों मिलकर पूर्णता होती है। एक होता है खानगी, कौटुम्बिक, पारिवारिक जीवन। उसमें हमारी वासना काम करती है। वासना के कारण ही मनुष्य कुटुम्ब में काम करता रहता है। परन्तु इसमें समाधान नहीं मिलता। फिर वह सामाजिक सेवा भी करता है। यह मनुष्य का दूसरा जीवन है। इसमें उसे कुछ समाधान होता है।

सामाजिक सेवा के भी दो प्रकार हैं। पहला प्रकार संकुचित है। उसमें अपनी जाति के लिए, धर्म के लिए, पार्टी के लिए कुछ करने की संकुचित भावना होती है। दूसरे प्रकार में किसी प्रकार के भेद को ध्यान में न रखते हुए समूचे समाज की सेवा की जाती है। जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ रहा है, वैसे वैसे संकुचित सेवा के क्षेत्र खत्म हो रहे हैं। पुराने जमाने में विज्ञान बढ़ा हुआ नहीं था। उस वक्त संकुचित सेवा के क्षेत्र थे। आज विज्ञान बढ़ा है, अतः मनुष्य की दृष्टि विशाल और व्यापक बनी है और मनुष्य के परस्पर हित सम्बन्ध सम्मिश्रित हो रहे हैं। अब मनुष्य जितनी संकुचित वृत्ति रखेगा, उतनी ही उसकी हानि होगी। जो सामाजिक सेवा संकुचित है, उससे कभी-कभी भय पैदा होता है, मत्सर बढ़ता है, झगड़े होते हैं। इसलिए संकुचित सेवा का विचार इस जमाने के अनुकूल नहीं है। अब तो जाति, धर्म, पक्ष निरपेक्ष जन सेवा का प्रकार ही सच्ची सेवा का प्रकार है। याने अब मनुष्य के लिए दो प्रकार की सेवा है. एक तो वासनामूलक कौटुम्बिक सेवा और दूसरी उदार-बुद्धि से कोई भी भेद न मानते हुए की जानेवाली समाज की सेवा।

समाज-सेवा और हृदय-परिवर्तन

सामाजिक सेवा सरकार या सत्ता के जरिये की जा सकती है। लोग सरकार

के हाथ में सारी शक्ति देते हैं और उसके जरिये समाज की सेवा होती है। लोग अपने अपने प्रतिनिधि सरकार में भेजते हैं और उनके द्वारा काम होता है। इस जमाने में लोगों ने यह तरीका मान्य किया है। परन्तु इसमें सत्ता का उपयोग होता है। यद्यपि यह प्रकार लोगों को मान्य है, फिर भी इससे लोगों का पूरा समाधान नहीं होता। समाज-सेवा के लिए पैसे की जरूरत हो, तो सरकार टैक्स लगाती है। लोग राजी हों या न हों, टैक्स देते ही हैं। समझते हैं, आखिर अपनी ही सरकार है, इस वास्ते थोड़ा ज्यादा देते हैं। इस तरह समाज की सेवा होती है। लेकिन उसमें भी समाधान नहीं होता, क्योंकि उसकी भी मर्यादा होती है। सरकार के जरिये होनेवाली सेवा हृदय शुद्धि नहीं करेगी। टैक्स बढ़ा दिया गया, तो पहले मेरे हाथ से समाज सेवा के लिए जितना जाता था, उससे आज ज्यादा जाता है। इस तरह मेरे हाथ से ज्यादा समाज-सेवा होती है। मैं बड़ा सेवक बन गया। याने पहले मैं एक हजार रुपये टैक्स देता था, अब दो हजार देता हूँ, तो मेरी समाज-सेवा बढ़ी। परन्तु मेरा दिल नहीं बढ़ा। इसमें जबरदस्ती रही। मेरे हाथ से सेवा होती है, यह सरकार कराती है। सरकार जो काम करे, उसको मैं सम्मति देता हूँ, तो उतनी सेवा हो जाती है। टैक्स ज्यादा लगाने पर भी मैं टालता नहीं हूँ। झूठे हिसाब पेश करना, कम आमदनी बताना आदि नहीं करता हूँ। यह मेरा अच्छा गुण है, इसलिए मेरे हाथ से सेवा जरूर होती है, परन्तु यह करायी जाती है। इस प्रकार से समाज की सेवा होगी, परन्तु मानव की उन्नति नहीं होगी। कहीं बाँध खड़े किये, रास्ते बनाये, फैक्टरी खोल दी। इससे मानव की उन्नति नहीं होती। अच्छे मकान बनाना, उत्पादन बढ़ाना वगैरह काम अच्छे हैं। वे करने चाहिए, परन्तु इतना होने से मानव की उन्नति होती है, ऐसा नहीं है। ये सारी चीजें अमेरिका में हो चुकी हैं। वह काफी समृद्ध देश है। फिर भी कहते हैं कि वहाँ मानसिक समाधान नहीं है। केवल भौतिक उन्नति से मानव की उन्नति नहीं होती। इसलिए ऐसा सार्वजनिक कार्य करना चाहिए, जो हृदय परिवर्तन के जरिये हो।

सेवा के तीन प्रकार

हृदय परिवर्तन के जरिये किये गये सार्वजनिक कार्य को हम राजनीति न कहकर 'लोकनीति' या 'जनशक्ति' कहते हैं। हृदयपूर्वक सेवा, सहानुभूतिपूर्वक सेवा और कारुण्यपूर्ण सेवा इस तरह मनुष्य की सेवा के तीन प्रकार हैं। उसमें एक है वासनामूलक कुटुम्ब सेवा। वह सेवा भी करनी होगी। परन्तु उसमें बुरे तरीके से काम न लिया जाय। अप्रामाणिकता से कमाई न की जाय। कोई प्रामाणिकता से कुटुम्ब सेवा करता है, तो वह भी अच्छा कार्य करता है, ऐसा माना जाय। अपने-अपने प्रतिनिधि भेजने से जो सरकार बनती है, उसको सहानुभूति देने से दूसरे प्रकार की सेवा होती है। उसके जरिये काम होता है। जो भी कार्य सरकार करती है, हम उसमें सहानुभूति और उसके साथ सहयोग करते हैं। उसकी माँगों को बेजा तरीके से टालते नहीं। इस प्रकार यह भी एक सेवा का क्षेत्र है। तीसरा प्रकार है कारुण्य द्वारा हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया। इसमें लोग स्वयं जन सेवा करने लगेंगे और जो संकुचित जन-सेवा है, एक जाति की, एक धर्म की, एक पार्टी की, वह छोड़ देंगे।

त्रिविध धर्म

परिवार धर्म प्रथम धर्म है। इसकी मर्यादा हमने बता दी है। सत्य की रक्षा की जाय, न्याय्य कमाई की जाय। किसी प्रकार का आलस न हो। पड़ोसी की चिन्ता करें, घरवाले स्वयं समानता से व्यवहार करते रहें। इस तरह की कुटुम्ब सेवा से मनुष्य का हृदय विकसित होता है, नहीं तो संकुचित बनता है।

दूसरा धर्म है राष्ट्र धर्म। इससे सरकार के जरिये अनेक काम किये जायँ। हम उसके अच्छे काम में सहयोग दें और अगर कुछ गलत काम हो, तो उसके विरोध में आवाज उठायें। हमारा विरोध रहा, तो सरकार भी वैसे काम नहीं करेगी। गलत कामों का विरोध भी प्रेम और नम्रता से होगा। इंग्लैंड ने मिस्र पर हमला किया, तो इंग्लैंड की कुल प्रजा की आवाज उसके खिलाफ उठी। यह है राष्ट्र धर्म की मिसाल। उससे ब्रिटिश सरकार की बहुत अच्छी सेवा

हुई। सरकार के अच्छे कामों में सहयोग और गलत कामों का विरोध, यह है राष्ट्र-धर्म।

तीसरा धर्म है कारुण्य-धर्म या मानव-धर्म; इसे भक्ति-धर्म भी कह सकते हैं। ऐसे तीन प्रकार के धर्मों का मनुष्य को अनुशीलन करना चाहिए।

छोटा धर्म व्यापक धर्म में लीन हो

पहला धर्म वासनामूलक है। उसे धीरे-धीरे समाज में लीन हो जाना चाहिए। वह कायमी नहीं है। जैसे जैसे वासना क्षीण होती जायगी, वैसे वैसे वह समाज में लीन होता जायगा। इस तरह उसका क्षेत्र धीरे-धीरे कम करना होगा। कुछ उम्र तक वह धर्म रहेगा। परन्तु आगे भोग-वासना रहेगी नहीं। अनुभव बढ़े और ज्ञान भी बढ़े, तो उस समय वानप्रस्थ बनता है। गृहकार्य का भार बच्चों पर सौंप दिया है, पत्नी और पति के बीच भाई-बहन जैसा व्यवहार है। अधिक समय समाज कार्य में जाता है। इस तरह उस परिवार-धर्म को समाज-धर्म में लीन करना हरएक का कर्तव्य है। इसी तरह राष्ट्र धर्म को भी धीरे धीरे विवेक से मानव धर्म में या कारुण्य-धर्म में लीन करना होगा। मान लीजिये, समाज-सेवा के लिए सरकार को दो सौ करोड़ रुपयों की जरूरत है। तो सरकार टैक्स लगाये। इसके अलावा सरकार लोगों से कहे कि ऐसे ऐसे कामों के लिए इतनी रकम की जरूरत है। लोग इसके लिए सम्पत्तिदान दें। स्वयं उसका नियन्त्रण करे, लोग उतना दान देने के लिए तैयार हो जायँ। इससे एकदम समाज का रूप बदल जायगा। याने जबर्दस्ती से टैक्स हासिल करने के बदले लोग प्रेम से उतनी रकम दे दें, तो कितना अद्भुत कार्य होगा। अपने यहाँ प्राइम मिनिस्टर फण्ड है। कहीं आपत्ति आती है, तो लोग प्रेम से, खुशी से दान देते हैं। प्राइम मिनिस्टर ने जाहिर किया कि हमें दो सौ करोड़ रुपयों की जरूरत है। लोगों के सामने योजना रख दी और लोग दान दे रहे हैं। आज हम इस प्रकार की कल्पना नहीं कर सकते। सरकार कभी दान माँगेगी, यह हम नहीं सोच सकते। एक हाथ में टैक्स और दूसरे हाथ में दान—यह सम्भव नहीं है।

कारुण्यमूलक सेवा की आवश्यकता

इसके लिए क्या करना होगा ? बाबा को सामने आना होगा। वह लोगों को समझायेगा कि करुणा से प्रेरित होकर इतना काम करो। मान लीजिये, लाखों लोग आगे आये। उन्होंने करोड़ों रुपये दान में दिये। वे समाज-सेवा करते रहे, तो सरकार की उतनी फिक्र कम होगी और उतने अंश में सरकारी सत्ता भी कम होगी। इस तरह सरकारी सत्ता का क्षीण हो जाना बहुत बड़ी बात है। सत्ता के बदले कारुण्य से कुल सेवा हो रही है, ऐसा दर्शन होगा तो सब मानने लगेंगे। अभी इनफ्लुएन्जा आया, तो सभी लोग उसके निवारण के लिए खड़े हो गये। मुफ्त सेवा देने लगे। बहुत सारा काम लोगों की तरफ से हुआ, तो देखते देखते वह कम हो गया। सरकार को कुछ करना नहीं पड़ा। तीन साल पहले हम बिहार में घूम रहे थे। वहाँ बहुत बड़ी बाढ़ आयी थी। २०० ३०० मील तक चारों ओर पानी फैल गया था। सरकारी मदद की जरूरत थी। सरकार मदद करती थी, परन्तु लोगों ने अपनी तरफ से कुछ किया नहीं। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसे कामों के लिए लोगों को आगे आना चाहिए, स्वयं योजना बनानी चाहिए, हिम्मत करनी चाहिए। प्राइवेट सेक्टर आगे आना चाहिए। आज सारी सेवा सरकार पर सौंप दी गयी है। कारुण्यपूर्ण सेवा खतम हो गयी है। किसीको भी गरीबों पर करुणा नहीं आती। व्यक्तिगत गुण-विकास का काम खतम ही हो गया है।

इस तरह मानव के त्रिविध धर्म हैं. १. कुटुम्ब धर्म, २. राष्ट्र धर्म और ३. कारुण्य धर्म। कुटुम्ब धर्म धीरे धीरे समाज में लीन होना चाहिए। फिर भी वह पूरा टूटेगा नहीं। क्योंकि बाप खतम होता है तो बेटा उसे चलाता है। बाप के बाद बेटा है ही। वह वासनामूलक है। परन्तु व्यक्ति का कुटुम्ब धर्म टूट सकता है। नदी समुद्र में लीन होती है तो वह खतम नहीं होती, बहती रहती है। वैसे ही कुटुम्ब धर्म समाज में लीन होगा, फिर भी बहता ही रहेगा। राष्ट्र धर्म को भी कारुण्य धर्म में लीन होना चाहिए। कारुण्य धर्म होगा, तो राष्ट्र धर्म खतम हो जायगा। इस प्रकार अब दो ही धर्म रहे—कारुण्य धर्म का महान् समुद्र और

उसमें मिलनेवाली कुटुम्ब धर्म की निरन्तर बहती नदी। यह होगा, तभी मानव के मनोनुकूल समाज बनेगा।

सर्वोदय से कारुण्य-धर्म की दीक्षा

हमारे सौभाग्य की बात है, स्वराज्य-प्राप्ति के बाद 'सर्वोदय' शब्द निकला और उसने समाज के सामने कारुण्य धर्म पेश किया। इस कारुण्य धर्म का सामूहिक व्यापक रूप भारत के सामने न आता, तो भारत की दुर्दशा होती; क्योंकि तब व्यक्ति का कर्तव्य ही न रहता। सर्वोदय विचार आज हमारे सामने है। इससे हमारा कुल काम कारुण्यमय हो सकता है और बहुत विशाल योजना बन सकती है। जैसे समाज ने अपने ज्ञानियों को खड़ा किया, उनके जरिये तालीम की व्यवस्था कर ली। कहीं न्याय देने की बात है तो चार सज्जन एकत्र होकर सोचते हैं। वे जो फैसला देते हैं, उसे लोग मानते हैं। अब आरोग्य का काम है। उस बारे में जो जानकार, ज्ञानी हैं, वे खड़े होंगे। लोगों को आरोग्य का ज्ञान देंगे, उनकी सेवा करेंगे। आज भी रामकृष्ण मिशन, प्रेम-समाजम्, सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी आदि कई संस्थाओं के जरिये काम हो रहा है। ऐसा होगा तो सरकार का उतना काम कम होगा। सर्वत्र ग्रामदान हो रहे हैं। लोगों ने प्रेम से जमीन की मालकियत छोड़ दी है। सब मिल जुलकर काम करते हैं। अपनी योजना स्वयं बनाते हैं। इस हालत में सरकार को बहुत सारी योजनाएँ खतम होंगी।

पुराने जमाने में पड़ोसियों, व्यापारियों पर लोगों का कितना विश्वास था! कहीं कोई यात्रा करने जाता, तो अपनी सारी पूँजी, जिंदगी की कमाई पड़ोसी के हवाले कर जाता। कुछ भी लिखा पढ़ी न करता। यात्रा से लौटने के बाद यह पड़ोसी या व्यापारी उसकी पूँजी वापस कर देता। पर आज क्या है? कोई हिम्मत करेगा किसीको अपनी पूँजी सौंपने की! कितनी दुर्दशा है! समाज व्यापारी के बिना चलता नहीं, फिर भी व्यापारियों पर विश्वास नहीं। मान लीजिये, कुछ मतभेद होता है, तो सज्जनों के सामने अपनी-अपनी बात रखें और जो फैसला हो, उसे मान लें। कोर्ट की क्या जरूरत है! स्वराज्य के पहले

आखिर का कोर्ट, प्रीवी कौंसिल इंग्लैंड में था। वहाँ तक झगड़े जाते थे। स्वराज्य के बाद दिल्ली आखिर का कोर्ट हुआ और वह इंग्लैंडवाला कोर्ट टूट गया। वह अगर जारी रहता, तो स्वराज्य के लिए आदर ही नहीं रहता। स्वराज्य का अर्थ अगर हम इंग्लैंड का कोर्ट टूटे ऐसा करते हैं, तो ग्रामराज्य का अर्थ यही होगा कि कालीकटवाला कोर्ट टूटे। हम यह स्थिति देखना चाहते हैं कि सज्जन एकत्र बैठते हैं, लोग अपनी अपनी बातें उनके सामने रखते हैं, फिर वे जो फैसला देते हैं उसे मानते हैं। मान लीजिये वहाँ के कुल व्यापारियों ने संपत्ति दान दे दिया। अच्छे-अच्छे नवयुवक चुन लिये। उनको तालीम के लिए भेजा। सर्वोदय विचार क्या है, वे समझ गये। वे काम करने गाँव में जाते हैं, गाँव की सेवा करते हैं। लोगों के पास जाकर उनके घर का सुख दुःख समझते हैं। उनके कोई सवाल हों, तो निवारण की कोशिश करते हैं। इतना प्यार हो गया कि सारे लोग सेवक की राह देखने लगते हैं कि वह कब आयेगा। सेवक आते हैं तो उन्हें प्रेम से खिलाते हैं, अपना सुख दुःख उनके सामने रखते हैं। निर्माण की योजना गाँववाले ही करते हैं। तब आप क्या समझते हैं कि वहाँ दंगा वगैरह हो सकेगा? फिर भी मान लो हो गया, तो भी सेवक जब वहाँ जायगा, तो उसकी आँख देखकर कुल मामला ठंडा हो जायगा। वहाँ शांति सेना काम करेगी। फिर सरकार की पुलिस सेना खतम होगी! इस प्रकार सरकार के एक एक कार्य कारुण्य में डूब जायँगे।

सर्वोदय की इस योजना पर से आपको ध्यान में आयेगा कि यह निगेटिव कार्य नहीं है। सरकार को खतम करना याने सरकार की आवश्यकता न रहे, इतना कारुण्य विस्तार होना चाहिए। इसलिए जो लोग समझते हैं कि हम अराजकवादी हैं, उनसे कहना चाहते हैं कि हम 'वादी' नहीं, 'कारी' हैं। हम करना चाहते हैं—कारुण्य विस्तार करना चाहते हैं, ताकि सारी सरकार उसमें डूब जाय।

कालीकट (केरल)
११-७-'५७

इक्कीस साल के नीचे वोट का हक क्यों नहीं ?

आपको मालूम है कि हिन्दुस्तान में लोकसत्ता चल रही है और इक्कीस साल के ऊपर के हरएक शख्स को मत देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। इक्कीस साल के ऊपरवालों को ज्यादा बुद्धि होती है, वे समझदार होते हैं। इक्कीस साल के नीचेवालों की बुद्धि परिपक्व नहीं होती, इस खयाल से उनको वोट का अधिकार नहीं दिया—ऐसा उसका अर्थ नहीं। अगर ऐसा हो, तो भगवान् शंकराचार्य ने १६ साल की उम्र मे ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य कैसे लिखा ? इसका एक स्वतन्त्र उद्देश्य है। जिसको राष्ट्रीय व्यवहार कहते हैं, यानी जो देश का कारोबार देखने की बात है, वह बहुत छोटी चीज है। जो लोग व्यवहार में पड़े हैं, उन सबको वोट देना पड़ता है, फिर वे शिक्षित हों या अशिक्षित। लेकिन विद्यार्थियों से यह अपेक्षा है कि आप इस दुनिया के ऊपर की दुनिया में व्यवहार करें। जहाँ व्यवहार में आते हैं, वहाँ अनेक प्रकार के भेद खड़े होते हैं। आपको अभेद की दुनिया में विहार करना चाहिए। विद्यार्थियों की अखिल विश्व-व्यापक दृष्टि होनी चाहिए। व्यापक और विशाल चिन्तन की आदत पड़ जाय, तो छोटे व्यवहार में भी आप सफल होंगे। जिसकी दृष्टि छोटी है, वे यदि छोटे व्यवहार में पड़ते हैं, तो बहुत प्रकार की हानि होती है। विश्व-व्यापक दृष्टि से छोटा भी व्यवहार योग्य होता है।

व्यापक दृष्टि से छोटा काम

व्यापक दृष्टि लेकर छोटे से गाँव में भी सेवा का काम करते हैं, तो योग्य काम होता है। उससे दुनिया के साथ टक्कर नहीं होती। अगर गाँव की सेवा इस ढंग से करते हैं कि जहाँ दुनिया के साथ टक्कर हो, तो वह गाँव की सेवा के बदले असेवा ही होगी। हम अपने घर सेवा करते हैं,

तो वहाँ भी सबकी सेवा करनी पड़ती है। परन्तु व्यापक दृष्टि के अभाव में वह सेवा भी संकुचित बन जाती है। उससे मनुष्य का स्वार्थ भी नहीं सधता। इसलिए व्यापक, विशाल दृष्टि प्राप्त होने के बाद छोटे क्षेत्र में भी उतर जायँ, तो भी कुछ हर्ज नहीं।

सीमित ज्ञान से नुकसान

स्कूलों में जो भूगोल सिखाते हैं, उसमें छोटे क्षेत्र का जितना अभ्यास होता है, कुल दुनिया का उतना नहीं होता। चींटी के समान आपका ज्ञान होता है। चींटी आलमारी में रहती है। वहाँ गुड़, घी कहाँ-कहाँ है, यह वह जानती है। परन्तु मान लीजिये, घर को आग लग जाय, तो चींटी को मालूम नहीं होता। वह आलमारी के अन्दर रखे हुए घी, गुड़ में ही मग्न रहती है। इससे आग में घी खत्म, गुड़ खत्म और चींटी भी खत्म! वह ज्ञानी तो बहुत है, परन्तु उसका ज्ञान सीमित है और उसके साथ वृत्ति भी छोटी रहती है, इसलिए लाभ नहीं होता। अतः २२ साल के अन्दर के विद्यार्थी कुल दुनिया की दृष्टि से व्यवहार करें, तभी लाभ हो सकता है।

एस० आर० सी० के समय प्रान्त-प्रान्त में झगड़े पैदा हुए। वे क्यों हुए? संकुचित दृष्टि के कारण। व्यापक दृष्टि होती, तो लोग तटस्थ वृत्ति से सोचते। विद्यार्थियों को यह नहीं लगना चाहिए कि मैं मलयाली हूँ या मैं कन्नड़ हूँ। उन्हें समझना चाहिए कि 'मैं विश्व-नागरिक हूँ। मुझे सारे विश्व का चिन्तन करना है। तटस्थ बुद्धि से मैं ज्ञान हासिल करूँगा। संकुचित उपाधि अपनी बुद्धि में नहीं रखूँगा। अद्वैतमय अन्तरिक्ष में विहार करूँगा। मैं छोटा नहीं। छोटा होता तो चुनाव में वोट देता और छोटे छोटे व्यावहारिक काम में भाग लेता। मैं विश्व मानव हूँ।'

श्रेष्ठ कौन ?

जिसको आप पैट्रिआटिज्म (राष्ट्रवाद) कहते हैं, वह भी छोटी बात है। लोग अपने अपने देश का अभिमान रखते हैं। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।' हमारा देश अच्छा क्यों है? वह हमारा है, इसलिए। अगर हम अफ-

गानिस्तान में होते, तो क्या कहते ? यह कोई वस्तु-वृत्ति का आब्जेक्टिव (कथन) नहीं है, संकुचित वृत्ति का है। दूसरे देशवाले भी ऐसा ही कहेंगे। गधा कहेगा, मैं सबसे अच्छा हूँ। व्याघ्र कहेगा, मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ, मनुष्य कहेगा, मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। एक बार जंगल में शेर से मुकाबला करने का मौका आया, तो मनुष्य ने कहा : "कितना बेवकूफ प्राणी है यह, इसमें अकल भी नहीं है। व्याकरण, इतिहास, गणित कुछ भी नहीं जानता।" शेर बोला : "तुम तो मेरे खाद्य हो। कर सकते हो बचाव ?" बन्दूक नहीं, कुछ भी नहीं, तो शेर उसको उसके व्याकरण इतिहास के साथ खा जाता है। वह समझता है कि मेरे दाँत व नाखून कितने उत्तम हैं ! तब फिर कौन है श्रेष्ठ ? इसमें केवल अपने-अपने अभिमान की बात है।

छोटा ज्ञान हानिकारक

विश्व मानव इस तरह नहीं बोलेगा। वह अपने को किसी देश का निवासी नहीं मानेगा। वह मानेगा, मैं द्रष्टा हूँ और ये सारे दृश्य हैं। जैसे कोई ऊँचे पहाड़ पर चढ़ता है, तो उसे सब ओर का दर्शन होता है, वैसे ही विद्यार्थियों को ऊँचे पहाड़ पर खड़ा होना चाहिए। सभी वोट देनेवाले लोग नीचे रहेंगे। एक दफा ऊपर का दृश्य देख लेने पर नीचे के व्यवहार में पड़ने पर भी व्यवहार पवित्र होगा। मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरी भाषा, मेरा प्रान्त, मेरा घर, मेरा गाँव, मैं अपना; ऐसा संकुचित बनना विज्ञान युग में बेकार साबित होगा। दुनिया का ज्ञान हो, तो मनुष्य से छोटा-सा व्यवहार भी उत्तम सध सकता है। जो मनुष्य उत्तम गणित शास्त्र जानता है, उसके लिए अपने घर का हिसाब रखना आसान है। परन्तु जो गणित नहीं जानता, सिर्फ घर का हिसाब ही जानता है, तो यह बिल्कुल संकुचित बात है। हिन्दुस्तान में कितने ही व्यापारी हैं, जो अच्छा व्यापार नहीं कर सकते, क्योंकि उनको विश्व का ज्ञान ही नहीं।

दृष्टि की महिमा

दृष्टि व्यापक हो, तो मनुष्य का समुचित उपयोग होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर

में संकुचित वृत्ति नहीं थी। उन्होंने अपने विद्यालय का नाम भी रखा : 'विश्व भारती'। उन्होंने बंगाली में लिखा, क्योंकि वे वह भाषा जानते थे। लेकिन जो भी लिखा, व्यापक दृष्टि से लिखा। इस कारण कुल दुनिया के लोग उनका साहित्य पढ़ते हैं। काम चाहे छोटा हो, परन्तु दृष्टि विशाल हो, तो कीमत बढ़ती है। हम एक पत्थर की पूजा करते हैं। हमारी दृष्टि यह हो कि यह पत्थर है, जिसकी हम पूजा कर रहे हैं, तो हम भी पत्थर बन जायँगे। ऐसे कई पूजक हम देखते हैं। मन्दिर में भी एक पत्थर दूसरे पत्थर के सामने बैठता है! कोई ज्यादा पैसा देगा, तो ज्यादा आरती दिखायेगा। थोड़ा देगा तो थोड़ी सी दिखा देगा। यह है 'पत्थर की पूजा'। भक्त अगर भगवद्भाव से पूजा करता और समझता है कि यह पत्थर नहीं, भगवान् है, तो उसकी दृष्टि विशाल बनती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बंगाली भाषा की सेवा की। लेकिन भावना यह थी कि मैं कुल दुनिया की सेवा कर रहा हूँ। महात्मा गांधी ने इस देश की आजादी का काम किया। उनकी भी यह दृष्टि नहीं थी कि मैं भारत की सेवा कर रहा हूँ। वे ऐसा सोचते थे कि मैं भारत के जरिये सम्पूर्ण संसार की सेवा कर रहा हूँ। इसका परिणाम यह हुआ कि उस काम में काफी लोगों का सहयोग मिला। केवल संकुचित दृष्टि होती, तो वह सहयोग न मिलता। गांधीजी का साहित्य सारी दुनिया के लोग पढ़ते हैं। उनका काम किसी देश विशेष के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए था। सबका उसमें समावेश था। इसलिए उनको सब देशों के लिए आदर रहा। मैं माँ की सेवा कर रहा हूँ। 'मेरी माँ' ऐसी संकुचित भावना हो, तो सेवा का रूप एक अलग ढंग का होगा। लेकिन मैं विश्व जननी की प्रतिमा की सेवा कर रहा हूँ, यह भावना हो, तो इससे मैं मोक्ष भी पा सकता हूँ। तुम विद्यार्थी हो। तुम्हें मालूम होगा कि भगवान् कृष्ण की सेवा यशोदा ने किस भावना से की थी? राम की तरफ कौशल्या किस भावना से देखती थी? व्यापक बुद्धि से बालक की सेवा करने के कारण ही वे मोक्ष की अधिकारिणी हुई।

संकुचित दृष्टि के नमूने

हम कहना यह चाहते हैं कि हमें छोटे काम मे पडना हो, तो भी हमारी दृष्टि छोटी न होनी चाहिए। हरएक को कई छोटे-छोटे काम करने पड़ते हैं। यह देह भी छोटी ही है। परन्तु हमारी दृष्टि छोटी हुई, तो छोटे काम भी भयानक होंगे। इसलिए २१ साल के नीचेवालों को मत का अधिकार नहीं है, यह मुझको अच्छा लगता है। आपके साथ मैं भी हूँ। मुझे अधिकार तो है वोट देने का, परन्तु इसमें मैं नहीं पड़ता; क्योंकि मैं विश्व-व्यापक दृष्टि चाहता हूँ। मैं विद्यार्थियों मे शामिल होना चाहता हूँ। मैं हर रोज अध्ययन करता हूँ। बड़ी किताब याने अधिक पन्नेवाली किताबों का नहीं; छोटी-छोटी किताबों का। गीता छोटी सी किताब है, परन्तु उसकी कितनी व्यापक दृष्टि है।

कुछ लोग कहते हैं कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है। ईसामसीह की शरण गये बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। मैं पूछता हूँ, दो हजार साल पहले जो लोग हो गये, क्या वे मोक्ष के अधिकारी थे ही नहीं? कितनी अजीब बात है! साधारण मनुष्य के घर के भी तीन-चार दरवाजे होते हैं, लेकिन ईश्वर के घर में एक ही दरवाजा है! क्या उस दरवाजे से गये बिना अन्दर प्रवेश नहीं होगा? एक मुसलमान भाई कहते थे कि कुरान के अलावा दूसरे किसी धर्मग्रंथ की जरूरत नहीं। मैंने कारण पूछा, तो कहने लगे कुरान का आरभ होता है 'ब' से—'बिस्मिल्लाहिर्रहमानीर्रहीम' और अन्त में आता है 'स'—'मिनल्जिन्न-तिवन्नास्'। तो आरम्भ का 'ब' और अन्त का 'स' लिया तो हो गया—'बस'! अब दूसरी किताब की क्या जरूरत है?

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।

'मेरे बाप का कुँआ समझकर खारा पानी पिया और बोलता है, मीठा ही है।' कहता है, 'मेरे बाप का है।' अरे तेरे बाप का है, परन्तु खारा पानी है। जरा नजदीक के कुँए पर जा और देख वहाँ का पानी कैसा है! बोलता है, 'यही मीठा है, क्योंकि यह कुँआ मेरे बाप का है।' ऐसी संकुचित वृत्ति से वोट देने जायँगे, तो उससे भला नहीं होनेवाला है।

विद्यार्थी अपना दिमाग आजाद रखें

लोग विद्यार्थियों का संघ बनाते हैं। अगर ऐसे संघटन बनना शुरू हुआ, तो समझ लीजिये कि विद्यार्थी खत्म हैं। एक बार इलाहाबाद युनिवर्सिटी में हमारा व्याख्यान था। वहाँ के विद्यार्थियों ने पूछा : "हम विद्यार्थियों का एक फेडरेशन बनाना चाहते हैं। आपकी क्या राय है ?" हमने कहा : फेडरेशन तो भेड़ों का होता है, शेरों का नहीं। आप ही तय करो कि आप भेड़ हैं या शेर ? भेड़ हों, तो करो फेडरेशन। विद्यार्थी को आजाद रहना चाहिए। हर कोई अपनी-अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से सोचे। किसी भी एक विचार के बन्धन में अपने को नहीं बाँधना चाहिए। सबको हम प्रणाम करें, सबकी सेवा करने के लिए तैयार रहें, परन्तु अपना सिर झुकाने के लिए तैयार न रहें। हमारा सिर आजाद है। इसलिए विद्यार्थियों को किसी संघटना में, चाहे वह गांधीवादी हो या मार्क्सवादी, न पड़ना चाहिए। हम विचार की दृष्टि से तरह तरह का अध्ययन कर सकते हैं। यह अच्छी चीज है, परन्तु किसी विचार के साथ शादी करने के लिए हमें राजी न होना चाहिए। इसलिए आप २१ साल तक वोट का अधिकार न होने का सच्चा अर्थ पहचानोगे, तो वह असमर्थता नहीं लगेगी।

आज विद्यार्थियों के सिर पर बड़ी आपत्ति है। सारी तालीम सरकार के हाथ में है। राज्यकर्ता सारे विद्यार्थियों के दिमाग एक ही ढाँचे में ढालना चाहते हैं। फिर जिस रंग की सरकार होगी, उस रंग की तालीम विद्यार्थियों के सिर पर लादी जायगी। दिमाग एक ढाँचे में ढालने की योजना कुल दुनिया के देशों में चल रही है। इसके खिलाफ विद्यार्थियों को अपनी आवाज उठानी चाहिए और कहना चाहिए कि हम अपने सिर पर किसी भी 'इज्म' या विचार को नहीं लादने देंगे। हम स्वतन्त्र हैं, हम आजाद हैं, हम व्यापक दृष्टि से विचार करेंगे और फिर देश के व्यवहार में कूद पड़ेंगे।

कालीकोड (केरल)
१२-७-'५७

दुखियों की सेवा की जाय, किसी जाति की नहीं

आजकल जिस ढंग से हरिजन-कार्य चल रहा है, उससे हम समाधान नहीं है। वही पुराना तरीका है, जो ३० साल पहले शुरू हुआ था। उस तरीके से आज काम बनेगा, ऐसा नहीं है। अब समय आ गया है, जब कि हम हरिजन परिजन समस्त भेदों को ही खतम कर दें। सब एक हैं, हमें मनुष्य की सेवा करनी है। जो अधिक दुखी है, उसकी सेवा पहले करनी है। आपत्ति सब पर आती है। जो मनुष्य आपत्ति मे है, उसकी सेवा करना हमारा धर्म है। किसीको हरिजन नाम देकर उसकी सेवा करने की मेरी तो इच्छा नहीं है। वैसे हमने भू-दान में नियम रखा है कि जो भूमिहीन है, उसको भूमि देनी है, परन्तु जो सबसे ज्यादा दुखी है, उसको पहले देनी है। आज जो हरिजन कहलाते है, वे विशेष दुखी है, यह ध्यान मे रखकर ही यह नियम बनाया है। लेकिन सेवा करनी है, तो सिर्फ हरिजनों की सेवा करने मे काम पूरा नहीं होगा। दूसरे भी ऐसे हैं, जो आपत्ति में हैं। शरणार्थी दुखी हैं। बेचारे टी० बी० के बीमार हैं, उन्हें क्या कम तकलीफ है? ऐसे विविध प्रकार से जो भी दुखी है, उनकी सेवा हमें करनी है, ऐसा निश्चय करें। बाकी सब भेद भाव समाज में डुबा दें, तब सच्ची सेवा होगी। किसी जाति का लेबुल लगाकर सेवा अब नहीं चलेगी।

हमारी जाति : मानव

गाँव मे ब्राह्मण हैं, दूसरे लोग हैं, हरिजन भी हैं। हम कहते हैं, हम सबकी सार्वजनिक सेवा करेंगे यानी हरिजन को अलग रखकर उनकी सेवा नहीं करेंगे। आज होता यह है कि कुल समाज से हरिजनों को अलग रखकर सेवा करते हैं। जैसे घोड़े को बाहर अलग तबेले में बाँधकर उसकी सेवा की जाती है, वैसे ही हम हरिजनों की सेवा करते हैं। उनको कोई अपने घर में स्थान नहीं देता।

एक बात यह भी है कि हरिजन स्वयं चाहते हैं कि उनको अलग रखा जाय और उनके लिए कुछ स्पेशल योजना बने। वास्तव में मानव समुद्र में सारे भेद भाव मिटने चाहिए। किसीकी क्या जाति है, यह पूछना ही नहीं चाहिए। घोड़ा है या बैल, यह देखने से मालूम होता है। जो देखने से मालूम हो, वही जाति है। जाति तो जन्म से होती है न? इतने सारे लोग मेरे सामने बैठे हैं, मैं समझता हूँ, हम सारे मानव हैं। कोई काले रंग का है, कोई कमजोर है, कोई पुष्ट शरीर का है, कोई चश्मा लगाता है, किसीको बिना चश्मे से भी दिखता है, परन्तु ये मानव हैं। कौन ब्राह्मण है और कौन क्षत्रिय—यह नहीं दीख रहा है। वह तो मरने के बाद ही मालूम पड़ेगा।

मरने के बाद पहचान होगी

गुणों की पहचान मरने के बाद ही होती है। तब तक किसीका कोई मान अपमान नहीं होना चाहिए। लोग हमें मानपत्र देते हैं। हम कहते हैं, हमें पहले मरने तो दो, उसके बाद जो भी करना है करो। अभी तो हम साधु पुरुष दीखते हैं, लेकिन कल बदमाशी शुरू कर देंगे तो क्या होगा? इसलिए मरने के बाद ही मालूम होगा कि यह ढोंगी है या सज्जन? मान अपमान के लिए गुण दोष जानना जरूरी है। अगर कोई ज्ञानी होगा, तप करता होगा, तो वह 'ब्राह्मण' कहा जायगा। शौर्य होगा तो वह 'क्षत्रिय' कहा जायगा। अगर सेवा वृत्तिवाला होगा तो 'शूद्र'। घर का कारोबार देखता होगा, सबके लिए संग्रह करता होगा, तो वह 'वैश्य' होगा। इस तरह यह फैसला मरने के बाद ही होगा।

सेवा का सही तरीका

अगर हरिजनों को होटल आदि स्थानों में नहीं आने देते, तो दूसरे भी वहाँ न जायँ, यही उसका तरीका हो सकता है। वे लोग होटलवाले से कहें कि मैं भूखा हूँ, इसलिए मैं तुम्हारी दूकान में आता हूँ। मेरी तरह वह हरिजनभाई भी भूखा है। लेकिन तुम उसे खिलाते नहीं हो, तब मुझे क्यों आना चाहिए? हरिजनों को कुँए पर पानी भरने नहीं देते, तो दूसरे लोग भी वहाँ न जायँ।

हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्ता भी उस कुँए पर न जायँ। जब तक हरिजनों को पानी नहीं मिलता, तब तक कार्यकर्ता भी पानी न पिये। एक को बिना पानी के मरने दो। फिर देखो, एक बलिदान का क्या परिणाम आता है!

कालीकोड (केरल)
१२-७-'५७

शान्ति-सेना का कार्य

: १२ :

हमने केरल के लिए एक छोटा-सा सर्वोदय मण्डल बनाया है। ऐसे मंडल में अच्छे से-अच्छे व्यक्ति आने चाहिए। परन्तु इससे बाहर अच्छे व्यक्ति नहीं होने चाहिए, ऐसा आग्रह नहीं है। हमने समितियाँ तोड़ी हैं, तो ऐसे मण्डल क्यों खड़े करते हैं? आखिर थोड़ा व्यवहार करना ही पड़ता है। इसके लिए कुछ श्रद्धा का आधार चाहिए। फिर यह मंडल इस प्रकार का नहीं है कि कुछ लोग चुनते हैं और वे काम चलाते हैं। दो टुकड़े करनेवाली बात है वह। यह सर्वोदय का कार्य है। इसमें किसीको चुनने, न चुनने, का सवाल ही नहीं आता। क्या बाबा को यह काम करने के लिए किसीने चुना था? उसके मन में एक विचार आया, उसको उठा लिया और काम करने लगा। लोगों ने उसके काम को मान्य किया और मदद देने लगे। इसलिए हमारा बड़ा मित्र मण्डल होते हुए भी व्यवहार के लिए यहाँ सर्वोदय मण्डल बनाया गया है।

शांति-सेना परिचित क्षेत्र में कारगर होगी

मैं बार-बार कहता हूँ कि सरकार को समाप्त करना है। यह तो मन्त्र जैसी बात है। इसका अर्थ समझना चाहिए। हमारे कार्य में बीच-बीच में सरकार की मदद मिलेगी। कुछ हम लेंगे भी, परन्तु हमें निरंतर यह बात सामने रखनी चाहिए कि सरकार समाप्त करनी है। लोग ही अपने त्राता बनें। लोक कार्य में बहुत बडी बात है डिफेन्स (रक्षण) की। यह नहीं करेंगे, तो लोक अनाथ बन जायँगे। इसलिए स्थान-स्थान पर रक्षण की शक्ति होनी चाहिए। यही शान्ति-

सेना की बात है—दूसरी सेना से याने हिंसक सेना में और इसमें फरक है। अनुशासन वगैरह कुछ बातें तो दोनों में समान होंगी, परन्तु दूसरी कुछ बातें सर्वथा भिन्न होंगी। हिंसक सेना दूर जाकर अच्छा काम कर सकती है, क्योंकि वहाँ गोली चलानी पड़ती है। इसलिए परिचय न हो तो ज्यादा अच्छा कार्य होता है। अंग्रेजों ने सेना के दो टुकड़े किये थे। पंजाब में अगर सेना की जरूरत होती, तो मद्रास की सेना वहाँ जाती, क्योंकि अपरिचित क्षेत्र मे सहार अच्छा होता है। परन्तु यह अहिंसक सेना परिचय के क्षेत्र मे ही खूब काम कर सकती है। जहाँ खूब सेवा की हो, वहीं वह शान्ति कायम कर सकती है। यह नहीं कि यहाँ का कोई शख्स फ्रास में जाय और वहाँ शाति-सेना का काम करे। जिनके पास व्यास भगवान् के समान नैतिक शक्ति हो, वैसे लोग दूसरे स्थान पर जाकर भी सेवा कर सकते हैं। बाकी उस-उस स्थान के लोग ही उस-उस स्थान मे सेवा के लिए जा सकेंगे।

शांति-सेना का नित्य कार्य : सेवा

शाति सैनिकों का काम यही हो कि वे उस-उस स्थान मे शाति भग न होने दें। उनका काम प्राकृतिक चिकित्सा के समान है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोग न हो, इसीका खयाल किया जाता है। इस पर भी रोग हो जाय, तो शरीर शुद्धि का इलाज है। इसी तरह अशाति न होने देना ही शान्ति सेना का प्रयास रहेगा। शाति-सेना नित्य सेवा का काम करेगी, परन्तु विशेष अवसर पर वह शाति का काम करेगी। सारे लोगों में हमारे सेवक बँटे रहेंगे। उनकी तालीम के लिए हम योजना करते रहेंगे। वे भू-दान, ग्रामदान, साहित्य का प्रचार करेंगे, स्वच्छता सिखायेंगे, लोगों को मदद देंगे, रोगियों की सेवा करेंगे। इस प्रकार की तरह-तरह की सेवा का ज्ञान उनको रहेगा। लोगों का उन पर विश्वास बैठेगा। किसी सकट के समय वे तुरन्त सेवकों को बुलायेंगे। सेवक हमें कभी भी मदद करने के लिए तैयार हैं, ऐसा विश्वास लोगों को होना चाहिए।

शहरों की उपेक्षा न की जाय

सर्व पक्षमुक्त और सदा-सर्वदा सेवा के लिए तैयार सेवकों की यह कल्पना नयी है। कुछ लोग पार्टी से मुक्त हैं, वे विशिष्ट सेवा करते हैं, लेकिन शान्ति सैनिक हर सेवा के लिए तैयार रहेंगे। ऐसे १००० सेवक यहाँ तैयार करने हैं। उनका नियन्त्रण शहरों पर भी होगा। ज्यादातर शहरों में ही झगड़े-बखेड़े हुआ करते हैं। ये एस० आर० सी० के झगड़े सारे-के-सारे शहरों में ही हुए। इसलिए शहरों की उपेक्षा करना हमारे लिए ठीक नहीं। शहरों की भी खूब सेवा होनी चाहिए। वहाँ सम्पत्ति-दान, साहित्य प्रचार काफी चलना चाहिए। उससे लोगों के साथ हमारा सम्पर्क बना रहेगा। शहरों से जो सम्पत्ति-दान मिलेगा, वह शहरों में ही खर्च नहीं होगा। उसका कुछ अंश वहाँ खर्च होगा, परन्तु ज्यादा पैसा गाँवों की सेवा में लगेगा।

कालीकोट (केरल)
१४ ७ '५७

पत्रकारों से

: १३ :

पत्रों की जिम्मेवारी

आप सब जानते हैं कि पत्रों पर कितनी बड़ी जिम्मेवारी है। इस समय यह बहुत बड़ी ताकत बन रही है। जैसी सरकार और साहित्यिकों की शक्ति होती है, वैसी ही पत्रकारों की स्वतन्त्र शक्ति होती है। उसका दुरुपयोग भी हो सकता है और अच्छा उपयोग भी। सत्य सामने रखेंगे, प्रेमल-वाणी रखेंगे, तो उससे लाभ ही लाभ होगा। सत्य के बिना चारा नहीं है। सत्य भी प्रेम से और नम्रता से प्रकट होना चाहिए। यह गुण भारतीय संस्कृति का है।

गुलामी में राजनीति का महत्त्व

इन दिनों पॉलिटिक्स (राजनीति) को बहुत ज्यादा महत्त्व दिया जाता है।

जब देश स्वतन्त्र नहीं होता, तब राजनीति का महत्त्व होता है। बड़े-बड़े महापुरुष उसमें शामिल होते हैं। गुलाम देश में आजादी की कोशिश करना ही सबका धर्म होता है। लोकमान्य तिलक से पूछा गया था कि स्वराज्य के बाद आप कौनसे मिनिस्टर बनेंगे, तो उन्होंने जवाब दिया : "मै या तो वेदाध्ययन करूँगा या गणित का प्रोफेसर बनूँगा।" उन्होंने पॉलिटिक्स में अपनी जिंदगी बितायी, परन्तु समय मिलने पर गीता, ब्रह्मसूत्र, वेद जैसे ग्रंथों का वे रोज रात को अध्ययन करते थे। वे लाचारी से पॉलिटिक्स में पड़े थे। वैसे ही महात्मा गाधी का जीवन पॉलिटिक्स में गया, परन्तु उनका दिल वहाँ नहीं था। उनका दिल समाज-सेवा में, भंगियों के उद्धार म, बहनों के उद्धार में और इसी तरह के सेवा-कार्य में लगा रहता। वे सेवा कार्य के खयाल से ही पॉलिटिक्स मे पड़े। उन्होंने देखा कि इसके बिना हिन्दुस्तान के लोगों का उद्धार नहीं होगा। इसीलिए उन्होंने हिन्दुस्तान के स्वराज्य का काम उठाया और उसके जरिये सारी दुनिया की सेवा की। आखिर स्वराज्य के बाद उन्होंने कांग्रेस को यही सलाह दी थी कि कांग्रेस सेवा-संस्था बने। तात्पर्य यह है कि उसे वे सर्वोत्तम सेवा-संस्था बनाना चाहते थे। कई कारणों से वह नहीं बनी। इसके लिए मैं किसीको दोष नहीं देता। वह परिस्थिति ही वैसी थी।

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सामाजिक सेवा का महत्त्व

स्वराज्य के बाद क्या हालत है? पॉलिटिक्स मे भीड़ होती है, क्योंकि वहाँ सत्ता है। आपस-आपस में मत्सर है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद पॉलिटिक्स में त्याग कहाँ है? अब त्याग समाज सेवा में होता है। पहले कांग्रेस का मेंबर होने के लिए काफी तकलीफ सहन करनी पड़ती थी। आज यह नहीं है। यही हालत सब पार्टियों की है। कोई सत्ताधारी है, तो कोई सत्ताकांक्षी। दोनों मे टक्कर होती है। पार्टी के अंदर-अंदर भी गुट बनते हैं। द्वेष तथा मत्सर का वातावरण पैदा होता है। इसलिए स्वराज्य के पहले राजनीति में त्याग होता है, परन्तु स्वराज्य के बाद वह त्याग सामाजिक क्षेत्र में आता है। हरिजनों का उद्धार करना होगा, भंगियों को मुक्ति दिलानी होगी, तो उसके लिए त्याग करना

पड़ेगा, विरोध सहन करना पड़ेगा। यह भी हो सकता है कि जो राजनीति में गये हैं, वे भोग नहीं भोगते; जनक जैसे केवल सेवक के नाते रहते हैं। लोगों में काम करनेवाले शुकदेव जैसे है। राज्यकर्ता भगवान् विष्णु के समान निर्लिप्त बनें और जन सेवा करनेवाले शंकर भगवान् के समान विरक्त रहें। दोनों आदर्श रख सकते हैं। राजनैतिक सत्ता में त्याग करना पड़ता है, परन्तु समाज-सेवा में स्वाभाविक त्याग होता है। त्याग का अधिष्ठान जहाँ होता है, वहाँ शक्ति होती है। इसलिए स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोगों का ध्यान सामाजिक सेवा की तरफ जाना चाहिए।

आज अखबारों की क्या हालत है! किसी मिनिस्टर ने कहीं फैक्टरी खोली, थोड़ा भाषण दिया, तो लम्बे डेढ़ दो कालम अखबार में छपते हैं। आईक और माईक ने बातें कीं, इसकी खबर बड़े टाइप में आती है। यह बिलकुल 'आउट ऑफ प्रपोर्शन' होता है। इसलिए हमारा नम्र सुझाव है कि थोड़ा 'प्रपोर्शन' रखा जाय। सामाजिक सेवा म जो शक्ति है, वह अखबारों से प्रदर्शित हो।

कालीकोट (केरल)
१४-७-'५७

प्रतिरोधी प्रेम की ताकत प्रकट करनी है : १४ :

प्रतिरोधी प्रेम में शक्ति है, अनुरोधी में नहीं

प्रेम का अनुभव मनुष्य को जन्म से मरने तक होता रहता है। यह भी कह सकते हैं कि मनुष्य प्रेम से जन्म पाता है और मरता है, तो प्रेम में ही लीन होता है। मनुष्य को प्रेम का इतना व्यापक अनुभव होते रहने पर भी प्रेम की ताकत नहीं बनती; क्योंकि हमारा प्रेम अनुरोधी होता है। याने जो हम पर प्रेम करते हैं, उन पर हम प्रेम करते हैं। यह जानवर भी करते हैं। गाय के पास आप हरी घास लेकर जाते हैं, तो वह भी प्रेम से पास आती है। गाय में प्रेम की ताकत नहीं है, पर आपका प्रेम देखकर उसमें भी अनुरोधी

प्रेम पैदा होता है। लेकिन जहाँ प्रतिरोधी प्रेम प्रकट होता है, वहाँ ताकत पैदा होती है। कोई हमसे द्वेष करता है, फिर भी हम उस पर प्रेम करें, तब ताकत बढ़ती है। द्वेष से द्वेष, प्रेम से प्रेम या भय से भय करना तो जाति की प्रक्रिया है। बकरी से बकरी पैदा होती है और भेड़ से भेड़, वैसे ही अनुरोधी प्रेम से प्रेम पैदा होता है। यह 'बीज फल-न्याय' से होता है। प्रेम का स्वाभाविक धर्म है कि उसके सामने प्रेम ही प्रकट होता है। एक आईना है। उसके सामने एक चीज रखी, तो उसी चीज का प्रतिबिंब वहाँ अंकित होता है। आईने ने चित्र निर्माण नहीं किया, प्रतिबिंब दिखाया। इसी तरह हम पर कोई प्रेम करता है, तो हम उस पर प्रेम करते हैं। वह प्रेम का प्रतिबिंब है। माँ बच्चे को प्यार करती है, बच्चा माँ को प्यार करता है, इससे प्रेम की शक्ति प्रकट नहीं होती। हम दुश्मनों पर प्यार करेंगे, तभी प्रेम की ताकत प्रकट होगी।

ईसामसीह ने स्पष्ट कहा है: 'तुम तुम्हारे शत्रु पर भी प्यार करो'। यही बात औरों ने भी कही है, परन्तु इतनी स्पष्ट नहीं कही, जितनी ईसा मसीह ने कही है। इस बात पर आज अमल नहीं किया जा रहा है। बड़े बड़े देश एक-दूसरे से डरते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे को दोषी मानते हैं। इसलिए प्रेम का प्रयोग द्वेष के सामने नहीं कर पाते। वे द्वेष के साथ प्रेम का प्रकट होना असंभवनीय मानते हैं। अगर हम प्रेम की शक्ति निर्माण करना चाहते हैं, तो हमें द्वेष के साथ प्रेम करना सीखना चाहिए। भूदान, ग्रामदान आन्दोलन के मूल में यही विचार है।

आक्रमणकारी प्रेम

आज समाज में भेद बने हैं। कुछ भूमिहीन हैं, कुछ अपने को जमीन का मालिक माननेवाले भूमिवान् हैं। भूमिहीनों को जमीन मिलनी चाहिए। जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए। भूमिवानों से हम कहते हैं, तुम जमीन दान कर दो। याने ऐसा प्रेम प्रकट करो कि उसके सामने भूमिहीनों का दबाव, भय न टिक सके। दान देना है, तो वह दबाव से नहीं, विचार समझकर देना है।

कोई शख्स एक कुर्ता माँगता है। देनेवाला कहता है, एक कुर्ते से क्या होगा? एक से तो तुम्हारी ठंड नहीं जायगी। इसलिए कुर्ते के साथ यह कोट भी लो। इसको हम आक्रमणकारी प्रेम याने द्वेष को पचानेवाला प्रेम कहेंगे। यह प्रकट होगा, तब ताकत पैदा होगी। भूदान ग्रामदान के काम में इस विचार को समझ-कर लोग आयेंगे, तो इतनी शक्ति प्रकट होगी कि उसका असर सारी दुनिया पर होगा।

हिंसा से मसले हल नहीं होंगे

जो द्वेष करते थे, उनके प्रति व्यक्तिगत जीवन में प्रेम प्रकट किया गया और उन्हें जीता गया। परन्तु सामूहिक या राष्ट्रीय तौर पर प्रेम प्रकट करने का कार्य नहीं हो पाया है। जब तक हम प्रेम शक्ति से समाज के मसले हल नहीं करेंगे, तब तक यह नहीं होगा। अभी तक जो भी मसले हैं, वे हिंसा या सरकार की शक्ति से हल होंगे, ऐसा विश्वास है। सरकार की शक्ति याने उसके पीछे सेना की ही शक्ति होती है। कुल मिलाकर हिंसा से मसले हल होंगे, ऐसा ही विश्वास है। परन्तु वस्तुतः हिंसा से मसले हल होते हैं, यह अनुभव में नहीं आता। इस पर कहा जाता है कि इसमें हिंसा का दोष नहीं, हमारा ही दोष है; क्योंकि जो हिंसा की, उससे ज्यादा वह करनी चाहिए थी। किसीने किसी राज्य पर हमला किया और एक हार गया तो हारनेवाला सोचता है, हमारी हार इसलिए हुई कि विरोधी की सेना हमसे ज्यादा थी। वह सेना बढ़ाता है और फिर हमला करता है। उसमें दूसरा हारता है, तो वह भी वैसे ही सोचता है। इस तरह सोचते-सोचते सेना बढ़ाते चले जाते हैं। एक ने तलवार का उपयोग किया, तो दूसरा सोचता है, मेरे पास बन्दूक चाहिए। उसने बन्दूक ली, तो यह सोचता है, मेरे पास तोप चाहिए। फिर वह कहता है कि बम चाहिए, ताकि हम ऊपर से डाल सकें। इस तरह हरएक एक दूसरे से बढ़कर शस्त्र चाहता है। पर मसला हल नहीं होता। तब सवाल उठता है कि इनका हल कैसे हो? अब सोचा जा रहा है कि धमकाने से मसले हल होंगे। लड़ाई नहीं होनी चाहिए, परन्तु ऐसा लगना चाहिए कि अब लड़ाई होने का लक्षण है। इस

प्रकार की 'मिक ऑफ वार पालिसी' आजकल निकली है। इससे भी कुछ होनेवाला नहीं है। जहाँ हिंसा-शक्ति सबके हाथ में आ गयी, वहाँ उससे कुछ बननेवाला नहीं है। अब तो जो कुछ भी होगा, वह अहिंसा या प्रेम की शक्ति से होगा।

द्वेष करनेवाले पर प्रेम किया जाय

अब मनुष्य का दिमाग सोच रहा है कि प्रेम से मसले कैसे हल हो सकते हैं। शक्ति अनुरोधी प्रेम में नहीं, प्रतिरोधी प्रेम में होती है। उसकी युक्ति हम ढूँढनी चाहिए। जहाँ जहाँ द्वेष प्रकट होता हो, वहाँ वहाँ प्रेम प्रकट करते चले जायँ। हम इसीको धर्म कहते हैं। यही सब धर्मों का सार है। सामने जितना घना अन्धकार हो, उतना हमारे पास उत्तम प्रकाश होना चाहिए। यह समझना कठिन नहीं, परन्तु उसका उपयोग कैसे करें, यह सवाल है। इसलिए हमने शांति-सेना की बात रखी है।

सबकी सेवा करनी है

शांति सेना याने निरंतर सेवा करनेवाली सेना। वह किसी प्रकार का भेद नहीं करेगी। वह सब प्रकार के भेदों को अपने पेट में समेट लेगी। सूर्य किरणें प्रकट होती हैं, तो आकाश के कुल नक्षत्र विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार हमारे सेवकों के सामने तरह तरह के भेद क्षीण होने चाहिए। अस्पताल में किसी प्रकार का भेद नहीं होता। कोई किसी भी जाति का, धर्म का या पक्ष का हो, सज्जन हो या दुर्जन, सबकी सेवा करते हैं। इतना ही समझते हैं कि यह दुःखी है। यह नहीं सोचते कि अगर यह दुर्जन अच्छा हो जायगा, तो और भी दुराचार करेगा। अस्पताल के लोग दुःखी लोगों की सेवा करना ही अपना कर्तव्य मानते हैं। इस भावना से अस्पताल के सेवक सेवा करते हैं, तो परिणाम अच्छा ही आता है। लोग उन पर विश्वास, श्रद्धा रखते हैं। इसी तरह दुःखितों की निष्काम, निष्पक्ष, निरपेक्ष सेवा करनेवाली एक सेना हमें खड़ी करनी चाहिए। उसका धन्धा ही द्वेष के सामने प्रेम प्रकट करना होगा।

इसके लिए कुछ लोग आगे आयें। बाकी सब लोग मदद करें। हिंसक सेना में सब नहीं जाते। कुछ जाते हैं और बाकी सब मदद देते हैं। वैसे ही द्वेष पर प्रेम का हमला करने के लिए सब तैयार नहीं हो सकते, परन्तु मदद करने के लिए सब तैयार हो सकते हैं। शांति सैनिकों के हाथ में प्रेम, स्नेह का ही शस्त्र रहेगा। जहाँ-जहाँ द्वेष है, वहाँ वहाँ वे प्रेम से शांति करेंगे और ऐसी सेना की मदद सब करेंगे।

सत्ता से मंगल और अमंगल दोनों होता है

हम हिन्दुस्तान में प्रेम की शक्ति प्रकट करना चाहते हैं। हम उससे यहाँ के मसले हल करते हैं, तो सारी दुनिया का उद्धार होगा। हिंसा हर पक्ष को मदद करती है। विज्ञान के कारण हर किसीके पास वह जा सकती है, इसलिए हिंसा से मसले हल नहीं होंगे, ऐसा भाव आज सबके मन में आ गया है।

कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसामसीह हो गये, फिर भी प्रेम का अमल नहीं हुआ, तो आज कैसे होगा? उस वक्त नहीं हुआ था, क्योंकि उस जमाने में लोगों का मन तैयार नहीं था। आज विज्ञान के कारण लोगों की मनःस्थिति अनुकूल है।

लोग यह भी पूछते हैं कि सत्ता के जरिये मसला हल क्यों नहीं करते? सत्ता के जरिये क्या नहीं हो सकता? सत्ता के जरिये घी पैदा हो सकता है, सत्ता के जरिये मैच बाक्स तैयार हो सकता है और सत्ता के जरिये घी में आग भी लग सकती है। सत्ता के जरिये बड़े बड़े मकान बन सकते हैं और सत्ता के जरिये ही वे खतम भी किये जा सकते हैं। उत्तम-उत्तम लाइब्रेरियाँ बनाते हैं और दुनिया की कुल पुस्तकें वहाँ रखते हैं। यह सारा सत्ता ही करती है, परन्तु वही सत्ता एक दूसरे की लाइब्रेरी पर ऊपर से बम डालकर उसको खतम भी करती है। इस तरह का धन्धा हमें नहीं चाहिए। हम नयी शक्ति प्रकट करना चाहते हैं, जो कल्याण ही कर सकती है। सत्ता मंगल भी करती है और अमंगल भी। सत्ता के जरिये कुछ कार्य अच्छे भी होते हैं, इसमें

शक नहीं, परन्तु उससे बुनियादी मसले हल नहीं हो सकते और वह हालत पैदा नहीं हो सकती, जो दुनिया का उद्धार करे। वह शक्ति ग्रामदान, सर्वोदय से ही प्रकट हो रही है।

कुन्नमगलम् (केरल)
१६ ७ '५७

केरल दुनिया पर प्रभाव डाले : १५ :

केरल की यात्रा में हमे अच्छा अनुभव आया। यहाँ के लोगों का दिल उदार है। वे विचारों को अच्छी तरह समझते हैं। इस प्रदेश का संबंध दुनिया के साथ पुराने जमाने से रहा है। रोमन साम्राज्य से भी यहाँ का व्यवहार चलता रहा। इससे यह स्वाभाविक है कि यहाँ के लोगों की बुद्धि संकुचित न रहे, व्यापक बने। कुल दुनिया की क्या हालत है, यह यहाँ के लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं।

दुनिया को शांति की भूख

इस समय कोई शख्स अपने प्रांत या देश का ही सोचेगा, तो नहीं चलेगा। जो भी सोचना है, दुनिया के ख्याल से सोचना है। दुनिया के विचारों का प्रवेश हमारे देश में होगा। इसकी दूसरी बाजू भी है। हमारे विचार भी दूसरे देशों मे फैल सकते हैं। दरवाजा खुला है, तो जैसा उधर से इधर आता है, तो इधर से उधर भी जायगा। इसलिए कुल दुनिया को ख्याल में रखकर अगर हम सही कदम उठाते हैं, तो सारी दुनिया पर उसका प्रभाव पड़ेगा। आज सारी दुनिया के सामने मूल समस्या शांति स्थापित करने की है। शायद ही किसी जमाने में आज जैसी शांति की भूख रही हो। जो देश कल तक बिलकुल हिंसा के विचार में डूबे थे, आज वे हिंसा से मुक्ति पाना चाहते हैं। अभी तक शस्त्रास्त्र मानव के हाथ में थे, लेकिन अब मानव ही उनके हाथों

चिक गया है। अगर कहीं भी विश्वयुद्ध की आग भड़क उठे, तो उसका नियंत्रण नहीं हो सकेगा। समस्याओं का हल युद्ध से या हिंसा से होगा, ऐसी आज मनुष्य को तो आशा नहीं रही। कम-से-कम इतना हुआ है, तो आगे की राह खुल जायगी। *अगर शस्त्र से मसले हल नहीं होते, तो कोई ऐसा मार्ग* निकलना चाहिए कि मसले हल हो सकें। इस प्रकार का मार्ग केरल में निकल सकता है और निकलना चाहिए।

केरल की तरफ दुनिया की आँखें

आज केरल की तरफ दुनिया की दृष्टि लगी है, क्योंकि यहाँ एक ऐसी घटना घटी है, जो दुनिया में कहीं नहीं हुई। जहाँ-जहाँ कम्युनिस्ट सरकार बनी, वहाँ खूनी क्रांति हुई। लेकिन यहाँ शांतिमय तरीके से, चुनाव के तरीके से वह बनी। हम समझते हैं कि यह घटना हमारे देश के लिए बोधप्रद है। यह कैसे हो सका? पहले जो सरकार थी, उस पर लोगों का विश्वास नहीं था, इसलिए नयी सरकार बनी। यह स्थूल कारण है। उसका मुख्य कारण दूसरा है और उसीमें भारत की ताकत छिपी है।

भारत हर विचार को अपना रंग देता है

भारत दुनिया का कोई भी विचार वैसा-का-वैसा नहीं लेता। अपना संस्कार उस पर डालता है। भारत में ईसाइयत आयी, तो वह यूरोप में जाने के पहले आयी। ईसामसीह के जाने के बाद ५० साल के अंदर-अंदर ही वह यहाँ आयी। यूरोप के लोग कहते हैं कि वह यूरोप का धर्म है, परन्तु वास्तव में एशिया का धर्म है, हिन्दुस्तान का धर्म है। यहाँ की ईसाइयत पर भारत का रंग चढ़ा है। इसलिए ईसाइयत का जो तत्त्वज्ञान यूरोप में चलता है, उससे भिन्न तत्त्वज्ञान यहाँ की ईसाइयत का है। ईसाइयत जब यूरोप में गयी, तब वहाँ की पृष्ठभूमि एक प्रकार की थी और हिन्दुस्तान में आयी, तो यहाँ की पृष्ठभूमि दूसरे प्रकार की थी। ईसाइयत आने के पहले हिन्दुस्तान में अनेकविध दर्शन विकसित हो आये थे। वेद, उपनिषद्, भागवत धर्म, बौद्ध, जैन-विचार और सांख्य वगैरह षड्दर्शन, इतने विशाल और व्यापक दर्शन की दृष्टि यहाँ थी।

ईसाई धर्म के यहाँ आने पर सेंट थामस जैसे व्यक्तियों ने भारत के पूर्व दर्शनों का, तत्त्वज्ञान का अच्छा अंश चूस लिया और यहाँ के हिंदू-धर्म ने ईसाइयत का रस चूस लिया। इसलिए हिन्दू-धर्म का रूप बदल गया और ईसाइयत का भी रूप बदल गया। यह हिन्दुस्तान की खूबी है। वह अच्छाई को चूस लेता है और उसको अपना रूप देता है। कितने ही इंडियन क्रिश्चियन हमने देखे, जो मांसाहार नहीं करते! वे कहते हैं, प्रेम के साथ मांसाहार बैठता ही नहीं। यूरोप में भी मांसाहार छोड़ने की बात चली है। परन्तु वहाँ वह विचार प्राकृतिक जीवन के खयाल से चल रहा है। ईसाइयों ने जो मांसाहार छोड़ा है, उन पर यहाँ के दर्शन का असर पड़ा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि वेद, उपनिषद् यहाँ के ईसाइयों का ओल्ड टेस्टामेंट है। यही हालत इसलाम की हुई। जिस तरह का इसलाम यहाँ है, उससे भिन्न प्रकार का बाहर है। भारत के इस्लाम पर सूफी विचार का प्रभाव है। सूफी विचार वेदांत का ही रूप है। इसीलिए भारत का इसलाम बाहर के इसलाम से भिन्न है।

भारत में संवैधानिक कम्युनिज्म

हिन्दुस्तान की यह खूबी ध्यान में रखी जाय, तो दिखायी देगा कि यहाँ जो कम्युनिज्म आया है, उसको भारत अपना रूप दे रहा है। समाजवाद को तो भारत ने आत्मसात् कर लिया है। इसलिए भारतीय समाजवाद यूरोपीय समाजवाद से भिन्न है। भारत का रूप उसको मिल रहा है। यहाँ का समाजवाद अहिंसा पर जितना जोर दे रहा है, उतना यूरोप का नहीं। गांधीजी के शिष्य जितना अहिंसा को मानते हैं, उतने ही यहाँ के समाजवादी अहिंसा के बारे में बोलते हैं, यह बहुत बड़ी बात है। वही हालत कम्युनिज्म की है। यहाँ का कम्युनिज्म भारतीय कम्युनिज्म होगा। वह वैधानिक तरीके से यहाँ आया है और कम्युनिस्टों ने जाहिर किया है कि हम विधान में रहकर काम करेंगे। उन्होंने यह भी कहा है कि जरूरत पड़े तो हम विधान ही बदलेंगे। वह तो बदल हो सकता है। कोई नहीं

कहता कि वह ब्रह्मदेव का शब्द है। विधान में बदल करने का अधिकार वैधानिक है। इस पर हम कहते हैं कि यह भारत की प्रतिभा है। आज वह विधान की बात करता है, परन्तु देखते देखते हिन्दुस्तान का कम्युनिज्म अहिंसा की भी बात करने लगेगा। यहाँ गरीबी बहुत है। कम्युनिस्टों की तीव्र इच्छा है कि उसका जल्दी निरसन हो। जब तीव्र भावना प्रकट होती है, तब उतावली भी रहती है। इस कारण कभी कभी हिंसा आ जाती है, परन्तु भारतीय संस्कृति को छोड़कर कोई काम नहीं किया जा सकता।

जन-संपर्क के लिए भजन

हमने तेलंगाना में देखा कि कुछ कम्युनिस्ट लोगों के साथ भजन भी करते थे। हमने उनसे कहा कि "आपका ईश्वर पर कब विश्वास बैठा?" उन्होंने जवाब दिया : "ईश्वर-भावना से तो हम भजन में हिस्सा नहीं लेते, परन्तु हमें जनता के लिए प्रेम है। यहाँ की जनता को ईश्वर पर श्रद्धा है। अतः हम जन-सम्पर्क की दृष्टि से ईश्वर का भजन करते हैं।" मैंने कहा : "ईश्वर जनता की मार्फत आपको खींच रहा है।" एक भाई ने हमें बताया कि "मैं जिन लोगों में रहता हूँ, वे सब बीड़ी पीते हैं। मुझे बीड़ी पीना पसन्द नहीं है, परन्तु जन-सम्पर्क के लिए मुझे भी बीड़ी पीना पड़ता है। अगर मैं बीड़ी न पीऊँ तो जनता से अलग पड़ जाऊँगा।" ईश्वर कितना भी खराब हो, परन्तु वह बीड़ी जितना खराब नहीं है। जन सम्पर्क के लिए बीड़ी पीते हैं, तो जन-सम्पर्क के लिए ईश्वर का नाम लेने में क्या नुकसान है! इसीलिए यहाँ का कम्युनिज्म भारतीय कम्युनिज्म बननेवाला है।

केरल में हृदय-परिवर्तन का दर्शन हो

भारतीय कम्युनिज्म याने हृदय परिवर्तन पर विश्वास रखनेवाला कम्युनिज्म। इसलिए केरल में हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया चलेगी, तो दुनिया पर उसका असर होगा। हृदय परिवर्तन पर विश्वास करने के लिए हिन्दुस्तान का कम्युनिज्म बँध गया है। वे विधान में फरक करना चाहते हैं, तो उसके लिए

उन्हें सबको अपने विचार पर लाना होगा, विचार प्रचार करना होगा। यहाँ हृदय परिवर्तन का विचार है, इसलिए कालड़ी में कम्युनिस्ट सरकार के एक बड़े मन्त्री ने कहा कि "ग्रामदान अच्छा है, वह होना चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा कि "जमीन की मालकियत मिटाने का काम सरकार नहीं कर सकती।" हम समझते हैं, यह बहुत बड़ी मानसिक तैयारी हो गयी। इस तरह कम्युनिस्टों की मानसिक तैयारी है। इसका मतलब है कि भारत का हृदय अपने ढंग से अपने मसले हल करेगा। किसीने हमसे कहा था कि उसने अपने यहाँ सोयाबीन बोया, तो कुछ सालों के बाद उसको भारतीय रंग (यहाँ की दाल का रूप) आया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जमीन और हवा का असर होता ही है। भारत के आध्यात्मिक विचार की यह विशेषता है कि वह अच्छे विचारों को लेता है और उसको अपना रूप देता है। हम चाहते हैं, केरल में हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया चले और यहाँ का मसला हल हो।

शांति-सेना का सब स्वागत करेंगे

भूमि का मसला मिसाल के तौर पर हमने उठा लिया है, परन्तु असल में हमें हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया को बढ़ाना है। उसका साधन है, भूदान। करना यही है कि हिंसात्मक शक्ति ऊपर न उठे। उसके लिए शांति सेना की योजना है। शांति सेना में ऐसे सेवक होंगे, जो मानेंगे कि हमें अखिल मानव समाज की सेवा करनी है। सब मिलकर भारत का दुःख निवारण करेंगे। उसमें जाति, धर्म, पंथ, पक्ष आदि भेद नहीं रहेगा। शांति सेना का सैनिक नित्य जनसेवा करेगा और नैमित्तिक के तौर पर शांति कार्य करेगा। हिंसक सेना में आज भी ऐसा ही होता है। जब लड़ाई नहीं होती, तब सेना के जरिये कई प्रकार के काम लिये जाते हैं। फैमिन रिलीफ में, खेती में या किसी कठिन प्रसंग पर उनसे सेवा ली जाती है। उसी तरह अभी तक जो सेना सेवा कार्य करती थी, वह विशेष मौके पर शान्ति कार्य करेगी। ऐसी शान्ति-सेना केरल में हो जाय, तो सब धर्मवाले उसका स्वागत करेंगे। डॉक्टर का स्वागत कौन नहीं करता? सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, हिन्दू, क्रिश्चियन, मुसलमान हर कोई करेगा।

इसी तरह शान्ति-सेना का सैनिक भी निष्पक्ष, निरपेक्ष सेवक है। उसके जरिये भूमि का मसला हल करने का प्रयत्न करेंगे।

हमारा अनुभव है कि हमारे काम में यहाँ के सब लोग दिलचस्पी लेते हैं। सब धर्मों ने यह माना है कि शान्ति में ही शक्ति होती है। इसलिए हमें आशा है कि उसका दर्शन केरल में होगा। एक प्रदेश में कोई चीज होती है, तो वह कुल दुनिया में फैलती है। केरल के कम्युनिज्म का प्रभाव दूसरे देश के कम्युनिज्म पर पड़ सकता है, जैसे यहाँ की ईसाइयत, इसलाम, बौद्ध आदि का प्रभाव बाहर पड़ा है, क्योंकि सब धर्मों के लिए, सब पक्षों के लिए बड़े भारी दर्शन की भूमिका यहाँ खड़ी है। उसके आधार पर हम विचार खड़ा कर सकते हैं, उसको मानव धर्म का सर्वोत्तम रूप या कोई भी नाम दे सकते हैं।

कुडुवळ्ळी (केरल),
१७-७-'५७

सर्वोदय-मंडल का कार्य : १६ :

सर्वोदय मंडल एक नैतिक संस्था है। इसमें अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि आ सकते हैं। ऐसे प्रतिनिधि भी आ सकते हैं, जो किसी संस्था से सम्बद्ध न हों। आवश्यक इतना ही है कि वे हमारी जो पंचविध निष्ठा है, उसे माननेवाले हों। दूसरी संस्थाओं के सदस्य सर्वोदय मंडल के विचारों को समझकर जितना हो सके, अपनी संस्था को सर्वोदय मंडल के अनुरूप बनायेंगे। अगर न बना सकें, तो सर्वोदय मंडल के सामने रखेंगे। मंडल के सदस्य अपनी राय समाज के सामने पेश कर सकते हैं। मानना या न मानना समाज की मर्जी पर है। सरकार के काम के बारे में भी वे अपना मत व्यक्त करेंगे, लेकिन स्वीकार करना या नहीं, यह सरकार की मर्जी की बात है। इसी तरह गाँव-गाँव में भी सर्वोदय मंडल बन सकते हैं। हर सर्वोदय मंडल अपने सभासद बनाकर स्वतन्त्र काम कर सकता है। वे सभासद जाति, धर्म, पक्ष से निरपेक्ष होने चाहिए।

सर्वोदय-मंडल और संपत्तिदान

संपत्तिदान के दाता रकम खर्च करने में सर्वोदय मंडल की सलाह लेंगे। छोटे या बड़े दाता रकम स्वयं खर्च नहीं कर सकते और छोटा दाता रकम अपने पास नहीं रख सकता। ऐसी परिस्थिति में सर्वोदय-मंडल वह जिम्मेदारी उठा सकता है। सारे प्रदेश में विशाल सेवा सेना और शांति सेना खड़ी करना सर्वोदय मंडल का मुख्य काम रहेगा। शांति सेना के सैनिक को वेतन देने की जिम्मेवारी उसकी नहीं रहेगी। शांति सेना के हरएक सैनिक को वेतन होना चाहिए, ऐसा नहीं। वह अपने घर का खाकर भी काम कर सकता है। परन्तु अगर वैसा न होता हो, तो फिर संपत्ति दान दाता या मित्रों के जरिये इंतजाम होना चाहिए। ग्रामदान के गाँव में ठीक काम चले, इसके लिए सर्वोदय मंडल कोशिश करेगा, परन्तु वह स्वयं वहाँ काम नहीं कर सकेगा। याने जिन व्यक्तियों या संस्थाओं से वहाँ काम हो सकता है, उन उन व्यक्तियों और सरकार, सर्व सेवा संघ, खादी बोर्ड, ग्राम पंचायत आदि संस्थाओं के माध्यम से वहाँ काम करेगा।

सर्वोदय-मंडल की जिम्मेवारी

केरल के इस कोने से उस कोने तक इतनी विशाल सेवा सेना खड़ी करने की जिम्मेवारी सर्वोदय मंडल पर आती है। सेवक सर्वोदय मंडल से हिदायत माँगेगा, तो सर्वोदय मंडल उसको देगा, फिर भी सेवक स्वतन्त्र रहेगा। उसको कोई कार्य अपने क्षेत्र में खड़ा करना हो, तो वह उसकी स्वतन्त्र जिम्मेवारी होगी। सर्वोदय मंडल उसके क्षेत्र की जानकारी हासिल करेगा और उसके परिणामों को जाहिर करेगा। इसके साथ ही सेवक कोई गलत काम करेगा, तो उसे वह सुधारने की भी कोशिश करेगा। अगर इतना गलत काम हो कि वहाँ सेवक को रखना ही उचित न होता हो, तो मंडल वैसी भी अपनी राय प्रकट करेगा।

शांति-सेना का भय लोगों को मालूम न हो, यह उसका प्रथम लक्षण है। भिन्न भिन्न पार्टीवालों को भी उसका भय नहीं होना चाहिए। फिर भी किसीको

मय मालूम होता हो, तो उसको यह प्रतीति करानी चाहिए कि हमारी वृत्ति उससे अलिप्त है, हम निरपेक्ष सेवा करनेवाले हैं, किसी एक पार्टी में पड़नेवाले नहीं हैं। हम तो सर्वोदय कार्य को बढ़ाने का प्रयत्न करनेवाले हैं।

सर्वोदय-मंडल की कार्य-पद्धति

सर्वोदय मंडल में किसी विषय पर जो निर्णय लिये जायँगे, वे सर्वसम्मति से ही लिये जायँगे। सभा के लिए सब हाजिर रहें, यह आग्रह नहीं रहेगा। कितने लोग कम से कम हाजिर रहने चाहिए, यह सभासद ही तय करेंगे। आप सब लोगों का परस्पर विश्वास कितना है, यह जानकर काम चलाया जायगा। समाज के लिए या सरकार के लिए कुछ विशेष विचार प्रकट करना हो, तो उस विषय की सम्मति सभा में लेनी होगी। सभा में सब न आ सकें, तो पत्र व्यवहार से भी उनकी सम्मति ले सकते हैं। सबकी सम्मति होना आवश्यक है। सर्वोदय-मंडल का कोई सदस्य किसी विचार को पसंद नहीं करता, तो वह अपना मत व्यक्त कर सकता है। अगर सिद्धांत या नीति का विरोध मालूम हो, तो वहाँ कोई भी सदस्य वीटो कर सकता है। समझाने पर भी वह अपना आग्रह रखे, तो वह प्रश्न छोड़ देना होगा। जितने करने लायक काम हैं, उतने काम सर्वोदय-मंडल को करने हैं। परन्तु प्रत्यक्ष कार्य के बजाय कार्य कराने की शक्ति सर्वोदय मंडल में होनी चाहिए।

सर्वोदय-मंडल और शांति-सैनिक

प्रश्न : लोक-सेवक और शांति सैनिक में फर्क क्या है?

उत्तर : सत्याग्रही लोकसेवक की कल्पना सीमित थी। वैसे सेवक ज्यादा मिलेंगे, यह कल्पना हमें नहीं थी। लगा था कि थोड़े से निष्पक्ष, निर्लिप्त सेवक मिल जायँगे और वे जिले जिले के निवेदक बनेंगे। अब यह कल्पना विशाल हो गयी है। शांति-सेना अच्छा बात है। सेवा-सेना के ही सैनिक उसमें रहेंगे, परन्तु सत्याग्रही लोक सेवकों की पचविध निष्ठा के अलावा उनको सर्वोदय-मंडल का नैतिक आदेश मानना होगा। मान लो, आप शांति-सेना के सैनिक हैं। किसी एक क्षेत्र में काम भी करते हैं, परन्तु सर्वोदय मंडल का

आदेश मिला कि आपको दूसरे किसी क्षेत्र में जाना है, तो वह आदेश आपको बाध्य होगा। लेकिन सेवा सैनिक उसे मानने के लिए बाध्य नहीं हो सकता। साधारणतया शांति सैनिक अपने परिचित क्षेत्र में ही रहेगा, फिर भी मानो कर्नाटक के सर्वोदय मंडल ने आपसे पाँच सौ सेवकों की मदद माँगी। उस हालत में आपको भेजना पड़ेगा और यहाँ के सर्वोदय मंडल का आदेश होता है, तो जाना ही पड़ेगा। आखिर वह सेवा निष्फल भी हो, परन्तु जाना पड़ेगा।

यह शांति सेना अगर काबिल साबित हुई, तो हम सरकार से कहेंगे कि हमारे गाँव के लिए सुव्यवस्था के खयाल से जो खर्च करते हो, वह खर्च करने की जरूरत नहीं है। उतना हमें दे दो। सौ गाँवों में चोरी, दगा, झगड़ा नहीं होता और उससे सरकार को समाधान है, तो हम सरकार से कह सकेंगे कि हमको स्टेट पुलिस की या लश्करी सेना की जरूरत नहीं। परन्तु सरकारी रिपोर्ट में यह आना चाहिए कि फलाने १०० गाँवों के लोगों ने अपनी योजना अच्छी बना ली है और वहाँ स्टेट की जरूरत नहीं। ऐसे खयाल से और उम्मीद से आप काम कीजिये।

शांति-सेना के लिए अनुशासन आवश्यक

प्रश्न क्या शांति सेना के सैनिकों के लिए खास गणवेश और कवायद आदि का भी इन्तजाम किया जा सकता है?

उत्तर सर्वसाधारण लिबास में रहना ही अच्छा है। विशेष वेश अगर हमारे सेवक पहनेंगे, तो जिनकी सेवा करनी है, उन पर विरुद्ध प्रतिक्रिया होगी। वे अलग समझे जायँगे। सैनिकों को समाज से अलग नहीं पड़ना चाहिए। सैनिक तो ऐसे होने चाहिए कि जब चाहे तब लोग उनकी सेवा की माँग निःसंकोच कर सकें। इस दृष्टि से अगर विशिष्ट लिबास करने में बाधा आती हो, तो न करना ही अच्छा है। मुख्य बात यही है कि सैनिक समाज से अलग न पड़े। अनुशासन के खयाल से कवायद कर सकते हैं। शांति सैनिकों के लिए अनुशासन आवश्यक है। गाँव में किसी घर को आग लगती है, तो दौड़कर बहुत-से लोग जाते हैं। परन्तु उनकी ही भीड़ हो जाती है। आग बुझाने का ही काम

व्यवस्थित किया जाय, तो थोड़े समय में ही आग बुझ सकती है। इसीलिए शांति सेना के लिए अनुशासन जरूरी है। वैसे ही उनको सुन्दर सुन्दर भजन आने चाहिए। मानो कहीं हमला हो रहा है, तो ये सैनिक वहाँ जाकर शांति से भजन गाते हैं।

हर सदस्य को वीटो का हक

प्रश्न : एकमत से निर्णय लेने पर क्या हरएक व्यक्ति को वीटो का अधिकार नहीं मिल जायगा ?

उत्तर : सर्वोदय मंडल के सामने एक कार्य की योजना है। कोई सदस्य उसके विरोध में है, तो ऐसी हालत में वह योजना अमल में नहीं आ सकेगी। एक व्यक्ति को भी अपना वीटो चलाने का अधिकार है। इसीलिए यहाँ पार्टी की या बहुमत की जरूरत नहीं है। ऐसी आपत्ति बार-बार आये, तो गाँव का कारोबार कैसे चलेगा ? क्या गाँव के पास सत्याग्रह की शक्ति नहीं है ? आपका बहुमत होकर भी वह आपके विरोध में अकेला खड़ा है, क्योंकि वह मानता है कि आप जो करने जा रहे हैं, वह गलत है, नीति के खिलाफ है। इस तरह से सत्याग्रह की शक्ति, सारे समाज के खिलाफ जीने की शक्ति इसमें है।

काकोडी (केरल) —सर्वोदय-मंडल के सदस्यों के बीच
२२-७-'५७

सन् '५७ के बाद क्या ?

: १७ :

सन् '५७ के बाद का कार्यक्रम

प्रश्न : पाँच करोड़ एकड़ जमीन सन् '५७ के अंत तक नहीं मिली, तो अगला कदम क्या होगा ?

उत्तर : सन् '५७ के अंत तक प्रयत्न करने के बाद आगे सोचना चाहिए। जब हम पर्वत पर चढ़ते हैं, तो मालूम होता है कि सामनेवाले शिखर पर चढ़ने से हम पर्वत के शिखर पर पहुँचेंगे। परन्तु आगे बढ़ते हैं तो लगता है,

आगे एक और शिखर है। आगे जाते हैं तो फिर मालूम होता है और भी आगे शिखर है। याने एक-एक पर्वत चढ़ना पड़ता है। इसलिए उसको पर्वत कहते हैं। सन् '५७ के अंत तक एक पर्वत चढ़ बाद में आगे का सोचा जाय।

हमने सन् '५७ के अंत के पहले ही *अगला कदम सोच लिया।* यह सहज ही हमारे सामने आया। ज्यादा सोचना भी नहीं पड़ा। हमने तय किया कि हम ग्रामदान का संदेश ही फैलायेंगे। व्यक्तिगत मालिकी छोड़ने की प्रेरणा देंगे, तो ४० करोड़ एकड़ भूमि हाथ में आ जायगी। पाँच करोड़ तो उसका हिस्सा है। इसलिए कुल गाँवों का ग्रामदान और लोग 'सहकारी पद्धति से काम चलायें', यह अगला कदम हमने लोगों के सामने रखा। अभी तक ४०-४५ लाख एकड़ जमीन मिली है। उसमें से यह युक्ति स्वाभाविक रूप से हाथ में आयी। कई लोगों को भूदान से ग्रामदान आसान मालूम हुआ। ग्रामदान मिलने लगे। हवा तैयार होने लगी। व्यक्तिगत हृदय-परिवर्तन के साथ साथ सामाजिक हवा तैयार हो गयी, एक राह खुल गयी और यह एक नया दर्शन सन् '५७ के अंत के पहले ही हुआ। यह इस कार्य की सफलता का लक्षण है।

तपस्या के बिना दर्शन नहीं

अब यह पूछा जा सकता है कि ग्रामदान का काम नहीं होगा, तो क्या किया जायगा? यह सवाल पूछना आलस्य का लक्षण है। अभी-अभी जिसकी शादी हुई है, उसका पति मरेगा तो क्या किया जायगा, यह कभी पत्नी सोचती है? हमें श्रद्धा से प्रयत्न करना है। उसके बाद ही अगला कदम सूझेगा। घर में बैठे बैठे चिन्तन या ध्यान से मसला हल करने लगेंगे, तो विचार नहीं सूझेगा। पुराण की कथा है, परमेश्वर ने ब्रह्मदेव को आज्ञा दी कि तुम सृष्टि की रचना करो। उसके पास दुनिया को बनाने का मसाला नहीं था। वह बैठ गया और सोचने लगा। खूब ध्यान चिंतन किया। आखिर पागल बनने लगा, तब उसने तप किया। उसके बाद उसको सूझा। उसका एक सुंदर मंत्र वेद में आता है: 'ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।' प्रबल तपस्या से ऋत और सत्य का दर्शन हुआ। फिर सृष्टि उत्पन्न करने का मार्ग खुल गया। इसलिए

प्रबल तपस्या के बिना कार्य नहीं होगा। पर्वत के नीचे खड़े हैं और चर्चा चल रही है कि पर्वत के ऊपर से कैसा दीखेगा ! नीचे से ही आँख फाड़-फाड़कर देख रहे हैं। सामने तो पेड़ ही पेड़ दीखते हैं। ऊपर जायँगे, तभी न पर्वत के ऊपर का दृश्य दीखेगा ! भूदान के बाद का कदम तो पहले ही मिल गया है।

स्वप्न की बीमारी की दवा : जागना

प्रश्न : आपको ऐसा नहीं लगता कि आज की हालत में अपने देश की राजनीति में दलों का होना आवश्यक है ?

उत्तर : एक मनुष्य सोया हुआ था। उसने स्वप्न देखा। स्वप्न में ही उसको बीमारी हुई। वह औषध, डॉक्टर का इन्तजाम करने की तैयारी में लगा। परिणामतः स्वप्न लंबा हो गया। इसके बदले अगर वह जाग जाता, तो स्वप्न खतम और बीमारी भी खतम ! बाबा स्वप्न में नहीं है। वह जागता है। और जो सब स्वप्न में हैं, बाबा उनको जगाने की कोशिश करता है। स्वप्न को जितनी जल्दी पहचानोगे, उतनी जल्दी बीमारी दूर होगी। जब तक स्वप्न को नहीं पहचानोगे, तब तक पार्टी से मुक्ति नहीं है। हम कहते हैं जितना जल्दी हो सके, उतनी जल्दी पहचानो। अंग्रेजी में कहावत है 'यू मे ऐक्ट लाइक फूल, बट डू नाट थिंक लाइक फुलिश'। आपको मूरख के समान बर्ताव करना है तो करो, परन्तु मूरख के समान सोचो मत। यह मत सोचो कि पार्टी से भला है। विचार समझने पर उस पर अमल होगा। दलीय राजनीति से जितने जल्दी देश मुक्त होगा, उतने जल्दी वह सुखी होगा।

जब तक यह पार्टी प्रथा मौजूद है, तब तक कुछ लोग ऐसे चाहिए, जो सब पार्टियों से भिन्न रहें। ऐसा माना जाता है कि विरोधी पार्टी सुधारक होती है, परन्तु वह पूर्ण रूप से सुधारक नहीं होती। वह भी सत्ता चाहती है। दोनों के मन में द्वेष, मत्सर होता है। इसलिए पार्टियों से अलग ऐसा एक समूह चाहिए, जिसका दोनों पार्टियों पर नैतिक प्रभाव हो।

क्वीलांडी (केरल)
२१-७-'५७

शान्ति-सेना के लिए सम्मतिदान

सरकार पर सारा दारोमदार

देश का कारोबार, देश की रक्षा आदि सारे काम आज सरकार करती है। वह सरकार किसी-न-किसी पक्ष की होती है। पाँच साल के बाद उसको बदल सकते हैं। फ्रांस जैसे देश में तो सरकार बन ही नहीं पाती। वहाँ ४-५ महीने में ही सरकार बदलती है। इसका कुछ अनुभव आपको इस प्रदेश (केरल) में आया है। जैसे-जैसे दलगत राजनीति बढ़ेगी, वैसे-वैसे आपका अनुभव बढ़ेगा। अनेक पार्टियाँ खड़ी होती हैं, एक के सिद्धान्त से दूसरे के सिद्धान्त की टक्कर होती है और परिणाम यह आता है कि लोगों में झगड़े पैदा होते हैं। उस हालत में लोग कभी इस पार्टी को चुनते हैं, कभी उस पार्टी को चुनते हैं। कभी यह भी होता है कि जिसके हाथ में सेना हो, वह सत्ता ले लेता है। सेना का कमांडर-इन-चीफ लोकप्रिय है, मन्त्रि-मंडल कमजोर है, लोगों में दलीय राजनीति के झगड़े हैं, तो वह अपने हाथ में सत्ता ले लेता है, जैसा मिस्र में नासिर ने किया। लोकशाही में कोई हिटलर भी सामने आ सकता है। कभी किसीका जादू चल जाय, तो बार-बार लोग उसीको चुनते हैं। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट चार दफा चुनकर आये। वे मरते नहीं तो पाँचवीं बार भी चुनकर आते; क्योंकि उनका जादू चल गया था। इसलिए दलीय राजनीति के जरिये जो लोक-रक्षा होती है, वह भ्रमात्मक है। लोग अनाथ ही रह जाते हैं। अपनी रक्षा हम स्वयं कर सकते हैं, यह हिम्मत उनमें नहीं आती।

मालिक स्वयं कुछ नहीं करता

"हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते, हम न्याय नहीं दे सकते, हम अपना कारोबार नहीं देख सकते, जो भी कुछ करना है, वह सब हमारे प्रतिनिधि

करेंगे", यह भी कोई बात है। हम मालिक हैं और प्रतिनिधि हमारे नौकर हैं। क्या नौकर ही सब कुछ कर सकते हैं, मैं स्वयं कुछ कर नहीं सकता? मुझे प्यास लगी है, लेकिन मैं पानी नहीं पीता। नौकर वहाँ नहीं होगा, तो १५ मिनट ठहरूँगा। वह आयेगा, मुझे पानी देगा और मैं पीऊँगा। वह ऐसे ही बार बार देरी करेगा, तो उसको निकालकर दूसरा नौकर रख दूँगा, क्योंकि मैं मालिक हूँ, पानी पीने की ताकत मुझमें नहीं है—क्या यह ठीक है?

हम केवल नाममात्र के मालिक हैं, वास्तव में गुलाम हैं। जैसे दरिद्र लड़की का नाम लक्ष्मी और बेवकूफ लड़की का नाम सरस्वती, विद्या, वैसे ही डेमॉक्रेसी के नाम पर जनता अपने नौकर चुनती है, अपने हाथों से पानी पीने का अधिकार उसको नहीं है। लोग स्वयं उठ खड़े नहीं हो सकते, मटके के पास नहीं जा सकते, ढक्कन नहीं हटा सकते, लोटा मटके में नहीं डाल सकते, पानी नहीं निकाल सकते और वह पी नहीं सकते! नौकर की राह देखेंगे, वह आयेगा और पानी देगा! यह हालत कुछ देशों की ही नहीं, कुल दुनिया की है।

जनता स्वयं कारोबार चलाये

हम चाहते हैं कि आपके प्रतिनिधि थोड़ा काम करें, परन्तु आपकी रक्षा, आपका कारोबार आप स्वयं करें। स्वयं आपकी सत्ता, लोगों की सत्ता हम चाहते हैं। उसके साथ आपके प्रतिनिधि भी रहें। ऐसे भी कुछ काम होते हैं, जो कुल देश को जोड़ते हैं, तो वैसे काम वे करें। परन्तु हमारे गाँव का कारोबार हम चलायें। हम न्याय दें, तालीम की योजना करें, जमीन का बँटवारा करें और सब मिलकर काम करें। आज यह सारा दिल्लीवाले करते हैं। आप स्वयमेव यह करने लगेंगे, तो आपकी बुद्धि का विकास होगा, आपकी ताकत बढ़ेगी और आपका अपने प्रतिनिधियों पर अंकुश रहेगा।

नाममात्र की डेमॉक्रेसी

आज क्या हालत है? आप अपना कारोबार चलाते नहीं और चला सकते हैं, ऐसा विश्वास भी नहीं है। इसी कारण नौकरों पर आपकी सत्ता नहीं।

जैसे नेपाल का बादशाह और उसका प्रधान विद्वान् ! नाममात्र का बादशाह गुलाम होकर बैठता है। हिन्दुस्तान की जो डेमॉक्रसी है, उसकी हालत इसी बादशाह की सी है। इसीलिए सारे देश का दारोमदार, उसका उद्धार करना या डुबाना, चन्द लोगों के हाथ में है। देश की बात हम छोड़ दें, कुल दुनिया को आग लगाने की ताकत भी अब चन्द लोगों के हाथ में आयी है। उनकी मति बिगड़ते ही सारी दुनिया में आग लग सकती है। इस तरह हमने डेमॉक्रेसी के नाम पर सारी सत्ता चन्द लोगों के हाथ में दी है। कम्युनिस्ट डेमॉक्रेसी के आगे बढ़कर डिक्टेटरशिप की बात करते हैं। जहाँ डेमॉक्रेसी ही डिक्टेटर जैसी बनी, तो डिक्टेटरशिप और क्या होगी ? वे अपनी सत्ता जुल्म से चलाना चाहते हैं, तो ये बैलट बाक्स से चलाते हैं या पैसा देकर खरीदते हैं या साइंटिस्ट के जरिये खरीदते हैं। साइन्टिस्ट हाथ में आये, तो एटम बम बनाया। जापान बहुत जोर करता था, तो डाल दिया हिरोशिमा पर। इससे सारे युद्ध का रंग ही पलट गया। आज जिस किसीके हाथ में साइन्टिस्ट है, पैसा है, मिलिटरी है, विद्वान् हैं, वह कुशलतापूर्वक जनता की सत्ता अपने हाथ में रख सकता है।

जनता के सिर पर सत्ता का बोझ

यह सारा प्राचीन काल से चलता आ रहा है। यह डेमॉक्रेसी कम्युनिज्म के नाम से भी चलती है। कम्युनिस्ट कहते हैं कि आखिर में सत्ता खतम होगी। परन्तु तब तक सत्ता को मजबूत रहना चाहिए। याने 'डिक्टेटरशिप' रोकड़ और 'विदर अवे' उधार। बिलकुल पुराणकारों की ही बात कहते हैं ये। 'यहाँ दुःख भोगो, खूब तपस्या करो, बाद में आपको स्वर्ग मिलेगा !' वैसे ही ये लोग कहते हैं, भविष्य में 'स्टेट विल विदर अवे'। पता नहीं, आखिर में याने कब ? हमारे मरने के बाद हो, तो क्या लाभ ? जब तक आप जीवित हैं, तब तक यह पत्थर सिर पर रखो। फिर तो स्वतन्त्र हो ही जाओगे। प्रेम ही प्रेम मिलेगा, सेना नहीं रहेगी, हरएक मनुष्य कर्तव्य परायण होगा, खूब उत्पादन बढ़ेगा, यह सारा पुराण ही है। पुराण में कहते हैं न—'घृतकुल्या, मधुकुल्या'—घी की नदी बहेगी, शहद की नदी बहेगी। परन्तु आज तो गाय का दूध भी नहीं। घी देखने को नहीं

मिलता, दालदा ही दालदा है। स्टेट के जितने प्रकार हैं, राजसत्ता, लोकसत्ता, वेलफेअर स्टेट, कम्युनिज्म—सारे-के-सारे यही सोचते हैं कि लोगों पर अपनी सत्ता कैसी चले। हरएक की भाषा अलग-अलग है, परन्तु अर्थ एक ही है। वे कहते हैं: आप काम नहीं कर सकते, हम ही आपके लिए काम करेंगे। हम आपके नौकर हैं, आपके प्रतिनिधि हैं और आपका सिर आपका ही है, आपकी ही सम्मति से हम यह पत्थर आपके सिर पर रखेंगे। भविष्य में यह पत्थर नहीं होगा, इसके बदले लड्डू रहेगा, ताकि भूख लगे तो जब चाहे तब खा सके।

सर्वोदय-मंडल की भूमिका

शांति-सेना, सर्वोदय, ग्रामदान इन सबका भावार्थ यही है कि आपको अपना कारोबार अपने हाथ में लेना है। आज तो हम पार्टी बनाकर अपने पर सत्ता लाद लेते हैं, खुद कुछ नहीं करते। हमें पार्टियों से मुक्त होना है। यहाँ इस काम के लिए सर्वोदय-समाज बना देंगे, ऐसा पार्टीवाले ही कहते हैं। पर सर्वोदय-मंडल कहेगा, आपको ही बनाना है। भगवान् ने गीता में कहा है, 'उद्धरेदात्मनात्मानम्'—स्वयं हमें हमारा उद्धार करना चाहिए। इसीलिए सर्वोदय-मंडलवाले कहेंगे: यह आप कर सकते हैं, आपको ही करना है। हम आपको मदद दे सकते हैं, चर्चा करके कुछ सलाह आप चाहें तो देंगे। इसीके लिए हम सपत्ति-दान लेते हैं। हम अपने हाथ में नहीं लेते। दाता ही स्वयं खर्च करता है। अगर वह नहीं कर सकता, तो प्रतिनिधि के तौर पर सर्वोदय-मंडल करेगा, परन्तु कोशिश यह रहेगी कि दाता ही उसे खर्च करें।

सरकार को सबकी सम्मति हासिल है

सरकार सेना रखती है। उसके पीछे आपकी सम्मति होती है। आपमें से हरएक ने उसके लिए मदद दी है। मान लीजिये, दो सौ ढाई सौ करोड़ का खर्च सेना पर होता है, तो आप सब वह दे रहे हैं। छोटा लड़का भी दे रहा है, क्योंकि वह कपड़ा पहनता है, तो कपड़े पर टैक्स लगता है। पोस्ट-कार्ड लिखता है, तो उस पर टैक्स लगता है। ट्रेन में भी बैठता है, तो उस पर भी टैक्स लगता है। आप सब टैक्स दे रहे हैं। टैक्स याने आपकी सम्मति। सरकार चाहे जो भी

करे, उसको आपकी सम्मति है। सरकार सेना रखती है, तो उसके लिए भी आपकी सम्मति है। इस तरह सब लोगों की सम्मति ही एक शक्ति है।

शांति-सेना के लिए घर-घर से सम्मति-दान

हम चाहते हैं, गाँव गाँव के लोग अपने लिए शांति सेना तैयार करें। नित्य-सेवा करने के लिए सेवा-सेना होगी, परन्तु रक्षण करने के लिए वही शांति-सेना बनेगी। शांति-सेना की ताकत रहेगी सब लोगों की सम्मति। ताकत तब तक नहीं बनेगी; जब तक आप सबकी सम्मति उसको नहीं मिलती। इसलिए हम चाहते हैं कि हर घर से 'सम्मति-दान' मिले। शांति-सेना का कार्य संपत्ति दान से चलेगा, परन्तु उसकी ताकत बनेगी सम्मति-दान से। गोवर्धन पर्वत की कहानी है न? भगवान् ने कहा था, मैं पर्वत उठा सकता हूँ, उठा भी लूँगा, परन्तु उससे आपकी ताकत नहीं बनेगी। इसलिए गोकुल के बच्चे-बूढ़े, भाई-बहन सबने मिलकर गोवर्धन को उठाया। फिर भगवान् ने अपनी एक उँगली लगायी। इसका अर्थ यह हुआ कि सब हाथ नहीं लगते, तो ताकत न बनती।

हर घर से एक गुंडी

शांति सेना की ताकत बढ़नी चाहिए। उसके लिए आपको हर घर में जितने लोग हैं, उनकी तरफ से सम्मति-दान के तौर पर कुछ देना होगा। संपत्ति-दान तो प्रत्यक्ष, साक्षात् मदद है, परन्तु अब हमने सुझाया है कि पैसे के बदले श्रम दो। हर महीने में पाँच मनुष्य के घर से सूत की एक गुंडी मिलनी चाहिए। उसकी कीमत २० नये पैसे होगी। हम पैसे नहीं चाहते, बीस नये पैसे का श्रम चाहते हैं। अगर यह बात होगी, तो बहुत बड़ी क्रांति होगी। घर-घर में उत्पादन होने लगेगा। बूढ़ा और बीमार भी एक गुंडी दे सकता है। इस तरह होगा, तो हर घर से सम्मति मिलेगी। एक गुंडी से शांति सेना को कोई बहुत बड़ी मदद नहीं मिलेगी, ज्यादा मदद मिलेगी संपत्ति-दान से; परन्तु ताकत मिलेगी सम्मति-दान से। इसलिए हर घर से सम्मति मिलनी चाहिए।

तेरुवप्पुकट्टु (केरल)
२६-७-'५७

लड़ाई के कारणों का निर्मूलन

प्रश्न : लड़ाई के समय शांति सेना सशस्त्र सेना के सामने क्या करेगी ?

उत्तर : रोज लड़ाई नहीं होती या रोज झगड़े भी नहीं होते। फिर भी शांति-सेना को रोज २४ घंटे काम करना होगा। वह सेना होगी हमेशा के लिए, पर विशेष प्रसंग में वह शांति सेना का काम करेगी। इसलिए एक कायम की सेवा-सेना लोग खड़ी करेंगे। परिणामस्वरूप देश की सेवा होगी। वह गरीबों को मदद देगी, अमीरों के सामने गरीबों का दुःख प्रकट करेगी, उनकी सहानुभूति हासिल करेगी, जमीन की मालकियत मिटाने की कोशिश करेगी, बीमारों की सेवा करेगी, गाँव का उत्पादन बढ़ाने की कोशिश करेगी और तालीम की योजना करेगी। इस तरह शांति सेना गाँव की सेवा करेगी, तो गाँव में अशांति नहीं होगी। याने अशांति के जो भी कारण हैं, उनका निर्मूलन करना शांति-सेना का काम होगा। विषमता, निष्ठुरता, मालकियत की भावना, मेरा तेरा, ऊँच नीचता, जातिभेद, धर्मभेद और उनके झगड़े—ये सब अशांति के लिए कारण हैं। कुछ आर्थिक, कुछ सामाजिक और कुछ धार्मिक भी कारण होते हैं। परन्तु आजकल इनमें एक 'पार्टी पॉलिटिक्स' भी दाखिल हो गया है। वह इन कारणों का निर्मूलन कर देश की समस्या शांति से हल करेगी। परिणाम यह होगा कि देश की चित्त-शुद्धि होगी और आपस में स्नेहभाव बढ़ेगा। उस हालत में सरकार का भी फौज पर बहुत ज्यादा खर्च नहीं होगा। आन्तरिक व्यवस्था के लिए भी बहुत ज्यादा खर्च नहीं करना पड़ेगा। देश की नैतिक शक्ति बढ़ेगी, फलतः अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसका प्रभाव बढ़ेगा।

अभी एस० आर० सी० के मामले में बम्बई मे दंगे हुए। सरकार ने गोलियाँ चलायीं। सैकड़ों लोग मारे गये। दंगेवालों ने भी बहुत बुरे काम किये। फायदा

कुछ नहीं हुआ, लेकिन हिंदुस्तान की बेइज्जत सारी दुनिया में हुई। दुनियावाले कहने लगे कि ये लोग शांति की बात करते हैं, परन्तु इनके अंदर ही दंगे होते हैं और गोलियाँ चलती हैं। ऐसी घटनाओं से देश की ताकत घटती है। शांति सेना के सैनिक हमेशा सेवा करते रहेंगे और अशांति के जो भी कारण हैं, उनका निर्मूलन करेंगे। इस कारण जनता के हृदय में उनके लिए प्रेम रहेगा। जहाँ भी घर्षण होगा, वहाँ प्रेम के कारण शांति होगी। अगर क्षोभ ज्यादा हुआ, तो शांति-सैनिक अपना बलिदान भी देगा। इस तरह की सेना बनेगी, तो वह युद्ध को रोकेगी।

शांति-सेना का शस्त्र : सेवा

शांति सेना लड़ाई के मौके पर क्या करेगी? आक्रमणकारियों के हाथों में तो बंदूकें रहेंगी, परन्तु शान्ति सैनिकों के हाथ में क्या? क्या इनके चेहरे देखकर शत्रु भाग जायगा? इनके हाथ में भी शस्त्र चाहिए। वह शस्त्र कौन सा होगा? उनसे जो सेवा होगी, वही उनका शस्त्र होगा। इसलिए अगर सैनिक सेवाविहीन रहते हैं, तो वे शस्त्रविहीन बन जाते हैं। आयुध रहित सैन्य बेकार है। शांति-सेना आयुध रहित नहीं रहेगी। वह बहुत तीक्ष्ण शस्त्रधारी रहेगी। प्रेम से निरंतर सेवा करती रहेगी, तो देश और परदेश में उसकी इज्जत बढ़ेगी।

आज दुनिया में क्या चल रहा है, जरा सोचो। दुनिया का विवेक जाग्रत हुआ है। अभी आपने देखा कि ब्रिटेन ने मिस्र पर हमला किया। दुनिया के सारे अखबारों में उसके विरुद्ध अभिप्राय प्रकट हुए। इग्लैंड की जनता भी विरोध में खड़ी हुई। आखिर कुशलता से ब्रिटेन को अपना कदम वापस लेना पड़ा, क्योंकि दुनिया की नैतिक भावना का प्रश्न खड़ा हो गया है! आज कोई भी देश किसी देश पर एकदम हमला नहीं करेगा, क्योंकि दुनिया की नैतिक भावना जाग उठी है। इस हालत में जिस देश में शांति सेना है, उस देश में अंदर से समाधान होगा और उसकी नैतिक शक्ति बढ़ी होगी।

थोड़ा लेते हैं ?

प्रश्न : बड़े बड़े जमीन-मालिक और पैसेवाले अपना बहुत थोड़ा-सा हिस्सा देते हैं। इससे प्रश्न हल कैसे होगा?

उत्तर : बड़े लोग भी जमीन देते हैं, परन्तु थोड़ी देते हैं। बात ऐसी है कि बच्चा पहले बोलता नहीं। बाद मे पापा, बाबा, मामा, माता बोलने लगता है। माता पिता को आनंद होता है और वे कुतूहल से सुनते हैं। यह नहीं कहते कि यह क्या करता है? व्याख्यान क्यों नहीं देता? इसी तरह सीखते सीखते वह एक बड़ा वक्ता बन जाता है। इसी तरह मैं कहता हूँ। जरा आदत तो होने दो। आज तक हाथों को छीनने की ही आदत पड़ी थी, अब धीरे-धीरे देने की आदत पड़ रही है। पहले हम थोड़ा हिस्सा माँगते थे, परंतु अब तो सर्वस्व समर्पण करने की बात चली है। अब मालकियत विसर्जन की ही बात है। लेकिन इसके लिए कुछ धैर्य रखना पड़ेगा। सब लोगों में उत्साह आना चाहिए। साहित्यिक यह विचार समझकर इस पर ग्रंथ लिखें। फिर सब मन में संकल्प करें। यह संकल्प वाणी में प्रकट होगा और बाद में उसके अनुकूल कृति होगी।

जीवन-दानी की परिभाषा

प्रश्न : जीवनदान का मतलब क्या है? जीवनदानी कौन है?

उत्तर : आजकल हम किसीको जीवनदान देने के लिए नहीं कहते। अब तो हम कहते हैं कि आप अपना ज्यादा-से-ज्यादा समय इस काम के लिए दे दो। फिर आपको उसमें रस मालूम होगा, आप भक्त बन जायँगे। भक्तों को भक्ति के बिना कुछ सूझता नहीं, वैसे ही सामाजिक कार्य करनेवाले को समाज-सेवा के बिना सूझता नहीं। आपने बाबा को देखा होगा, उसको दूसरा कुछ भी सूझता नहीं। एक ही काम में सतत लगा है। इसी तरह आपका जीवन पूर्णतया तन्मय हो जायगा। काया, वाचा, मन से इसी काम में लगे रहेंगे। महाभारत में व्यास भगवान् ने लिखा है :

सर्वेषां यः सुहृत् नित्यं सर्वेषां यो हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद नेतरः॥

—"कर्मणा, मनसा, वाचा जो सबका सुहृद् है और जो सबके हित में रत है, उसीने धर्म समझा।" वही है जीवनदानी।

किसने जीवनदान दिया और कौन जीवनदानी है, यह मरने बाद तय होगा। बाबा जीवनदानी है या नहीं, यह अभी पता नहीं चलेगा। अभी तो बाबा जीवित है। आगे उसकी मति बदल जाय, तो वह भोगपरायण बन सकता है। इसलिए उसको मरने दो और उसकी परीक्षा करो। आप यह भी कहेंगे कि उसने बहुत सेवा की। अब थक गया बेचारा और आप उसको क्षमा करेंगे। परन्तु उसकी मीटिंग स्वर्ग में होगी। वहाँ कमीशन बिठाया जायगा और तय किया जायगा, तभी जीवनदानी पद मिलेगा। इसीलिए जीवनदान का निर्णय जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक नहीं होता।

पेरावरा (केरल)
२७-७-'५७

चार प्रश्न, चार उत्तर

: २० :

प्रश्न भूदान आदोलन के भविष्य के बारे में आप क्या कह सकते हैं?

उत्तर : हमारी भविष्यवाणी है कि अगर आप सब काम में लग जाते हैं, तो एक वर्ष में भूमि का मसला हल हो जायगा। अगर आप काम में नहीं लगेंगे, तो लाखों वर्षों में भी नहीं बनेगा। आपकी आत्मा में शक्ति है। आत्मा से जो संकल्प होता है, वह सफल ही होता है। वही आत्मा का स्वरूप है : 'सत्य-काम सत्यसंकल्प।' आप संकल्प करते हैं कि मालकियत मिटनी चाहिए, ग्रामराज्य की स्थापना होनी चाहिए, तो इसी वर्ष में वह होगा। अगर यह संकल्प करते हैं कि मालकियत नहीं छोड़ेंगे, लड़ाई-झगड़े करने हैं तो वैसे होगा! जो संकल्प करोगे, वह सफल होगा।

प्रश्न : बिस्मिल्ला और ॐ में क्या फरक है?

उत्तर : 'बिस्मिल्ला' पद में तीन शब्द हैं : बि, अस्मि और अल्ला, याने अल्ला के नाम से। ओम् याने परमेश्वर का नाम। जितने भी अच्छे काम शुरू करते होते हैं, उनका संकल्प कर आरंभ होता है। इसलिए जितने भी अच्छे और धार्मिक कार्य करने होते हैं, उन्हें हिंदू ॐ से प्रारंभ करते हैं और

मुसलमान बिस्मिल्ला से। ॐ और बिस्मिल्ला दोनों निराकारवाचक शब्द हैं। ईश्वर के अलावा इसलाम में अनेक मलक, फरिश्ते और हिंदुओं में असंख्य देवी-देवता होते हैं। वे ईश्वर की जगह नहीं ले सकते। इसलिए ईश्वर और अल्ला दोनों एक हैं। एक ही निराकार ईश्वर के लिए कहे गये ये शब्द हैं। ईश्वर को संस्कृत में ॐ कहते हैं और अरबी में अल्ला। दोनों एक ही हैं। *यह हम समझते नहीं, इसलिए हमें लगता है कि ये दोनों अलग अलग पंथ हैं।* वास्तव में दोनों का रहस्य एक ही है।

प्रश्न : आप भगवद्गीता और कुरान की तुलना कर सकते हैं ?

उत्तर : हमारे लिए यह तो बहुत आसान बात है। गीता का सार एक वाक्य में है। 'मामेकं शरणं व्रज'—एक परमेश्वर की शरण आ। ठीक यही *सार कुरान में कहा गया है। कुरान में इसलामरूपी धर्म बतलाया है।* इसलाम यानी ईश्वर की शरण जाना। ईश्वर शब्द में सल्म धातु है। उसका अर्थ है शरण जाना। इसी पर से सलाम शब्द बना है। सलाम याने शांति। इसलाम शब्द उसी पर से बना है। इसलाम याने परमेश्वर की शरण जाना। परमेश्वर को शरण जाओ, तो शांति मिलेगी। यह गीता में एक श्लोक में कहा है। 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।'—हे अर्जुन, तू सर्वभाव से परमेश्वर की शरण जा। इसका परिणाम क्या होगा ? 'तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।'—तो उसकी कृपा से तुझे शाश्वत शांति मिलेगी।

इस तरह शरणता और शांति, ये दो चीजें एक ही श्लोक में गीता में हैं और वही कुरान में, 'इसलाम' इस एक शब्द में है। जो ईश्वर की शरण आयेगा, वह सत्कार्य करता रहेगा, वह सदाचार करेगा। भक्ति के साथ सदाचार होना ही चाहिए। *यह गीता की ध्वनि है।* कुरान में भी कहा है—'अल् लजीन आमनू व अमीलुस स्वालीहाती।' जो ईश्वर पर ईमान रखते और नेक काम करते हैं। यही मुसलमान की व्याख्या है। ईश्वर पर विश्वास रखो, परोपकार में लगे रहो। सारा भार परमेश्वर पर छोड़ दो। *किसीकी आसक्ति मत रखो।* यही गीता और यही कुरान के उपदेश हैं।

अबुल कलाम आजाद ने कुरान पर एक सुंदर किताब उर्दू में लिखी है। वह किताब अभी पूरी नहीं हुई, कुछ हिस्सा बाकी है। उसकी प्रस्तावना में उन्होंने इस्लाम को अच्छी तरह समझाया है। हमने अभी जो बताया है, उसी तरह वहाँ कहा गया है।

पूँजीवाद की प्रतिक्रिया साम्यवाद

प्रश्न : मुझे लगता है कि भारतीय संस्कृति के खिलाफ कम्युनिज्म खड़ा है। आपकी क्या राय है?

उत्तर : कम्युनिज्म क्या है? कम्युनिज्म यूरोप की परिस्थिति में से पैदा हुआ है। यूरोप में पूँजीवाद का जोर था। वहाँ बड़े बड़े कारखाने, बड़े-बड़े शहर बनाये गये। दुनियाभर की संपत्ति इकट्ठा होती थी। फिर मालिक और मजदूरों में झगड़ा हुआ। मालिक मजदूरों को ऊपर उठने नहीं देते थे। उसीके प्रतिक्रियारूप कम्युनिज्म पैदा हुआ। याने वह स्वयं पूर्ण विचार नहीं है। जो प्रतिक्रियारूप विचार होता है, वह बदलता रहता है। सोशलिज्म भी स्वतंत्र विचार नहीं है। एक है प्रतिक्रिया पूँजीवाद की, तो दूसरी है व्यक्तिवाद की। दोनों प्रतिक्रियारूप पैदा हुए, इसलिए उनमें पूर्ण दर्शन भी नहीं है। एक में है 'व्यक्ति विरुद्ध समाज' और दूसरे में है 'पूँजी विरुद्ध श्रमशक्ति'। वास्तव में दोनों में विरोध होने की जरूरत नहीं थी। वे विरोध मिट सकते थे। व्यक्ति समाज का ही अंश है। अगर समाज का हित व्यक्ति नहीं सोचेगा, तो व्यक्ति का भी उससे हित नहीं होगा। व्यक्ति का विकास नहीं हुआ, तो समाज का भी विकास नहीं होगा। इस तरह व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे पर आधार रखते हैं। जैसे ताना और बाना दोनों ओतप्रोत होते हैं, वैसे ही समाज और व्यक्ति का संबंध है। ताने और बाने का स्वार्थ एक-दूसरे के विरोध में नहीं होता। इसी तरह व्यक्ति और समाज का स्वार्थ वास्तव में भिन्न नहीं है।

पूँजी और श्रम दोनों का विरोध बताया जाता है। परन्तु पूँजी याने क्या? जो श्रम भूतकाल में हो चुका, वह पूँजी बनी और जो श्रम आज करते हैं, वह श्रम है। कल के श्रम का आज के श्रम के साथ विरोध नहीं हो सकता। हमने

जो श्रम भूतकाल में कर रखा है, वह चंद लोगों के हाथ में पैसे के रूप में आया। यूरोप में केन्द्रीकरण होता गया। इसीलिए झगड़ा करके वह पूँजी छीनने और श्रमशक्ति को ऊपर उठाने का वाद आया। कम्युनिज्म भारत में पैदा नहीं हुआ। वह यूरोप में वहाँ की परिस्थिति के कारण पैदा हुआ। परन्तु दुनिया में कहीं भी कोई वाद पैदा होता है, तो वह सारी दुनिया में लागू होता है। इसलिए वह भारत में भी आया।

ये वाद प्रतिक्रियारूप में होने के कारण बदलते रहते हैं। समाजवाद के भी कितने प्रकार हुए हैं। हिन्दुस्तान में भी समाजवाद होने जा रहा है। उसका एक अलग प्रकार है। उससे पूँजीवाले भी डरते नहीं। उनको आश्वासन मिला है कि तुम्हारा 'प्राइवेट सेक्टर' जैसा-का-तैसा रहेगा। इस तरह समाजवाद का क्या रूप होगा, भगवान् ही जाने! हिटलर भी अपने को समाजवादी कहता था। आजकल समाजवाद 'कल्याणकारी राज्य' का रूप ले रहा है। याने समाज की उन्नति करना ही समाजवाद का रूप होने जा रहा है। इस प्रकार सोशलिज्म जगह जगह बदल रहा है। यही हालत कम्युनिज्म की है। मार्क्स की पुस्तक में जो कम्युनिज्म है, वह रूस में नहीं है। लेनिन और स्टालिन की नीतियों में फरक था। अब तो वहाँ विश्वशांति और 'सह-अस्तित्व' की बात चल रही है। इस नीति में बाधा डालनेवाले कुछ साथियों को भी हटाया गया है। चीन में दूसरे ही प्रकार का कम्युनिज्म है। भारत में जो कम्युनिज्म है, वह तो संविधान के अन्दर रहकर काम करने जा रहा है। इस प्रकार कम्युनिज्म बदलता ही है। इसलिए कभी हिन्दुस्तान की संस्कृति में भी वह शामिल हो सकता है।

हमारा घट-घटवासी ईश्वर

तेलंगाना में हमने देखा है कि कम्युनिस्ट भगवान् के भजन में शामिल होते थे। हमने पूछा : "पूँजीवाद से भी ज्यादा झगड़ा तुम्हारा भगवान् से है, तो तुम लोग भजन में कैसे शामिल हो?" कहने लगे : "हम जन-सम्पर्क के लिए यह करते हैं।" हमने कहा : "जन-सम्पर्क के लिए भजन करते हो, ठीक है। परन्तु

वह सिर पर बैठ जायगा, बड़ा खतरनाक है!" सारांश, ईश्वर के लिए उनका कायम का विरोध नहीं है। परन्तु उनको भास हुआ है कि ईश्वर का नाम लेने वाले पूँजीवादी राज्य चाहते हैं। उनका गुस्सा है पूँजीवाद पर, परन्तु वह उतारा जाता है ईश्वर पर। लेकिन यहाँ का ईश्वर एक कोने में रहनेवाला, एरीस्टोक्रेट नहीं है। वह तो अद्वैतवादी है, घट घट का वासी है, प्रत्येक शरीर में रहता है। ऐसे सर्वत्र व्यापक प्रभु की भक्ति यहाँ चलती है। इसलिए धीरे धीरे ईश्वर को वे मानने लगेंगे।

आज जो अपने को आस्तिक कहलाते हैं, वे भी क्या करते हैं? झूठ बोलते हैं, दूसरों को ठगते हैं, स्वयं मालिक बनते हैं। याने वे खुद ईश्वर के शत्रु बनते हैं। हम उम्मीद है कि हिन्दुस्तान में कम्युनिज्म धीरे धीरे सर्वोदय की तरफ आयेगा। परन्तु उसके लिए सिर्फ एक बात की जरूरत है। जो हम आस्तिक कहलाते हैं, वे अपनी मालकियत मिटायें। आस्तिक याने ईश्वर को मानने वाले। ईश्वर कौन है? वह मालिक है। अगर हम मालिक बनते हैं, तो ईश्वर का ही स्थान लेते हैं। यह तो नास्तिकता है, सही आस्तिकता रखनी चाहिए। सही आस्तिकता याने परमेश्वर ने जो चीजें दी हैं, उनका भोग सबको मिले। इसीका नाम है सर्वोदय।

नम्बूदरीपाद वेदाध्ययन करेंगे

सर्वोदय स्थिर सिद्धान्त है, स्वयं पूर्ण है। वह प्रतिक्रियारूप नहीं। परन्तु कम्युनिज्म अस्थिर है, बदलता ही रहता है। अस्थिर सिद्धान्त का परिणाम स्थिर सिद्धान्त पर नहीं हो सकता। इसलिए सर्वोदय का परिणाम धीरे धीरे यहाँ के कम्युनिज्म पर होता है। भारतीय संस्कृति का रंग उस पर चढ़ रहा है। परिणामस्वरूप उनके नेता ने कालडी में जाहिर किया है कि जमीन की मालकियत मिटाने का काम जो ग्रामदान पद्धति से होता है, वह कानून से नहीं हो सकता। इसलिए हम कम्युनिज्म से डरते नहीं। हम उनको अपने शत्रु भी नहीं मानते। हम उनको खाने बैठे हैं, उनको खाकर पचानेवाले हैं। आप ग्रामदान देकर उनको चबा डालने में हमें मदद कीजिये। इस तरह सारा

कम्युनिज्म भारत में पच जायगा। आखिर वे भारत के बाहर के तो नहीं हैं। नबूदरीपाद हमसे मिलने आये थे। वह पहली ही भेंट थी, इसलिए बात भी क्या हो सकती थी। हमने उनसे कहा : "अपना जीवन-चरित्र सुनाइये।" उन्होंने बताया कि वे बचपन में वेदाध्ययन करते थे। इस तरह यहाँ के कम्युनिस्ट ने भी वेदाध्ययन किया है। आखिर वह संस्कार जायगा कहाँ? अगर सर्वोदय का काम यहाँ होता है, तो वे फिर से वेदाध्ययन करने लगेंगे। बचपन में जो किया होगा, वह अज्ञान से, माता पिता ने कहा इसलिए श्रद्धा से किया होगा। अब समझ बूझकर करने लगेंगे। आप सब हमारा विचार समझकर मालकियत मिटा दो। फिर देखो नबूदरीपाद वेदाध्ययन शुरू करते हैं या नहीं।

पक्कानारपुरम् (केरल)
२८ ७ '५७

अच्छे काम करने के लिए आगे बढ़ो : २१ :

क्रिया और प्रतिक्रिया

एक भाई ने आज पूछा है : "समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धान्तों से सर्वोदय कहाँ तक सहमत है? समाजवाद और साम्यवाद दोनों बदलते आये हैं, क्योंकि दोनों प्रतिक्रिया के रूप में निर्माण हुए हैं। व्यक्तिवाद की प्रतिक्रिया है समाजवाद और पूँजीवाद की प्रतिक्रिया है साम्यवाद। समाज एक बाजू जब खींचा जाता है, तब उसकी दूसरी बाजू भी उतनी ही जोर से खींची जाती है। एक जमाना था, संस्कृत के विद्यार्थी भाषा की तरफ ध्यान नहीं देते थे। हमने तमिलनाड में देखा कि वहाँ लोकभाषा का इतना जोर है कि कहीं-कहीं संस्कृत का विरोध भी होता है। वे समझते हैं यह ब्राह्मणों की भाषा है, उत्तर हिन्दुस्तान की भाषा है! यह उन आर्यों की भाषा है, जो हमको गुलाम बनाने आये थे। इस तरह की प्रतिक्रिया हुई है, लेकिन यह ज्यादा टिकनेवाली नहीं है। पुराने वाद में भी बहुत जोर था। उतने ही जोर से प्रतिक्रिया हुई। पुराने वाद में

क्या जोर था ! वे कहते थे, धार्मिक ग्रंथ लोकभाषा में नहीं आने चाहिए। अगर वे लोकभाषा में लिखे जायँगे, तो उनकी पवित्रता क्षीण होगी। इतना ही नहीं, तो वेद पढ़ने का अधिकार सर्वसामान्य लोगों को नहीं था। चन्द लोग ही उसको पढ़ सकते थे। ऐसा एक एकांगीवाद था। इसी तरह समाजवाद और साम्यवाद प्रतिक्रियारूप एकांगीवाद है। आखिर में प्रतिक्रिया का जोर कम पड़ेगा और फिर वे मध्यवर्ती बात कहने लगेंगे।

पूँजी और श्रम में विरोध नहीं

जो प्रतिक्रियारूप वाद होते हैं, वे मूल विचार की प्रतिक्रिया में होते हैं। इसलिए मूल वाद में जो दोष होते हैं, वे ही उसमें भी आ जाते हैं। पूँजीवाले मजदूरों से घृणा करते हैं, तो कम्युनिस्ट पूँजीवालों से घृणा करते हैं। व्यक्तिवाद समाज के लिए बेपर्वाही बताता है। हम अपनी उन्नति करेंगे, समाज की तरफ देखने की हमें जरूरत नहीं, तो दूसरी तरफ समाजवाद कहेगा—समाज के लिए व्यक्ति का सर्वस्व समर्पण होना चाहिए। अगर न हो तो दबाना भी होगा। दूसरी बाजू रोकती है। इसलिए बहुमत का तरीका निकला। वस्तुतः व्यक्ति और समाज, पूँजी और श्रम में विरोध नहीं। पूँजी यानी पुराना इकट्ठा हुआ श्रम और श्रम यानी आज का नया श्रम। पुराने और नये श्रम में विरोध क्यों होना चाहिए ? पूँजीवालों की योजना शक्ति है, तो मजदूरों की श्रम शक्ति है। दोनों में विरोध क्यों ? परन्तु होता है ! योजना-शक्तिवालों ने श्रम को दबाना चाहा। परिणामस्वरूप श्रमशक्तिवाले योजना शक्तिवालों को दबाना चाहते हैं। यह प्रतिक्रिया कायम के लिए नहीं रहेगी, बदलती ही रहेगी। मार्क्स ने जो कम्युनिज्म बताया, वैसा ही लेनिन का नहीं था। लेनिन और स्टालिन में कितना फरक था। अब स्टालिन के बाद क्या चल रहा है ? उधर चीन का कम्युनिज्म बिलकुल ही भिन्न रहा है। अपने हिन्दुस्तान में भी कम्युनिस्ट सरकार चुनाव से बनी है और वह संविधान को मानती है। इस तरह बदल होता ही जायगा।

सर्वोदय का जीवन विचार

परन्तु सर्वोदय की बात अलग है। वह कोई किसी एकांगी वाद की प्रतिक्रिया

नहीं है। वह स्वतन्त्र विचार है और सर्वांग परिपूर्ण होने की कोशिश करता है। एक जीवन विचार वह समाज के सामने रखता है। सर्वोदय का विचार यह है कि किसी एक का हित दूसरे के हित के विरोध में नहीं। सृष्टि की रचना ही ऐसी विलक्षण है कि मानवों का हित एक-दूसरे के विरोध में नहीं जा सकता। हम एक दूसरे को सँभालकर चलेंगे, तो सबका हित होगा। उसके लिए उपाय यह है कि मुझे अपनी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आपकी चिन्ता करनी चाहिए और आप मेरी चिन्ता करेंगे। ब्राह्मण ब्राह्मणेतर की सेवा में लगेगा। केरल का जहाँ तमिलनाड से सम्बन्ध आता है, वहाँ केरलवाले तमिलनाड की पहले चिन्ता करेंगे और उसी संदर्भ में तमिलनाडवाले केरलवालों की चिन्ता करेंगे। हिन्दुस्तान पाकिस्तान की चिन्ता करेगा, पाकिस्तान हिन्दुस्तान की चिन्ता करेगा। परन्तु आज क्या होता है? मैं अपनी चिन्ता करता हूँ, इसलिए स्वार्थी बनता हूँ। अपनी जाति की थोड़ी चिंता करता हूँ, तो मेरा स्वार्थ तो थोड़ा कम होता है, परन्तु मैं जातीयवादी बनता हूँ। मैं मेरे प्रांत की चिन्ता करता हूँ, तो और थोड़ा स्वार्थ कम होता है, परन्तु मैं प्रांतीयवादी बनता हूँ। इससे भी आगे मैं अपने स्वार्थ को जरा व्यापक करता हूँ और अपने राष्ट्र के लिए सोचता हूँ, तो संकुचित राष्ट्रवाद होता है। इसलिए मुझे मेरी चिन्ता नहीं करनी है। अपनी चिन्ता करनी है और आप मेरी चिन्ता करेंगे। यह है सर्वोदय-विचार।

सर्वोदय अपने हाथ में अभिक्रम रखता है

सर्वोदय विचार सबको पसन्द आता है। परन्तु एक सवाल पैदा होता है कि मैं दूसरों की चिन्ता करूँगा, लेकिन दूसरे मेरी चिन्ता नहीं करेंगे, तो क्या होगा? आज यही चलता है। अमेरिका शस्त्र-सन्यास के लिए तैयार हो, तो रूस तैयार है। अगर रूस तैयार हो, तो अमेरिका तैयार है। मतलब यह कि दोनों मिल-कर कोई भी तैयार नहीं। केवल चर्चा ही चलती है। वास्तव में इसके लिए हिम्मत चाहिए, जो कहे कि मैं तैयार हूँ। अंग्रेजी में इसे 'इनीशियेटिव' और संस्कृत में 'अभिक्रम' कहते हैं। पाकिस्तान अमेरिका से मदद माँगकर शस्त्र-

सैन्य बढ़ा रहा है। भारत पंचशील को मानता है, इसलिए वह सैन्य बढ़ाना नहीं चाहता। फिर भी हम सोचते हैं कि पाकिस्तान सैन्य बढ़ा रहा है, तो हमें भी तैयार रहना चाहिए। इसका मतलब है कि हमें बन्दर की तरह नचाने की शक्ति हमने पाकिस्तान के हाथ में दे दी। हमारा रूप हमारे हाथ में नहीं रहा। सामने साधु हो तो हम साधु बनेंगे, अगर दुष्ट हो तो दुष्ट बनेंगे! यानी हमें दुष्ट या साधु बनाने का अधिकार हमने दूसरे के हाथ में दे दिया। हमारे हाथ में अभिक्रम नहीं रहा। कर्मयोगी का मुख्य लक्षण ही यह है कि वह अभिक्रम अपने हाथ में रखता है। पानी का स्वभाव है प्यास बुझाना। गाय प्यासी हो तो नदी उसकी प्यास बुझाती है। प्यासा शेर आये तो उसकी भी प्यास बुझाती है। यानी उसने अपना स्वभाव अपने हाथ में कायम रखा। अच्छी किताब पढ़ते हैं, तो सूर्य प्रकाश देता है और रद्दी पढ़ते हैं, तो भी देता है। सूर्य यह नहीं करता कि आप अच्छी किताब पढ़ेंगे तो प्रकाश दूँगा और रद्दी पढ़ेंगे तो अँधेरा कर दूँगा। अगर वह ऐसा करे, तो उसके हाथ में अभिक्रम नहीं रहेगा। इसी तरह सर्वोदय अपने हाथ में अभिक्रम रखता है। वह अच्छी बात स्वयं शुरू कर देता है। मैं आपकी चिंता करूँगा, आप चाहे मेरी चिंता करें या न करें। ऐसा निश्चय होगा, तभी काम होगा। नहीं तो एक दूसरे की राह देखते ही रह जायँगे।

सेना घटाना सच्चा सर्वोदय-कार्य

पाकिस्तान सेना बढ़ा रहा है, तो बढ़ाने दो, भारत अपनी सेना कम करेगा। आखिर वह सेना क्यों बढ़ा रहा है ? भारत से डरता है इसलिए। और भारत भी पाकिस्तान से डरता है। अजीब सा डर है यह! बलवान् बलवान् से डरे और कमजोर कमजोर से! बल बढ़ने से डर नहीं गया और घटने से भी नहीं। यह इसीलिए हो रहा है कि हम यह नहीं सोचते कि हमें अपना कर्तव्य अपनी ओर से करना है। सामनेवाला क्या करता है, यह हमें देखना नहीं चाहिए। हम अपना कर्तव्य कर डालेंगे, भले ही आगे जो कुछ भी हो जाय—ऐसी हिम्मत होनी चाहिए।

मान लीजिये, भारत ने अपनी सेना कम की, आन्तरिक व्यवस्था के लिए कुछ थोड़ी रख ली, तो क्या होगा ? दो बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि पाकिस्तान भारत पर एकदम हमला करे और दूसरी यह कि उसका डर चला जाय और वह भी अपनी सेना कम कर दे। दोनों बातों में नुकसान नहीं है। सेना खतम कर देते हैं, तो खर्च भी कम होगा। आन्तरिक व्यवस्था के लिए जो सेना लगेगी, उस पर करीब २० करोड़ खर्च होगा और बाकी १८० करोड़ गरीबों की सेवा में लग सकेगा। उससे यहाँ के लोग मजबूत बनेंगे। फिर भी मान लें, पाकिस्तान हमला करे, तो उसके खिलाफ कुल दुनिया का विवेक खड़ा होगा। इंग्लैंड क्या कम बलवान् था ? परन्तु मिस्र के सामने वह टिक नहीं सका। इसी तरह भारत को दुनिया की सहानुभूति मिलेगी और यहाँ के लोग भी धैर्य नहीं खोयेंगे। आखिर पाकिस्तान हमें दबा तो नहीं सकेगा। लोग उससे असहयोग करेंगे। इसलिए दोनों हालत में हानि नहीं है। हाँ, एक बड़ी मिसाल दुनिया के सामने रहेगी और भारत की नैतिक शक्ति बढ़ेगी। अगर पाकिस्तान भी अपनी सेना कम करता है, तो उसका भी खर्च कम होगा और गरीबों की सेवा होगी। दोनों की नैतिक शक्ति बढ़ेगी। दोनों में प्रेम बनेगा। दोनों एकरस बनेंगे। ऐसा दृढ़ निश्चय कर यदि भारत अपनी सेना कम करता है, तो वह सच्चा सर्वोदय-कार्य होगा।

सर्वोदय का कोई खास कैम्प नहीं

सर्वोदय में हम चिंता अपनी नहीं, सबकी करते हैं। परिणामस्वरूप नैतिक शक्ति बढ़ती है। यह कार्य न समाजवाद कर सकता है, न साम्यवाद। उनका दारोमदार सेना पर है। दोनों एक ही देवता के भक्त हैं। एक ही कैम्प के हैं। एक ही कैम्प में रहकर आपस आपस में लड़ते हैं। लेकिन सर्वोदय का कोई कैम्प नहीं। वह सभी कैम्पों से अलग है।

हड़ताल का हक और कर्तव्य

प्रश्न : पोस्ट और तार आफिस के कर्मचारियों की ८ अगस्त को जो हड़ताल होने जा रही है, उस पर आपकी क्या राय है ?

उत्तर : सामान्यतः हड़ताल करने का हक सबको है। परन्तु वह करनी चाहिए या नहीं, यह देखना होगा। अपना हक साबित करना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं। मुझे मद्रास जाने का हक है, पर मद्रास जाना मेरा कर्तव्य है या नहीं, यह देखना चाहिए। अलावा इसके जिस हड़ताल से सारे देश को तकलीफ होती है, अतः उसके आरंभ के पहले बहुत सोचना चाहिए। ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए कि हमारा कार्य जारी रहे, फिर भी हम अपना दुःख प्रकट कर सकें।

मान लीजिये, शहर में किसी स्थान से पानी का वितरण हो रहा है और जिनके हाथों में यह काम है, वे हड़ताल करते हैं। परिणाम यह होगा कि सारे गाँव को पानी नहीं मिलेगा। इस तरह की सेवाओं को हड़ताल करने के पहले बहुत अधिक सोचना चाहिए। जहाँ तक हो, ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए, जिससे अपना दुःख तो प्रकट कर सकें, पर काम अखण्ड जारी रहे। तभी समाज को सहानुभूति हासिल हो सकेगी।

इन दिनों पोस्ट और तार आफिस का कारोबार निःसन्देह ढीला चल रहा है। यह सब स्वराज्य के बाद ही हुआ है। हम कई दफा पत्र मिलते ही नहीं। आनेवाला पहले पहुँच जाता है और बाद में तार! तार ठीक समय पर, ठीक स्थान पर पहुँचेगा, इसका विश्वास ही नहीं रहा है। यह स्वराज्य के लिए अच्छा लक्षण नहीं है। भारत के स्वभाव का ही यह दोष है।

यहाँवालों का प्रायः एक क्रम ही बन गया है कि आफिस में देर से जायँगे और जल्दी लौटेंगे। बीच में ज्यादा समय बितायेंगे। यह किसी व्यक्तिविशेष का सवाल नहीं, सारे भारत का सवाल है। जैसे हम भारत के गुण देखते हैं, वैसे दोष भी देखकर उनका निराकरण करना चाहिए। ढिलाई, अव्यवस्था आदि कुछ दोष हमारे खून में पड़े हैं। इस हालत में हम पोस्ट और तार के कर्मचारियों की हड़ताल के बारे में क्या कहें?

कुट्टीपुरम् (केरल)
३-८-'५७

पुर्तगाली निश्चिन्त हो भारत छोड़ें

आज हमने एक चित्र देखा। ईसामसीह खड़े हैं, उन्होंने हाथों में बकरा लिया है। चित्र के नीचे लिखा था 'जीव कारुण्यम्'। हम समझते हैं कि ईसा मसीह का जीव कारुण्य हिंदुस्तान के लोग बहुत अच्छी तरह समझते हैं। उसके लिए यह नयी बात नहीं। ईसा के पहले हिंदुस्तान में अनेक मसीहा हो गये हैं। उनमें से गौतम बुद्ध और महावीर को तो आप जानते ही हैं। उन्होंने जीव कारुण्य सिखाया था। परिणामस्वरूप भारत में आज जितनी मात्रा में मांसाहार परित्याग हुआ है, उतना किसी देश म नहीं। हमारे ईसाई भाई अपना प्रचार बहुत करते हैं। उनका उत्साह ज्यादा है। वे कहते हैं, ईसा के आश्रय के बिना कल्याण नहीं होता। दुनिया में ज्यादा से-ज्यादा ईसाई यूरोप और अमेरिका में हैं। वहाँ ज्यादा से ज्यादा बाइबल का पठन होता है। किन्तु वहीं ज्यादा-से-ज्यादा मानव-संहार की बातें भी होती हैं और मांसाहार भी चलता है। फिर भी वे लोग यहाँ आकर हमें जीव-कारुण्य का उपदेश देना चाहते हैं। हम उसको प्रेम से स्वीकार करते हैं। लेकिन उनसे इतना ही कहते हैं कि जो उपदेश आप देना चाहते हैं, उसे आपके जीवन मे भी अमल में लाइये।

फ्रांसीसियों ने भारत का प्रेम समझ लिया और वे प्रेम से उसे छोड़ चले गये। लेकिन पुर्तगाली नहीं समझ रहे हैं। वे भी समझेंगे, बिना समझे गति नहीं। जितने जल्दी वे समझेंगे, उतना उनका कल्याण होगा। वे कहते हैं : "हमारी सभ्यता कुछ अलग है। हम ईसाई हैं, यहाँ ईसाई संस्थाएँ हैं। उनकी रक्षा करने के लिए हमारा यहाँ रहना जरूरी है।" ये अजीब बातें हैं। ईसाइयत पहले भारत में आयी है या पुर्तगाल म ? ईसा के जाने के बाद ५० साल के अन्दर यहाँ सेंट थॉमस का मिशन आया था। पुर्तगाल मे तो बहुत देर से वह पहुँची। इसलिए ईसाइयत का संरक्षण कैसा करना, यह भारत के

लोग जानते हैं। हम 'मिशनेनिटी' को 'इंडियन रिलीजन' कहते हैं। यही भारत की खूबी है। यहाँ के पचासों ईसाई मानते हैं कि ईसाइयत को मांसाहार-परित्याग, अद्वैत विचार और पूर्वजन्म का सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ेगा। इसके लिए वे बाइबिल का आधार भी बताते हैं। इस तरह यहाँ जो अनेक धर्म और जातियों के लोग आये, उनको भारत ने अपना रूप दिया।

हम चाहते हैं कि पांडिचेरी जैसे स्थान में फ्रेंच भाषा का संस्कार रहे। हिन्दुस्तान को इस प्रकार के संस्कारों का प्यार है। दुनिया की हर कौमें अपनी कुछ न कुछ देन दुनिया को देती हैं। भारत भी इसे स्वीकार करता है। हम यह भारत की विशालता, वैभव समझते हैं। अनेक भाषा, अनेक धर्म यहाँ विकसित हुए हैं। पुर्तगाली लोगों की भी यहाँ पर पूरी सुरक्षा होगी। इसलिए वे निश्चिंतता से यहाँ से जा सकते हैं। अपनी अच्छी चीजें वे यहाँ रख दें और जो बुराइयाँ साथ लाये हों, उन्हें जाते समय समुद्र में डुबा दें, ताकि वापस आने की भी जरूरत नहीं रहेगी।

माहे (पांडिचेरी टेरीटोरी)
७-८-'५७

परम्परा और क्रान्ति : २३ :

भारत प्राचीनतम देश है। यहाँ सब प्रकार की साधन-सामग्री मौजूद है। प्राचीन काल से यहाँ ज्ञान की अखंड परंपरा चली। शायद चीन छोड़कर दुनिया में ऐसा दूसरा कोई देश नहीं, जहाँ प्राचीन काल से आज तक अखंड इतिहास परंपरा चली आयी हो। प्राचीन यूनान, रोम, मिस्र आज नहीं रहे। आज जो हैं भी, वे नये बन गये हैं। उनमें प्राचीनता का लेश भी नहीं है। सिवा कई प्राचीन देश नामशेष हो गये हैं। लेकिन हिंदुस्तान में ज्ञान की अखंड परंपरा दीखती है।

शब्दों की अटूट परंपरा

भारत का और शायद दुनिया का भी प्रथम ग्रंथ ऋग्वेद है। उसमें ऐसे

सैकड़ों शब्द हैं, जो आज भी हमारी भाषा में चलते हैं। मिसाल के तौर पर उसका पहला मंत्र ही लीजिये। 'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं-रत्नधातमम्।' इस मंत्र के 'अग्नि', 'पुरोहित', 'यज्ञ', 'देव', 'होता' और 'रत्न' ये शब्द आज की भाषा में चलते हैं। इस पर से ध्यान में आयेगा कि प्राचीन ग्रंथ के शब्द आज की भाषा में कितने घुल-मिल गये हैं। ऐसे हजारों शब्द हैं, जो आज की मलयालम, बंगला और मराठी भाषा में चलते हैं। मैं ऐसी दूसरे किसी देश की भाषा नहीं जानता, जिसमें ५००० साल के वे ही शब्द आज भी हों। यह साधारण बात नहीं है।

'यज्ञ' के अर्थ में परिवर्तन

इसका अर्थ यह है कि इस देश में जो ज्ञान विचार निकला, वह प्रवाहित हुआ। उसमें जो पुराने शब्द थे, वे तोड़े नहीं गये, उनमें नया अर्थ भरा गया। इसका नाम प्रवाह है। यहाँ का विचार प्रवाह खंडित नहीं हुआ, बल्कि उसकी पूर्ति हुई। अगर विचार-प्रवाह खंडित हो जाता, तो शब्द भी खंडित हो जाते, लेकिन मानसिक शब्द वैसे ही आज तक चलते आये।

'यज्ञ' शब्द लीजिये। एक जमाना था, जब यज्ञ में बकरे का बलिदान देते थे। ब्राह्मण भी उसका प्रसाद सेवन करते थे। बीच में मांसाहार-परित्याग का जमाना आया, तो करोड़ों लोगों ने मांसाहार छोड़ा। जैन, वैष्णव, शैव, ब्राह्मणों ने इस प्रकार के प्रयोग किये। पाश्चात्य देशों में इधर ५०-६० सालों से मांसाहार-परित्याग आरम्भ हुआ है, लेकिन हिंदुस्तान में प्राचीन काल से यह विचार का आरम्भ हुआ है। विचार के क्षेत्र में भारत अगुआ रहा है। हाँ, तो अब बकरे का बलिदान नहीं होता। इसलिए 'यज्ञ' शब्द खंडित होना चाहिए था। वैसा अगर होता, तो ज्ञान परम्परा ही खंडित हो जाती। याने यह कहा जाता कि एक नया विचार आया, जिसने पुराने शब्द को तोड़कर समाज को आगे बढ़ाया। समाज ने मांसाहार का परित्याग किया और वह आगे बढ़ा। परन्तु उसमें खूबी क्या थी? 'यज्ञ' शब्द का विस्तार किया गया—"समाज-सेवा के लिए जो त्याग करना पड़ता है, वह 'यज्ञ' है। मनुष्य में कुछ पशु अंश भी है।

काम, क्रोध, मोह यह मानवता नहीं, पशुत्व है। इसलिए सच्चा बलिदान याने इस पशुत्व का बलिदान होना चाहिए।" पशु के बदले पशुत्व का बलिदान— यह आध्यात्मिक क्रांति है।

सारांश, जैसे हम किसी पेड़ की शाखाएँ तोड़ते हैं, तो वे सूख जाती हैं। ऐसी अनेक शाखाएँ तोड़ेंगे, तो यह वृक्ष भी सूख जायगा। इसलिए शाखाओं का भला पेड़ के साथ चिपके रहने में ही है। इस तरह वृक्ष है प्राचीन परम्परा और शाखाएँ हैं नया संस्कार। नया संस्कार हम जो भी करें, वह प्राचीन परम्परा से चिपका रहना चाहिए। इसी तरह एकरसता रहेगी और वह परम्परा खंडित नहीं होगी।

एकरसता की मिसाल आम

हम आम की गुठली बोते हैं, तब उसका स्वरूप बिल्कुल पत्थर जैसा होता है। बाद में उससे अंकुर निकलता है, उसका स्वरूप कितना नरम होता है। अंकुर और गुठली में कितना फर्क है! लेकिन अंकुर गुठली से ही रस लेता है। फिर एक बड़ा स्कंद हो जाता है। उसे हम खा नहीं सकते। उसकी लकड़ी जलाते हैं, मकान बनाते हैं। इस प्रकार उसका नया स्वरूप होता है। गुठली और स्कंद में कितना फर्क है, लेकिन वह स्कंद बीज से रस चूस लेता है। उसकी एकरसता में बाधा नहीं आती। फिर शाखाएँ होती हैं, पत्ते लगते हैं। कितना फरक होता है पत्ते में और स्कंद में? पत्ते बकरी खाती है, पर स्कंद नहीं खायेगी। फिर बौर आया, उसका आम बना। आम का अचार बनता है, पत्ते का अचार नहीं बनता। आम पक गया। कितना परिपक्व मधुर फल! लोग प्यार से खाते हैं। पर क्या गुठली, पत्ते, स्कंद, बौर खाये जायेंगे? कितना फरक दीखता है। परन्तु पहले से आखिर तक उसकी एकरसता कायम रही। आम का मधुर रस लकड़ी से यह नहीं कहता कि "तू (लकड़ी) पुराना समाज है। मेरा और तेरा बिल्कुल संबंध नहीं। मैं नया समाज मधुर-रस-परिपूर्ण हूँ। कहाँ मैं और कहाँ तू?" लेकिन वह कहता है: "अरे, तू तो मेरा बाप है। तू नहीं तो मैं नहीं।" इसी

तरह जहाँ समाज का अखंडित विकास होता है, वहाँ प्राचीन काल से आधुनिक काल तक अनुसंधान रहता है।

फ्रान्स में चित्त की चंचलता क्यों?

आज फ्रान्स में खूब साहित्य है। विज्ञान भी खूब है। परन्तु वहाँ के लोगों के चित्त की चंचलता नहीं जाती। वहाँ प्राचीन काल से आज तक अखंड रस नहीं है। पुराने फ्रांस और आज के फ्रांस में कोई सम्बन्ध नहीं। पुराने फ्रांस का उनको स्मरण भी नहीं है। दूसरी कौम आयी और उसने आक्रमण किया, इतना ही मालूम है। इसके पहले के काल का स्मरण ही नहीं। कारण, चित्त स्थिर नहीं है। *आपके मल्याल्म और तमिल से कम साहित्य वहाँ नहीं है।* फिर भी जो स्थिरता मलयालम और तमिल को है, वह वहाँ नहीं है; क्योंकि वे पुरानी परम्परा को तोड़ते चले गये। नये सुधार जरूर करने चाहिए। परन्तु पुरानी परम्परा को तोड़कर नये सुधार करते हैं, तो उसमें ताकत नहीं होती। इसलिए आज फ्रांस में कोई राज टिकता नहीं, ६-६ महीने में बदलता है। उसकी जड़ें जमीन में नहीं, ऊपर-ऊपर ही हैं। भारत की हालत इससे भिन्न है। उसकी जड़ें जमीन में गहरी गयी हैं। परिणामस्वरूप हमारे समाज में हम स्थिर बुद्धि देखते हैं। स्थिर बुद्धि का अर्थ यह नहीं कि पुराना ही समाज चल रहा है। जैसे गुठली से आम होता है। परन्तु यहाँ अनुसंधान कायम है। वैसे ही नये समाज की पोषण-धारा कायम है। पुराने स्वरों से ताकत बनती है और नये विचार से माधुर्य आता है। यहाँ दोनों इकट्ठा हुए हैं। पुराने शब्द हम तोड़ते नहीं, उसमें नया अर्थ भरते हैं, उसका विकास करते हैं, उसे व्यापक बनाते हैं। यह अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया है और यही आज तक भारत में चली आ रही है।

'दान' का नया अर्थ

बाबा ने भूदान शब्द निकाला, तो लोग पूछने लगे, यह दान क्या है? भिक्षा माँगने निकले हो क्या? हमने कहा : बाबा भिक्षा माँगने नहीं निकला, उसका हक माँगने के लिए निकला है। इस पर पूछा गया कि फिर यह दान शब्द किसलिए? हम कहते हैं : शंकराचार्य का थोड़ा भाष्य खोलकर देखो। उन्होंने कहा : 'दानं

संविभागः'—दान याने सम्यक् विभाजन। हमने यह पुराना शब्द तोड़ा नहीं, उसका व्यापक अर्थ बनाया। सम्यक् विभाजन याने सुव्यवस्थित बँटना! शरीर का खून एक जगह इकट्ठा हुआ, तो शरीर कैसे चलेगा? खून का समान प्रवाह बहता रहता है, तभी शरीर टिकता है। उसी तरह समाज में संपत्ति भी चलनी चाहिए। समवेदना, अनुबंध जीवित शरीर का लक्षण है। इसी तरह समाज जीवित होता है, तो संपत्ति का केंद्रीकरण नहीं होता। शरीर में खून कम है, तो खतरा है। शरीर में खून खूब बढ़ गया, तो भी खतरा है। दोनों हालतों में खतरा है। खून का सुव्यवस्थित अभिसरण ही होना चाहिए। इसीलिए शंकराचार्य ने दान का अर्थ संविभाग, सम्यक् विभाजन किया है।

दान का अर्थ शंकराचार्य ने ही बदला, ऐसी बात नहीं। भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह कहा है: 'यमाहु दानं परमं अनुत्तरं। यं सं विभागं भगवा अवण्णयी।'—जिस दान को दुनिया ने अत्युत्तम बनाया है, उसे भगवान् बुद्ध ने संविभाग कहा। इस तरह बुद्ध से शंकराचार्य तक इस नये अर्थ की परम्परा चली आयी। वैसे बुद्ध और शंकराचार्य में फरक है ही नहीं। सिर्फ चेहरे में बदल आ जाता है।

डेढ़ हजार साल में एक विचार ऐसा आया, जिसने 'दान' को पुराने अर्थ में अच्छा नहीं माना। 'दान दे दो, पुण्य मिलेगा। इंद्र का आधा आसन मिलेगा। अभी गोदान दोगे, तो मरने के बाद चन्द्रलोक मिलेगा। सुवर्णदान देते हो तो इंद्रलोक मिलेगा, भूमिदान देते हो तो पुण्य मिलेगा'—इस प्रकार की पुरानी दान पद्धति लोगों को मान्य नहीं थी। इस दान से अहिंसक क्रांति नहीं बनती। देनेवाला अहंकारी और लेनेवाला दीन बनता है। यह दान काम का नहीं, ऐसा क्रांतिकारक विचार आया। उस जमाने में आधुनिक पाश्चात्य विद्या-प्राप्त लोग होते, तो उन्होंने इस शब्द को तोड़ दिया होता या उसकी निंदा करने लगते। परिणामस्वरूप गीता, उपनिषद्, वेद निकम्मे हो जाते, क्योंकि उनमें दान की स्तुति की गयी है। लेकिन उन्होंने 'दान' शब्द को तोड़ा नहीं, उसमें नया अर्थ भर दिया—'दानं संविभागः।' यह अर्थ समझ लीजिये और

फिर गीता, उपनिषद्, वेद पढ़िये; तब आपको उन्हीं पुराने शब्दों से नया प्रकाश मिलेगा।

'तप' का नया अर्थ

तपश्चर्या याने सिर के बल खड़े होना। इसी तरह 'तप' का अर्थ पुराने जमाने में माना जाता था : सिर के बल खड़े होना, ठंडे पानी में रहना, चारों तरफ अग्नि जलाकर बीच में रहना आदि। परन्तु गीता में कहा है कि सत्य बोलना, प्रेम से बोलना, स्वाध्याय करना वाणी का तप है। यहाँ तप का अर्थ हुआ, वाणी को पवित्र बनाना। यही वाणी की तपस्या है। वृद्धों एवं ज्ञानियों की सेवा और ब्रह्मचर्य पालन करना, यह है देह की तपस्या। सेवा के लिए शरीर एकदम उठना चाहिए। इस तरह का अर्थ तप का किया है। परन्तु पुराना आदर कायम रखा है।

पुरानी परम्परा को न तोड़ते हुए क्रांति

आज पुराने शब्द खंडित कर नये शब्द बाहर से आयात किये जाते हैं। ये शब्द ऐसे होते हैं कि उनका अर्थ प्रकट करने के लिए यहाँ शब्द ही नहीं मिलते। उदाहरणार्थ 'रेशनलाइजेशन' ही ले लीजिये। अपनी भाषा में इसका प्रतिशब्द क्या होगा। इस पर अपना दिमाग चलायें। 'रेशन' पर से 'रेशनल', बाद में 'रेशनलाइज' और फिर 'रेशनलाइजेशन' हो गया—एक इतना लंबा शब्द। परन्तु उसका अर्थ यह है कि कारखाने में आज १००० मजदूर काम करते हैं, तो ५०० कम करके उतना ही काम कराना है। इसका नाम है रेशनलाइजेशन। यह हिंदुस्तान के लिए शोभादायक नहीं। यहाँ की कल्पना का विकास यहाँ के पुराने शब्दों से ही होगा।

हम जो सर्वोदय-समाज बनाने जा रहे हैं, वह पुराने समाज से सर्वथा भिन्न है। इतना भिन्न, जितना मीठा मधुर आम और स्कंद। सर्वोदय समाज हम परिपक्व मधुर आम जैसा बनाना चाहते हैं। पुराना समाज नीरस, कठिन और लकड़ी जैसा है। फिर भी सर्वोदय-समाज पुराने समाज को न तोड़ते हुए यह करना चाहता है। जैसे कुशल इंजीनियर हमें कुएँ ऊपर चढ़ा देता है, हम

ऊपर चढ़ते हैं, पर उसका भान ही नहीं होता, इसी तरह मालिकारक विचार की यह खूबी है कि वह पुराने विचार से नव विचार में कुशलता से प्रवेश करता है। इसमें शब्द कायम रखने की स्थूल कल्पना नहीं है, अर्थ बदलने की प्रक्रिया है। समाज में दो प्रकार की विचारधाराएँ होती हैं—एक पुरानी और दूसरी नयी। यदि ऐसा भेद न रहा, तो समाज की प्रगति खतम हो जायगी। बाप की विचारधारा से बेटा दो कदम आगे। बेटा आगे है यह बाप को पसन्द नहीं और बाप पीछे है यह बेटे को पसन्द नहीं। फिर दोनों का झगड़ा चलता है। प्राचीन काल में भी ऐसा हुआ था। परशुराम और राम दोनों नारायण के अवतार थे। परंतु परशुराम ने राम को नहीं पहचाना। बाद में रामचंद्र का पराक्रम देखकर उन्होंने पहचान लिया। रामचन्द्र का अवतार नया था। इस तरह का नये और पुराने के बीच झगड़ा होता है। उसे कुशलता से मिटाना चाहिए। भूदान में यही हो रहा है।

भूदान को सबकी सहानुभूति हासिल

कम्युनिस्ट कहते हैं कि बाबा का ग्रामदान बहुत अच्छा है। उन्होंने यह भी कबूल किया है कि मालकियत मिटाने की बात कानून से नहीं हो सकती। लेकिन उल्टा ही हो रहा है। वे अब 'सीलिंग' की बात करते हैं यानी जो मालकियत आज ढीली हुई है, उसे फिर से एक बार पक्की बनायेंगे। लोग इतने मूरख नहीं हैं। उन्होंने जमीन आपस में बाँट ली। हैदराबाद में यही हुआ। फिर केरल के लोग तो ज्यादा सुशिक्षित हैं। लोग दो प्रकार के होते हैं : १ प्रत्युत्पन्नमति और २. अनागत विधाता। जो अनागत विधाता होते हैं, उनको आगे क्या होनेवाला है, यह पहले से ही मालूम हो जाता है और जो प्रत्युत्पन्नमति होते हैं, उनको कोई चीज बन रही हो, तो उतने में ही उसका पता चल जाता है। इस तरह दोनों ने तैयारी कर ली। जो कोई थोड़े मूरख बचे होंगे, उनसे थोड़ी कुछ जमीन सरकार को मिलेगी। तात्पर्य यह कि मालकियत मिटाने की बात न कम्युनिस्ट सरकार करती और न कम्युनिस्ट दल भी। इसीलिए बाबा के काम को कम्युनिस्ट लोग प्रेम से देखते हैं। बाबा मालिकों को प्रेम से समझाता है। उन्हें

लगता है कि बाबा हमारी इज्जत बढ़ाता है, हमारे लिए हमदर्दी रखता है। इस तरह वामपक्षी, दक्षिणपक्षी दोनों एक हो जाते हैं।

सारांश, समाज की रचना हमें पूरी तरह से बदलनी है। थोड़ा सुधार नहीं, पूरी क्रांति करनी है। परन्तु वह इस ढंग से करनी है कि उसमें हमें सबका सहयोग मिले। सहयोग मिल भी सकता है, अगर हम शब्दों को कायम रखते हैं। शब्द को तोड़ो नहीं, उसमें अधिक अर्थ भरो, उसका विकास करो। फिर लोगों में बुद्धि भेद नहीं होगा। हम दान माँगते हैं, इसलिए दाताओं से प्रेम संबंध बनता है। उनके हृदय में प्रवेश होता है। घर में हम प्रवेश चाहते हैं, तो दरवाजे से करना पड़ता है। दीवाल से करना चाहेंगे, तो टक्कर होगी। जहाँ का दरवाजा खुला हो, वहीं से प्रवेश करना होगा। हमें पूरी क्रांति करनी है। परन्तु ऐसी कुशलता से करनी है कि प्राचीन काल से चली आनेवाली ज्ञानधारा और विचारधारा कुंठित न हो।

कण्णानूर (केरल)
१०-८-'५७

भेड़ और गड़ेरिया : २४ :

इन दिनों दुनिया के सब देशों के लोग तंग आ गये हैं। सूझ नहीं रहा है कि क्या किया जाय। पुराने जमाने की अपेक्षा आज भौतिक सुख के साधन काफी बढ़ गये हैं। आने जाने के साधन भी अति सुलभ हो गये हैं। फिर भी सारे दुःखी हैं। सर्वत्र लड़ाई, परस्पर द्वेष है। एक देश एक दूसरे से डर रहा है। पहले जानवरों के खिलाफ लड़ना पड़ता था, तो धनुष्य-बाण पर्याप्त थे। परन्तु अब मनुष्य मनुष्य से डरता है, इसलिए बड़े-बड़े शस्त्रों की आवश्यकता महसूस होती है। रूस अमेरिका के नाम से डरता है और अमेरिका रूस के नाम से। दोनों को पारिवारिक प्रेम का अनुभव है, दोनों सुख दुःख पहचानते हैं। एक

दूसरे से बातचीत करना हो, तो आसानी से कर सकते हैं। फिर भी कैसी हालत है!

भेड़ गड़ेरिया चुनने लगे

प्राचीन काल म लोग अलग-अलग रहते थे। व्यवस्था नहीं थी। उनका समाज नहीं बना था, इसलिए उनको जानवरों का डर था। फलस्वरूप उन्होंने व्यवस्था कायम की। जिसे आज हम सरकार, राजा कहते हैं, वह व्यवस्था हुई। सरकार याने क्या? जैसे गो पालन, मधुमक्खी-पालन, वैसे ही मनुष्य पालन की व्यवस्था! भेड़ों को गड़ेरिया चाहिए था। सोचते थे, उसके बिना कैसे चलेगा? हमारी कुछ व्यवस्था तो होनी चाहिए। पहले कोई भी जबरदस्ती से आता और कहता कि तुम चाहो या न चाहो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। भेड़ों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तय किया कि हमारा गड़ेरिया हम चुनेंगे। तब से यह लोकशाही शुरू हुई। गड़ेरिया चुनने के अलावा उसके हाथ में अपने हाथ की लकड़ी दी। यानी सेना बनाने की ताकत दी। पाँच साल के लिए ये हमारे गड़ेरिया रहेंगे।

इस तरह आज कुल दुनिया में गड़ेरियों का राज है। कोई गड़ेरिया ४ करोड़ भेड़ों का पालन करता है, कोई २५ करोड़ का, तो कोई ४० करोड़ का। इस तरह कम बेशी तादाद में उन-उनके पास भेड़ होते हैं। वे जगल के एक एक हिस्से में बँटे हैं। चरते रहते हैं बेचारे! परन्तु यहाँ के गड़ेरिये को लगता है कि वह गड़ेरिया खतरनाक है, आक्रमण कर देगा। उसे लगता है, यह गड़ेरिया खतरनाक है, लेकिन बेचारी भेड़ों को कुछ भी नहीं लगता। वे सोचती ही नहीं, चरने में लगी हैं। कहीं उनमें आपस आपस में झगड़ा हो जाता है, तो गड़ेरिया लकड़ी चलाता है। उनके लिए कोर्ट, जेल, न्याय, फाँसी है। जहाँ चाहे वहाँ गड़ेरिया उन्हें भेज देगा। परन्तु गड़ेरिया को लगता है, हमे जगल का ज्यादा हिस्सा चाहिए। उसके बिना हमारी भेड़ों का कैसा होगा, उनका पालन नहीं हो सकेगा। हमारी भेड़ों का रहन सहन का स्तर ऊँचा होना चाहिए। दूसरा गड़ेरिया यही कहता है। इसलिए दोनों के बीच द्वेष पैदा

होता है। फिर वह सेना बढ़ाता और कहता है: 'देखो भेड़ो, तुम्हारे लिए लकड़ी, पुलिस काफी है। परन्तु अब आक्रमण होने का डर है, इसलिए सेना बढ़ानी चाहिए। आक्रमण होगा,' तो तुम्हें खाना भी नहीं मिलेगा। अतः जैसे तुमने मेरे हाथ में एक लकड़ी दी है, वैसे ही दूसरे हाथ मे हाइड्रोजन और ऐटम दे दो। उसके लिए इतना पैसा खर्च होगा, वह मंजूर कर दो।'' भेड़ कहेंगी: ''इतना पैसा खर्च करना होगा? जरूरत क्या है इसकी?'' ''मूर्खो, तुम समझते नहीं, उतना देने के लिए तैयार हो जाओ, उसके बिना तुम्हारा पालन नहीं कर सकता।'' बस, घबड़ा गयी बेचारी भेड़ें। कितना मजूर करना है? कहता है, पाँच हजार करोड़। अच्छा, ठीक है। यह सारा सरकार का स्वरूप है।

प्रातिनिधिक व्यवस्था में खतरा

आपके ध्यान में आ गया होगा कि जो बात व्यवस्था के लिए बनायी, उससे अव्यवस्था बनी। अब क्या किया जाय? यह सवाल आज दुनिया के सामने है। एक गड़ेरिया दूसरे गड़ेरिये से द्वेष करता है। इतना ही नहीं, एक देश मे ही 'मुझे गड़ेरिया चुन दो' इसलिए भी झगड़े चलते हैं। दलीय राजनीति के अलावा गाँव-गाँव में क्षुद्र स्वार्थ के झगड़े हैं ही। याने गाँव-गाँव में क्षुद्र स्वार्थ के झगड़े, देश में दलीय राजनीति के झगड़े और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में परस्पर द्वेष और झगड़े—इस तरह गाँव से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक झगड़ों की सुव्यवस्थित योजना बनायी गयी। पूछा जा सकता है कि जब शांति और समाधान के लिए योजना बनायी गयी, तो शांति और समाधान होना चाहिए था? लेकिन सोचने की बात है, केवल योजना बनाने से काम न होगा, शान्ति का सक्रिय प्रयत्न करना होगा। वैसे पुराने ब्राह्मण कोई भी कार्य शुरू करने के पहले 'शांतिः शांतिः शांतिः' ऐसे तीन बार कहते थे। इसी तरह ये सारे लड़नेवाले भी इधर शस्त्रास्त्र बढ़ा रहे हैं और उधर शांति का जप कर रहे हैं। रूस अपने पहाड़ों मे अणुबम का प्रयोग कर रहा है, तो अमेरिका अपने समुद्र में। बम के ढेर पड़े हैं। कोई नहीं जानता, किसके पास कितने हैं। फिर भी चर्चा शांति की चलती है।

खाराश, इस समय सब भयभीत हैं। इसके लिए अब गाँव से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक प्रतिनिधि के जरिये योजना करने की आज की योजना तोड़ देनी होगी। आपको भूख लगी हो और आपका प्रतिनिधि खाये, तो क्या आपका पेट भर जायगा? आपको स्वयं खाना होगा। इसी तरह आपके गाँव का इन्तजाम आपको स्वयं करना होगा। जब तक प्रतिनिधियों के जरिये हम उसे कराते हैं, तब तक खतरे में रहेंगे। यह भलीभाँति समझना चाहिए।

विकेन्द्रित व्यवस्था आवश्यक

आज हमारा जिंदा रहना या मरना चंद लोगों के हाथ में है। उनमें से किसी एक की बुद्धि बिगड़ गयी, तो सारा जीवन खतरे में है। फिर हमारी अक्ल नहीं चलेगी। उस राक्षस पर हमारा सारा जीवन आधृत है। वास्तव में वह राक्षस नहीं है। वह भी हमारे जैसा ही मनुष्य है। परन्तु उसके हाथ में शस्त्र देकर उस पर अपनी कुछ जिम्मेवारी डालकर हमने ही उसे राक्षस बनाया और खुद बिल्कुल अनाथ बन गये हैं। आज विज्ञान बहुत बढ़ा है। विज्ञान के आधार पर जगह-जगह का इंतजाम हो सकता है। अब अणुयुग आ रहा है। इसलिए बिजली से जितनी विकेन्द्रित व्यवस्था नहीं हो सकी, उतनी आणविक शक्ति से हो सकती है। यह जो सारी विद्युत् शक्ति, आणविक शक्ति और भाषा शक्ति है, वह विध्वंसकारी हो सकती है और निर्माणकारी भी। कल्याण कर सकती है और उपद्रव भी। इसलिए विज्ञान बढ़ा है, यह अच्छी बात है। उससे जीवन सुलभ होता है। अगर उसके साथ अहिंसा जुड़ जाय, तो दुनिया में स्वर्ग आयेगा। लेकिन हिंसा उसके साथ जुड़ जाती है, तो सबकी बर्बादी हो जायगी।

दंड किसके हाथ में हो?

होना यह चाहिए कि लोग विज्ञान के साथ अहिंसा जोड़कर तत् तत् स्थान पर स्वयं अपना अपना कारोबार चलायें। उस हालत में केन्द्रीय सरकार में कम से कम शक्ति होगी। सलाह चाहिए, तो वह देगी, लेकिन उसके पास दंडशक्ति नहीं रहेगी।

हमारी प्राचीन योजना यह रही कि दंड सन्यासी के हाथ में होता था। लेकिन आज तो ३२ इञ्च छातीवाले के हाथ में दंड दिया जाता है। चुने तमोगुणी राक्षसों के हाथ में दंड-शक्ति है। देश में शराबबंदी हो, तो भी उन राक्षसों (सैनिकों) के लिए शराब का इन्तजाम करना पड़ता है, क्योंकि वे हमारी रक्षा करते हैं, उनके भोग की पूर्ति होनी चाहिए। उनके व्यभिचार की पूर्ति के लिए कन्याएँ दी जाती हैं, क्योंकि वे घर से बाहर रहते हैं। वे त्यागी है, वे हमारे रक्षक हैं। हम सारी भेड़ें हैं। हमारी रक्षा के लिए हमारे गड़ेरियों ने उन्हें चुना है। अगर वे सुख में न रहे, उनकी भोग-पूर्ति न हुई, तो हम मारे जायँगे। उनको उत्तम खाना मिलना चाहिए, चाहे हम भूखों रहें। मजा यह कि वह देशभक्ति मानी जाती है। उनके आधार से देश की रक्षा होती है, ऐसा माना जाता है। यह कितना हत बुद्धि का लक्षण है। देश में बड़े बड़े विद्वान्, ज्ञानी अपने को अनाथ समझते है और दुर्बनों के हाथ में उन्होंने दंड-शक्ति दे दी है। सोचने की बात है कि क्या रामजी की सेना शराब पीनेवाली या व्यभिचारी थी? कभी नहीं, वे तो फलाहार करनेवाले बंदर थे। सैनिक तो वे हैं ही। सामान्य मनुष्य जो भोग करता है, उससे भी कम वे भोग करते हैं। जो त्यागी, सात्त्विक और शीलवान् हैं, ऐसे ही लोग हमारी रक्षा कर सकेंगे। किंतु आज ३२ इञ्च छातीवाले ही पुलिस-सेना में चुने जाते हैं और उनको मारने की तालीम दी जाती है।

हमें करना है

एक भाई ने पूछा कि आपकी बात तो अच्छी लगती है, परन्तु यह होगा किस तरह? हम कहते हैं : "किस तरह होगा, ऐसा सवाल मत पूछो। हम किस तरह करेंगे, यह सोचो। पहले हमें निश्चय करना चाहिए, फिर अक्ल सूझेगी। आपके गाँव का इन्तजाम बाबा नहीं करेगा, आपको ही करना होगा। गाँव के झगड़े बाहर न जायँ। गाँव में पुलिस की जरूरत न हो। कोई चोरी करेगा भी क्यों, जब कि गाँव में मालकियत मिटी है। इस तरह करने से सरकार को महसूस होगा कि इस इलाके में कोर्ट और पुलिस की

जरूरत नहीं है। इस तरह उन्हें बेकार बनाने की हिम्मत हमें करनी चाहिए। तभी दुनिया सुखी होगी।"

पलयागड़ी (केरल)
१३-८-'५७

प्राप्ति-पत्र दीजिये : २५ :

आज स्वातन्त्र्य-दिन है। इस दिन कुछ न-कुछ करना होता है। इसलिए हमने बहुत बड़ा कदम आगे बढ़ाया है। आज यात्रा में सवेरे एक भाई भूदान-पत्र देने लगे। हमने कहा, हम दान-पत्र नहीं लेते। वह पुराना रिवाज हो गया। अब हम प्राप्ति पत्र चाहते हैं। आज से बाबा ग्रामदान पत्र या प्राप्ति पत्र ही लेगा, भूदान पत्र नहीं, चाहे दूसरे भले ही लें।

आज क्या होता है ? भूदान देते हैं और जमीन वैसे ही लटकती रहती है। कहते हैं, समिति के लोग आयेंगे और बाँटेंगे। जिस माता ने बच्चे को जन्म दिया, वह दूध नहीं पिलायेगी ? क्या कोई दूसरी बहन आयेगी दूध पिलाने के लिए ? इसलिए भूदान-पत्र दाताओं से लो। वह जमीन बाँट दो। जिनको देते हो, उनको अधिकार पत्र दे दो और 'हमें इतनी-इतनी जमीन मिली है', ऐसा उनसे स्वीकृति-पत्र लो। वही प्राप्ति पत्र होगा। इस तरह का नया कदम हमने आज से यहाँ उठाया है। इस तरह शुरू से आज तक विचार की प्रगति हुई है। अब आचार शुरू होगा।

करीनेल्लूर (केरल)
१५-८-'५७

भारत के दो स्नेह-बन्धन : हिंदी और नागरी : २६ :

हिंदुस्तान की दूसरी कुल भाषाओं को हम मणियों की उपमा देते हैं, तो हिंदी भाषा उन मणियों को एक साथ पिरोनेवाले सूत की जगह ले लेती है।

वैसे सूत की कीमत मणि से ज्यादा नहीं, पर वह मणियों को एक साथ रखता है।

हिन्दी भाषा प्रेम-तन्तु है

हम वेलूर जेल में थे। वहाँ दक्षिण भारत के कई भाषाभाषी इकट्ठा हुए थे। बेचारे एक दूसरे से अपनी भाषा में बातें नहीं कर सकते थे। पढ़े-लिखे थे, इसलिए अंग्रेजी में बातचीत कर लेते थे। फिर भी आम जनता के खयाल से देखा जाय, तो अंग्रेजी सब लोगों को जोड़नेवाली कड़ी नहीं हो सकती। वह स्थान हिंदी भाषा का ही हो सकता है। मैंने कहा कि वह प्रेम तंतु है। वह जबरदस्ती का नहीं होता। कैदियों को जकड़कर बाँधनेवाली जंजीर लोहे की होती है। परन्तु प्रेम-तंतु कच्चा होता है। फिर भी लोग प्रेम के कारण उसे टूटने नहीं देते। वैसा ही हिंदी का प्रेम तंतु है।

जो हिंदी का अभिमान रखते हैं और उसकी खींचातानी करते हैं, वे उसे तोड़ने की कोशिश करते हैं। अभी पंजाब में हिंदी के लिए नाहक आंदोलन चलाया गया है। हम किसी पर टीका नहीं करते, फिर भी यह कहना चाहते हैं कि अगर हम हिंदी का आग्रह रखेंगे, तो नुकसान होगा। लोग उसे प्रेम से स्वीकार करें, यही उसकी ताकत है।

दूसरा स्नेह-तन्तु नागरी

सारे भारत को एक रखने के लिए हम जितने स्नेह बंधनों से बाँध सकते हैं, उतने स्नेह बंधनों की जरूरत है। जैसे हिंदी यह एक स्नेह-तंतु है, वैसे ही उतने ही महत्त्व का दूसरा स्नेह-तंतु नागरी लिपि का है। आज भिन्न भिन्न भाषाओं को लोग अपनी-अपनी लिपि में लिखते, साथ ही नागरी में भी, तो कितना लाभ होता। उनकी लिपि अच्छी है, सुन्दर है; हम उसका निषेध नहीं करते। परन्तु उसके साथ ऐच्छिक तौर पर नागरी में अपनी भाषा में लिखना शुरू करते हैं, तो सारे भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं को सीखना दूसरों के लिए सुलभ हो जायगा।

नागरी का वैभव

सारे भारत के लिए एक लिपि नागरी ही हो सकती है। कुछ लोग समझते हैं कि वह रोमन लिपि हो सकती है। लेकिन यह उनकी गलत धारणा है। वे नहीं समझते कि आज नागरी का क्या स्थान है? पन्द्रह करोड़ हिंदीभाषी नागरी में लिखते हैं। तीन, सवा तीन करोड़ मराठीभाषी अपनी भाषा नागरी में लिखते हैं। दो पौने दो करोड़ गुजराती अपनी भाषा नागरी में लिखते हैं। नागरी और गुजराती थोड़ी ही अलग दीखती है। पर है वह नागरी ही। गुजराती में ऊपर की शीर्षरेखा नहीं देते और दो तीन अक्षरों का फरक है। फिर नेपाली भाषा, जो हिंदुस्तान के बाहर की भाषा है, वह भी नागरी लिपि में लिखी जाती है। हमने पवनार-आश्रम में बैठे बैठे उस भाषा का अध्ययन किया, क्योंकि लिपि नागरी थी। इसके अलावा पंजाबी और नागरी में बहुत थोड़ा फरक है। एक घंटे की मेहनत में एक दूसरे की भाषा सीख सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि संस्कृत का कुल आध्यात्मिक साहित्य नागरी लिपि में है। इतना वैभव किसी दूसरी लिपि में नहीं है। इस तरह दस हजार वर्ष का साहित्य और आध्यात्मिक संपदा नागरी लिपि में है। इसके अलावा जैनों के ग्रंथ, जो अर्धमागधी में हैं, उनकी लिपि भी नागरी है। बौद्धों के त्रिपिटकों का बहुत सारा हिस्सा नागरी में आया है। नागरी के जरिये ही हिंदू, बौद्ध, जैन धर्म के ग्रंथ पढ़ सकते हैं। इसलिए आज की भिन्न भिन्न भाषाएँ भी नागरी में लिखी जायँ, तो काफी बल बढ़ेगा।

इसी तरह के परस्पर स्नेह बंधन के साधन जितने बढ़ सकते हैं, उतने बढ़ाने चाहिए। यह स्नेह-बंधन सांस्कृतिक तौर पर हुआ। वैसे ही आर्थिक क्षेत्र में भी स्नेह बंधन बढ़ना चाहिए। इसलिए भूदान, संपत्तिदान हमने निकाला। इससे भूमिहीन और भूमिवान् के बीच स्नेह पैदा होता है। मालिक और मजदूर में प्रेम सम्बन्ध बनता है और समाज एकरस बनाने में भी मदद होती है। नहीं तो आज जाति, धर्म, पक्ष के जरिये समाज के टुकड़े पड़े हैं। ये जो विविध भेद हिंदुस्तान के पीछे पड़े हैं, उन्हें तोड़कर उनमें से अभेद की युक्ति सध जायगी,

तभी भारत का बल बढ़ेगा। हमें सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और
ने का हर प्रयत्न करना चाहिए।

एकात्मता

। अब दूसरे नये दशक में प्रवेश कर
को एकरस बनाते हैं, तो समझ लें कि
र से इतने भेद होते हुए भी अंदर से हम
नेहरू आज हम यहाँ देखते हैं, वे ही
हैं। लोग यह नहीं पूछते कि बाबा किस
ही है। हम उड़ीसा के आदिवासी
ग हैं। वे कहते थे कि बाबा हमारी ही
ले बदन रहता है। यह है भारत की
वक ऐसा है, जो रूस की सेवा करता
। सेवा करता है? रूस के मसले हल
सले हल करने घूमता है! परन्तु यहाँ
बाबा घूम रहा है। उड़ीसा की समस्या
। म बाबा का जन्म हुआ है महाराष्ट्र मे,
हुआ? यह भारत की भारतीयता है,
ो शंकराचार्य सारे भारत मे कैसे घूम
का स्वागत किया! वह एकात्मता का
दर्शन है। भारत की आत्मा एक है। अलग ही रिवाज, चाल-चलन में फरक
होता है, पर उससे तो मिठास और बढ़ती है। इसलिए उसका निषेध करने
का कारण नहीं है। भारत की एकरसता बनाने का प्रयत्न हमें करना है।

निलेश्वर (केरल)
१८-७-'५७

केरल प्रदेश म हमारे करीब २७ हफ्ते बड़े आनद से बीते। अब इस आखिरी सप्ताह में आनंदाश्रम में आने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस आश्रम का अखिल भारत से ही नहीं, दुनिया से सबध है। परन्तु बड़ी बात यह है कि यह केरल प्रदेश मे बसा है। दीपक का प्रकाश जैसा सर्वत्र फैलता है, वैसा ही उसके नजदीक भी होता है। इसी तरह ऐसे आश्रम से प्रकाश दूर तक फैलता है, वैसा नजदीक भी होता है।

आनंदाश्रम कार्यकर्ताओं का स्फूर्ति-स्थान बने

केरल प्रदेश के कार्यकर्ताओं ने धर्म संकल्प किया है। उनका आदर्श है— ग्रामराज्य की स्थापना, सर्वोदय समाज बनाना, शांति-सेना की तैयारी करना और जमीन की मालकियत मिटाना। यह छोटी बात नहीं है। यहाँ के कार्यकर्ताओं ने ऐसी भाषा बोलना शुरू किया है। यह सब किसके बल पर किया? कुछ कार्य सामान्य मनुष्य की शक्ति से हो सकते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी कार्य होते हैं, जिनके पीछे आध्यात्मिक बल चाहिए, प्रेम का बल चाहिए। सारे कार्यकर्ताओं को वह बल पहुँचाने का काम यह संस्था कर सकती है, ऐसा हमें यहाँ भास हुआ। उपनिषद् में कहानी है। पक्षी सुबह अपना घोसला छोड़कर दूर जगल में जाते हैं। सर्वत्र भटकने के बाद शाम को वापस अपने घोसले मे लौटते हैं, तो जगल जंगल भटकनेवाले को जो स्थान घोसला देता है, वही स्थान यह आश्रम दे सकता है। कुछ आध्यात्मिक स्फूर्ति की जरूरत पड़ी, तो कार्यकर्ता यहाँ आकर रह सकते हैं। यहाँ के लोग भी जहाँ जहाँ कार्यकर्ता उन्हें बुलायें, जाकर मार्गदर्शन कर सकते हैं। इस तरह केरल के सर्वोदय कार्यकर्ता इस आश्रम संस्था से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं।

आप लोग जानते हैं कि आज दुनिया की स्थिति डाँवाडोल है। विज्ञान बहुत बढ़ा है। उसके विकास के साथ हमें शक्ति मिलनी चाहिए। परन्तु आज

उल्टे वह शक्ति संहार में लगी है। अग्नि का उपयोग रसोई बनाने के लिए होता है और उससे घर को आग भी लग सकती है। अग्नि स्वयं तटस्थ शक्ति है। वैसे ही कुल विज्ञान की शक्ति तटस्थ है। आत्मज्ञानी उसका उपयोग कल्याण के लिए करेगा और अज्ञानी मानव-संहार के लिए। यह मानव-संहार आज हो रहा है, क्योंकि बड़े-बड़े राष्ट्र एक दूसरे से डरते हैं और इधर शस्त्रास्त्रों के ढेर लगा रहे हैं। इतना ही नहीं, वे शस्त्र अच्छे बने हैं या नहीं, यह देखने के लिए प्रयोग करते हैं। उसके कुपरिणाम हवा में फैलते हैं और उसका बुरा असर होता है। एक वैज्ञानिक ने कहा है कि ऐसे ही प्रयोग चलते रहेंगे, तो आगामी शिशु अक्षम पैदा होंगे।

राम-नाम की ताकत

आज अखबार में हमने खबर पढ़ी। कश्मीर में एक तालाब की कुल की कुल मछलियाँ मर गयीं। वैज्ञानिकों का कहना है, अणु-सक्रियता के कारण मछलियाँ मरी हैं। ऐटम, हाइड्रोजन के प्रयोग वहाँ से दूर हुए हैं, पर सारे वातावरण में उसका विष फैल रहा है। ऐसा विष फैलानेवाले अस्त्रों के वहाँ ढेर लगे हैं। वातावरण में परमाणु फैलाने का हिंदुस्तान का अपना अजीब ढंग है। हम इस आश्रम की लाइब्रेरी देखने गये थे। वहाँ राम नाम लिखे कागजों के ढेर के ढेर थे। वे अच्छी तरह लोहे की आलमारियों में बहुत हिफाजत से रखे थे। उसका परिणाम यह होगा कि कुल दुनिया में स्वच्छ, सुन्दर अमृत परमाणु फैल जायँगे। जैसे कश्मीर की मछलियाँ हवा में विष के परमाणु फैलने से मरती हैं, वैसे ही यहाँ के अमृत बिन्दु अमेरिका के लोगों को मिलने चाहिए। यह है हमारे पागल हिंदुस्तान का तरीका। यह हिंदुस्तान को ही सूझ सकता है।

चीनी यात्री यींग यू हांग ने लिखा है : "इंडिया इज गॉड इण्टॉक्सीकेटेड लैंड" (भारत ईश्वर के पीछे पागल है) यह भारत का निःसंशय गौरव है। आज भी वैसा ही भाव बना है। उधर ऐटम और हाइड्रोजन बम के ढेर लग रहे हैं और इधर संग्रह हो रहा है राम-नाम का। ये इन कागजी ऐटम बम से क्या लड़ सकते हैं! एक ऐटम बम पड़ेगा, तो कागज

भी राम और राम नाम लिखनेवाला भी राम ! फिर भी श्रद्धा बढ़ती है, इसमें ताकत है और यही ताकत है, जिसने भारत को बचाया। हिंदुस्तान पर पुराने जमाने से कम आक्रमण नहीं हुए हैं। आज यूनानी, रोमन संस्कृति केवल स्मृति में ही टिकी है। लेकिन अनेक आक्रमणों के बावजूद भारत की आत्मा पराजित नहीं हुई। भारत की संस्कृति अखंड रही। उसने अपना सिर ऊँचा रखा। इसलिए आज यहाँ के लोगों का पागलपन देखकर हम आनंद हुआ। हम लगा, यह ताकत भूदान काम के लिए मदद दे सकती है।

राम-नाम भक्तों का अधिक बचाव करता है

हरएक मनुष्य के मन का बचाव राम नाम करता है। उसमें भी कुछ पक्षपात जरूर होगा। हनुमान् का ज्यादा बचाव होगा, भारत का ज्यादा बचाव होगा। यह शंकराचार्य ने अपने भाष्य म उपमा देकर अच्छी तरह समझाया है। उन्होंने कहा है कि परमेश्वर अग्नि के समान समत्वयुक्त है। अग्नि के जो नजदीक रहेगा, उसे ज्यादा गर्मी पहुँचेगी और जो दूर रहेगा, उसे गर्मी नहीं पहुँचेगी। यह अग्नि का दोष नहीं, उससे नजदीक और दूर रहनेवाले का दोष है। अग्नि निष्पक्ष होती है। इसी तरह दुनिया के सब लोग रामनाम का आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। हम समझते हैं कि ग्रामदान और भूदान वह आशीर्वाद प्राप्त होने का अधिकारी है। हम चाहते हैं कि केरल के सब सर्वोदय-कार्यकर्ता इस बल का उपयोग करें।

कर्म, भक्ति का योग हो

हमने बहुत दफा कहा है कि ग्रामदान विश्व शान्ति के लिए वोट है। लेकिन वह वोट ही नहीं, उससे आणविक सक्रियता बढ़ती है और भलाई के परमाणु सारी दुनिया में फैलते हैं। उन परमाणुओं को राम नाम के जप का बल मिलता है, तो वह रामबाण बनेगा। आज हमें आशा हुई कि हमारे कार्यकर्ताओं का आश्रम के भक्ति भाव के साथ संयोग बन सकता है। शास्त्रों में बहुत दफा भक्त और परमेश्वर के जुड़ जाने की बात कही है। वेद में कहा है : "अरे इंद्र, तुम और हम जुड़ जायँ"—अहं च त्वं च वृत्रहन्, संयुज्याव। यहाँ परमेश्वर को इन्द्र

संज्ञा दी है। इन्द्र यानी 'इंद्र-द्रष्टा'। परमेश्वर से भक्त कह रहा है, तेरा और मेरा जोड़ा बन जायगा, तो बड़ा ही लाभ होगा। कर्मयोग की भक्ति के साथ योग की बात प्राचीन काल से चल रही है। गीता में भी यही कहा है। लेकिन कर्मयोग में इतनी नम्रता होनी चाहिए कि वह भक्ति की शरण जाकर उसका आश्रय ले। इसी तरह भक्ति में इतना वात्सल्य होना चाहिए कि वह कर्मयोग को अपना पोषण दे। भक्ति मातृस्थानीय है, कर्मयोग पुत्रस्थानीय। माता पराक्रम का कार्य अपने पुत्र के जरिये कराती है और उसे स्वयं पोषण देती है। यही गीता में अर्जुन और कृष्ण के बारे में दीखता है। इसी तरह इस स्थान से हम भक्ति और कर्मयोग के योग की अपेक्षा करते हैं। यह सारा विषय विस्तार से हमने अपने गीता-प्रवचन में कहा है। वह पुस्तक बहुतों के पास पहुँची है।

कानगड़ (केरल)
१७-८-'५७

शान्ति-सेना की स्थापना : २८ :

[प्रार्थना-सभा के पहले शांति-सेना के संगठन की घोषणा की गयी और शांति-सैनिक के नाते केरल के आठ कार्यकर्ताओं ने प्रतिज्ञाएँ लीं। उसके बाद प्रतिज्ञा-पत्र पू० बाबा को समर्पण किये गये।]

केरल की विशेषता : शांति-सेना की स्थापना

आज हमारी केरल-यात्रा का अंतिम दिन है। अभी यहाँ आपकी उपस्थिति में एक गंभीर प्रसंग हुआ। शांति-सेना की स्थापना केरल की विशेषता मानी जायगी। ग्रामदान तो तमिलनाड में हुए थे, उड़ीसा में भी हुए और दूसरे प्रांतों में भी हुए हैं। पहले केरल के कार्यकर्ताओं को उतना विश्वास नहीं था कि यहाँ ग्रामदान होंगे। परंतु देखा गया कि यहाँ की जनता की उदारता दूसरे किसी प्रान्त की जनता से कम नहीं है। यहाँ भी सैकड़ों ग्रामदान हुए हैं। ग्रामदान के गाँव छोटे हैं। आरंभ में ऐसा ही होता है। आगे बड़े-बड़े गाँव भी

मिलेंगे। फिर भी ग्रामदान केरल की विशेषता नहीं, यहाँ ग्रामदान के आगे का कदम उठाया है और वह है शांति सेना की स्थापना।

आज यहाँ आठ लोगों ने प्रतिज्ञा ली। शांति सेना की प्रतिज्ञा लेने का अर्थ यह होगा कि वे अपना जीवन और प्राण जन सेवा में अर्पण करते हैं। वे अपनी सेवा में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखेंगे। अहिंसा और सत्य पर हमेशा चलने की कोशिश करते रहेंगे और लोगों को उसी राह पर ले जायँगे।

बुनियाद बनी

अब केरल की तरफ सारे भारत का, सारी दुनिया का ध्यान रहेगा। क्योंकि यहाँ शांति-सेना का आरंभ हुआ है। यहाँ के कार्यकर्त्ताओं पर प्रभु ने बड़ी भारी जिम्मेवारी डाली है। वह उन्होंने विश्वास के साथ उठायी है। हम नहीं चाहते कि आज ज्यादा लोग प्रतिज्ञा लें। हम केवल दिखावा नहीं, पक्की बुनियाद चाहते हैं। यह बुनियाद आज आठ लोगों ने डाली है। आगे दिन ब दिन कार्य बढ़ेगा। पहले सैकड़ों लोकसेवक बनेंगे, उनमें से शांति सैनिक होंगे।

गांधीजी आज अधिक काम कर रहे हैं

भारत में शांति सेना होगी, यह महात्मा गांधीजी की इच्छा थी। उसके लिए कोशिश भी काफी की गयी थी। परन्तु उस वक्त हम सारे उनके साथी कमजोर थे। महापुरुषों की आत्मा शरीर में रहते जितना काम करती है, उससे ज्यादा काम शरीर से मुक्त होने पर करती है। इसलिए गांधीजी ने शरीर में रहते जो कार्य किया, उससे ज्यादा कार्य आज हो रहा है।

मंजेश्वरम् (केरल)
२३-८-'५७

इद्‌वरु कौन और इल्लद्‌वरु कौन ?

अभी यहाँ हमें दिये गये मानपत्र में यह उल्लेख है कि जिनके पास है, उनसे लेना है और जिनके पास नहीं है, उन्हे देना है। सोचने की बात यह है कि इद्‌वरु कौन है और इल्लद्‌वरु कौन है। आरभ में हम भी इसी तरह बोलते थे कि जिनके पास भूमि या सम्पत्ति है, वे भूमिहीनो, संपत्तिहीनो को भूमि और सम्पत्ति दें। भूमिवाले और संपत्तिवाले इद्‌वरु हैं और भूमिहीन, संपत्तिहीन इल्लद्‌वरु। लेकिन इस यात्रा में धीरे-धीरे हमारी बुद्धि के पटल खुल गये। आकाश सेवन से बुद्धि विशाल बनती है। सूर्य किरणों के सेवन से तेजस्वी बनती है और हवा के सेवन से मुक्त बनती है। हमारी बुद्धि भी धीरे-धीरे व्यापक होती गयी, उसमें प्रकाश आया। वह मुक्त होती गयी। अब यह विचार स्पष्ट हुआ है कि इस दुनिया मे इल्लद्‌वरु कोई नहीं है। भगवान् ने हरएक को कुछ-न-कुछ दे ही रखा है। वह ऐसा निर्दय नहीं कि किसीको इल्लद्‌वरु बनाये। उसने किसीको बुद्धि दी है, तो किसीको श्रम शक्ति; किसीको भूमि दी है, तो किसीको संपत्ति। और भी पचासों प्रकार के दान उसने दिये हैं। उसने हरएक को पाँच इद्रियाँ दी हैं, सुन्दर नर देह दी है। हरएक को माता के उदर में जन्म दिया है। मातृ-प्रेम दिया है, पिता का प्रेम दिया है। ऐसी बहुत सी चीजें उसने हरएक को दी हैं। कोई चीज किसीको कम मिली है, तो कोई चीज ज्यादा! इसमें उसका पक्षपात नहीं। जिसकी जितनी वासना थी, जैसी करनी थी, उसके अनुसार उसे चीज मिली। आप किसी बनिये की दूकान पर जाइये। वहाँ घी, शक्कर, शहद आदि कई चीजें होने पर भी दियासलाई माँगिये, तो वह आपको दियासलाई ही देगा। जो चीज अच्छी है, उसे वह अपनी ओर से नहीं देगा। आप जो

माँगेंगे, वही देगा। इसी तरह परमेश्वर हमारी वासना के अनुसार देता है। मेरे कहने का मुख्य विचार यह था। सारांश, भगवान् ने हरएक को कुछ-न-कुछ दिया ही है। हरएक के पास कुछ न कुछ चीज नहीं भी है। याने हरएक मनुष्य इद्‌वस् है और इल्‌दवस् भी। किसीके पास कोई चीज है, तो वह उस वस्तुवाला बन जाता है और किसीके पास कोई चीज नहीं है, तो वह उस वस्तु के अभाववाला हो जाता है। यह व्याख्या तो ठीक है कि जिनके पास है, उन्हें देना है और जिनके पास नहीं है, उन्हें लेना है। इसका मतलब यह है कि हरएक को देना ही है। देने के लिए हमारे पास चीजें पड़ी हैं। हाथ, बुद्धि, वाणी, शरीर आदि साधनों से हमें देना ही है। कोई अपने मन में यह न समझे कि मेरा धर्म लेने का है। हर कोई यह समझे कि मेरा धर्म देने का ही है।

ग्रामदान की सफलता का सूत्र

आजकल हम ग्रामदान की बात करते हैं। लोग समझते हैं कि जिनके पास जमीन है, वे अपनी जमीन गाँव को दे देते हैं, तो ग्रामदान हो गया। जो जमीनवाले अब तक अपनी जमीन का उपयोग अपने घर के लिए करते थे, वे सारे गाँव को घर समझकर अपनी जमीन का उपयोग गाँव के लिए करने को तैयार हुए, यह बहुत अच्छा हुआ। लेकिन इतने से ग्रामदान कैसे पूरा हुआ? यह तो उसका केवल एक अंश हुआ। गाँव के संपत्तिमान् आज तक अपनी संपत्ति का उपयोग घर के लिए करते थे। उन्होंने अपनी संपत्ति का उपयोग गाँव के लिए करने का तय किया, तो ग्रामदान बढ़ेगा। फिर भी ग्रामदान पूरा नहीं होगा। गाँव के मजदूरों के पास श्रम शक्ति है। आपने देखा है कि बंदर फल खाना जानते हैं, पर पेड़ों की सेवा करना नहीं जानते। भगवान् ने उन्हें भी हाथ दिये हैं, पर खाने के लिए, छीनने के लिए। वे उत्पादक परिश्रम नहीं करते। पेड़ों की सेवा करके फिर फल भोगेंगे, यह बुद्धि उन्हें नहीं है। इसमें उनका दोष नहीं है। वे बेचारे अज्ञानी जीव हैं। परंतु भगवान् ने मनुष्य को हाथ दिये हैं उत्पादक परिश्रम के लिए। यह सेवा शक्ति मजदूर आज अपने घर के लिए इस्तेमाल करते हैं। अगर वे अपनी श्रम शक्ति ग्राम के लिए

समर्पण करें, तो ग्रामदान का और एक हिस्सा होगा। यह नहीं सोचना चाहिए कि मेरे पास क्या नहीं है। बल्कि यही सोचना चाहिए कि मेरे पास देने की क्या चीज है? मान लीजिये, वह शख्स दुर्बल है, परन्तु पढ़ा लिखा है, तो वह अपनी सेवा गाँव को समर्पण करे, विद्या गाँव को दे।

आप कहेंगे कि आज भी यही होता है, मजदूर गाँव की सेवा करता है, गुरु पढ़ाता है, व्यापारी, साहूकार पैसे देते ही हैं? हाँ, वे देते हैं, पर वह दान नहीं है, समर्पण नहीं है, वह सौदा है। हम इतना दें, तो उसमें से इतना लेना है। यह लेन देन तो दुनिया में चल ही रही है। परन्तु दान में केवल समर्पण की बात है। इस पर कोई पूछेगा : "तो क्या हमें कुछ भी वापस नहीं मिलेगा?" नहीं, आपको वापस जरूर मिलेगा, पर वह समाज की तरफ से प्रसाद के रूप में। समाज की तरफ से सबका यथाशक्ति संरक्षण होगा। हमें इतना वापस मिलना चाहिए, यों सोचकर हम नहीं देते—निरपेक्ष बुद्धि से गंगा को समर्पण कर देते हैं, तो ग्रामदान पूरा हो जाता है। विद्यादान से ग्रामदान का एक हिस्सा पूरा होता है।

फिर भी आप कोई ऐसा शख्स खोज निकालेंगे, जिसके पास न जमीन है, न संपत्ति, न बुद्धि है, न श्रम शक्ति। बीमार होकर अस्पताल में पड़ा है। पूछेंगे, वह क्या देगा? उसीकी सेवा में दूसरों को बहुत कुछ देना पड़ता है। लेकिन उसके पास भी देने की चीज है। हमें अपने अंतर की परीक्षा करनी चाहिए कि क्या मेरे पास कोई चीज है, जिसे मैं दे सकता हूँ और क्या मैं उसे दे रहा हूँ। उस बीमार के पास भी देने की कोई चीज है। वह बूढ़ा है, उसका लड़का उससे मिलने आया। बूढ़े ने लड़के की ओर बहुत प्यार से देखा। उसकी आँखों से धारा बहने लगी। उसने अपने बेटे को प्रेम दिया। उसके पास देने की कोई चीज नहीं थी। परन्तु जहाँ उसने अपने बेटे को देखा, उसका प्रेम हृदय में रुक नहीं सका। प्रेम का प्रवाह बाहर ढुलक पड़ा। उसने अपने बेटे को प्रेम का स्नान कराया। वह लड़का चला गया और थोड़ी देर बाद गाँव का दूसरा कोई लड़का आया। बूढ़े ने उसकी ओर भी देखा, लेकिन सिर्फ देखा ही और

कुछ नहीं हुआ। जो प्रेम वह अपने लड़के को दे सकता है, क्या वह दूसरों को नहीं दे सकता ? परन्तु मान लीजिये, उसे ग्रामदान का विचार जँचा कि मुझे भी समाज को कुछ न कुछ देना है। फिर उसे जिस किसी मनुष्य का दर्शन होगा, उसका हृदय भर आयेगा और वह उसे खून प्रेम देगा। तो, उसने बहुत बड़ी चीज दी। ऐसे मनुष्य के दर्शन के लिए सब लोग लालायित रहेंगे। वे लोग कहेंगे कि यह सत पुरुष है, जिसे हरएक के दर्शन में भगवान् का ही दर्शन होता है, यह सबको प्रेम ही प्रेम देता है। आज भी हरएक के पास प्रेम पड़ा है। परन्तु वह अपने अपने परिवार के लिए सीमित रखा है। वह सबके लिए खुला नहीं है।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि इस दुनिया में 'इल्लदवरु' कोई नहीं है। अपने पास देने की जो चीज पड़ी है, उसे हम दिल खोलकर दें, यह दान विचार है। इसलिए ऐसी गलतफहमी में मत रहिये कि इसमें चंद लोगों का काम देना है और चन्द लोगों का काम लेना है। जो धर्म होता है, वह सबको लागू होता है। सत्य बोलना, करुणा, प्रेम आदि धर्म है। वह सबको लागू है। अगर यह दानविचार चद लोगों को लागू होता है और चद को लागू न होता, तो समझना चाहिए कि वह धर्म विचार ही नहीं है।

निष्काम सेवक की दुर्लभता

इन दिनों जिसे हम निष्काम सेवा कहते हैं, वह चीज बड़ी दुर्लभ हो गयी है। हम आज यही ढूँढ रहे हैं कि निष्काम सेवक कहाँ हैं ? इन दिनों सार्वजनिक कार्य के नाम से कुछ कार्य चलता है, परन्तु उसमें मत्सर, सत्ता का लोभ, कीर्ति की अभिलाषा आदि होती है। आज लोगों को बहुत सारी सेवा सत्ता के जरिये करने का लोभ हो गया है। म्युनिसिपैलिटी, जिला बोर्ड, असेम्बली, सरकार आदि सब सेवा के साधन हैं। लोग उसमें जाना चाहते हैं। वहाँ स्पर्धा चलती है। एक स्थान के लिए दस व्यक्ति खड़े हो जाते हैं। अगर सेवा की भावना हो, तो एक स्थान के लिए दस खड़े हों, यह अच्छा ही माना जायगा। परन्तु उसमें केवल सेवा की भावना नहीं होती, सत्ता की भावना भी होती है। जहाँ हम जाते

हैं, यही देखते हैं कि मनुष्य चाहता है कि हम सत्ता के जरिये समाज में अपना कुछ न कुछ चलायें; याने हम सेवा करना नहीं चाहते, बल्कि अपना स्थान जमाना चाहते हैं। ऐसी सेवा से कोई उल्लेख्य काम नहीं बनता। सेवा विशुद्ध सेवा के लिए होनी चाहिए।

विराजपेट (मैसूर)
६-६-'५७

विश्व-स्वराज्य, ग्राम-स्वराज्य, आत्मस्वराज्य : ३० :

'वन वर्ल्ड' का स्वप्न

कुर्ग की जनता का उत्साह देखकर ही हमने कहा था कि यहाँ सर्वोदय-राज्य होना चाहिए। वह हो सकता है। आप जानते हैं कि धीरे धीरे दुनिया के देश एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं। अब वह दिन दूर नहीं, जब कि 'वन वर्ल्ड' (एक विश्व) का स्वप्न साकार हो सकता है। विज्ञान ने ऐसे हिंसक शस्त्र बनाये हैं कि उनसे मनुष्य जाति का खातमा ही होने का भय पैदा हुआ है। जहाँ हिंसा शक्ति ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया, वहाँ अब शक्ति अहिंसा की शरण आ जायगी। वह दिन बहुत दूर है, ऐसा हम नहीं समझते। तब हर देश का नागरिक कुल दुनिया का नागरिक होगा। जैसे आज कुर्ग का नागरिक कन्नड़ प्रदेश का और भारत देश का नागरिक है, वैसे ही वह दुनिया का भी नागरिक होगा। आज कुर्ग का मनुष्य सारे भारत में कहीं भी बे रोक टोक आ जा सकता है, काम कर सकता है। हम वह दिन लाना चाहते हैं, जब किसी भी देश का नागरिक दुनिया में कहीं भी बे रोक टोक जा सके, कहीं भी प्रेम से सेवा कर सके, अपना धंधा कर सके। किसी भी देश के नागरिक को दुनिया का नागरिकत्व हासिल होगा। उसके पूरे हक हासिल होंगे। वह दिन जल्दी आ रहा है। ऐसा स्पष्ट दर्शन हमें हो रहा है।

ग्राम-स्वराज्य बनाम विश्व-स्वराज्य

सवाल यह है कि कुल दुनिया शांतिमय बनेगी, तो राज्य कारोबार की सूरत क्या होगी ? क्या जैसे आज सारे भारत का कारोबार देहली से चलता है, वैसे सारी दुनिया का कारोबार किसी केन्द्र से चलेगा ? ऐसा नहीं होगा। आज देहली म जो चलता है, वह भी नहीं रहेगा। देहली जैसे किसी केन्द्र में दुनिया के चुने नीतिशास्त्रसम्पन्न, राग-द्वेषरहित ज्ञानी होंगे, जो लोगों को सलाह देंगे। इसीलिए लोग उसे मानेंगे। उस सलाह में आवश्यकता के अनुसार फर्क करने का अधिकार लोगों को रहेगा। जगह जगह का कारोबार लोग ही देखेंगे। इसका नाम है विश्व स्वराज्य, वही ग्राम स्वराज्य है। एक एक ग्राम में स्वराज्य होगा और कुल दुनिया में विश्व स्वराज्य होगा। सूर्य का उदय होता है, तो उसकी किरणें कुल देश में, कुल गाँवों मे, कुल घरों में जाती हैं। ऐसा नहीं होता कि देहली में सूर्योदय हुआ, यहाँ गाँवों में नहीं हुआ और हमें श्रद्धा से मान लेना पड़ा कि वहाँ सूर्योदय हुआ। क्या गाँव में अंधकार हो, तो लोग कबूल करेंगे कि सूर्योदय हुआ ? जब सूर्य की किरणें ब्राह्मण-हरिजन, गरीब श्रीमान् आदि हम सबके घरों में प्रवेश करेंगी, तभी हम मानेंगे कि सूर्योदय हुआ है। इसी तरह विश्व-स्वराज्य हुआ, इस बात को हर मनुष्य तभी कबूल करेगा, जब गाँव गाँव में स्वराज्य होगा। गाँव गाँव में स्वराज्य हुआ, यह तभी कबूल करेंगे, जब आत्मस्वराज्य होगा। आत्मस्वराज्य म हर बच्चा यह समझेगा कि मैं स्वतन्त्र हूँ, सारी दुनिया की सेवा करने के लिए मुक्त हूँ, मेरे अधिकारों और मेरे कर्तव्यों पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता, मैं किसीसे नहीं डरता और न किसीको डराता हूँ।

आत्मज्ञान का असर

शेर के बच्चे की एक प्रसिद्ध कहानी है। उसे गाँववाले पकड़कर लाये। वे उसे भेड़ों के साथ जंगल ले जाते थे और उन्हींके साथ खिलाते। एक दफा जंगल में एक शेर ने भेड़ों पर हमला कर एक भेड़ को पकड़ लिया। शेर के बच्चे ने वह सारा नाटक देखा कि एक प्राणी आया और हमारे भाइयों में से एक भाई को ले गया। फिर उसने अपने शरीर की तरफ देखा और हमला करनेवाले के

शरीर की तरफ देखा, तो उसे आत्मज्ञान हुआ कि मैं भेड़ नहीं, शेर हूँ। उसने सोचा कि मैं भी प्रयोग करके देखूँ कि भेड़ को उठा सकता हूँ या नहीं। उसने फौरन हमला किया, तो भेड़ें भाग गयीं। उसे आत्मज्ञान हुआ, अपनी शक्ति का भान हुआ, तो वह जंगल में चला गया।

आज हमारे देहातों की हालत यह है कि वे शेर हैं, परन्तु भेड़ बने हैं। पहले उनको अपना गड़ेरिया चुनने का अधिकार हासिल नहीं था। कोई राजा बनता था, तो भेड़ों को कबूल करना पड़ता था कि वह राजा है और हम प्रजा हैं। फिर दो-चार गड़ेरिये तैयार हुए और कहने लगे कि मैं गड़ेरिया बनूँगा। जब वे लड़ते लड़ते थक गये, तो उन्होंने तय किया कि अब लड़ना बंद करके भेड़ों से ही पूछना चाहिए कि तुम्हें कौन सा गड़ेरिया चाहिए। इस तरह भेड़ों को अपना गड़ेरिया चुनने का हक दिया गया। तब से ये भेड़ें पाँच पाँच साल के लिए अपना गड़ेरिया चुनती हैं। गड़ेरिया चुनने का अधिकार मिला, पर भेड़ें तो भेड़ें ही रहीं। जब तक आप प्रतिनिधियों के जरिये अपना कारोबार चलायेंगे, तब तक भेड़ ही रहेंगे। इसलिए ग्राम-स्वराज्य का मतलब यह है कि आप समझें कि आप भेड़ नहीं है। हम अपना कारोबार स्वयं चला सकते हैं, इस तरह का आत्म विश्वास हर गाँव में आना चाहिए, हर बच्चे में आना चाहिए। तभी आत्मराज्य होगा, ग्राम राज्य होगा, विश्व राज्य होगा और तीनों में एक समान धारा प्रवाहित होगी। आत्मराज्य के खिलाफ ग्रामराज्य नहीं और उन दोनों के खिलाफ विश्वराज्य नहीं। इस तरह आत्मराज्य, ग्रामराज्य, विश्वराज्य की अखण्ड धारा बहेगी।

सर्वोदय-राज्य की व्याख्या

लोगों को आपस में लड़ने की आदत है, तो इससे 'ग्राम स्वावलंबन' के बदले 'ग्राम झगड़ा' चलेगा। गाँव-गाँव में झगड़ा होने से कोर्ट का, वकीलों का राज्य चलेगा। फिर न होगा आत्मराज्य, न ग्रामराज्य और न विश्वराज्य। ग्रामराज्य, सर्वोदय राज्य की शर्त यही है कि लोग सब मिलकर रहें, गाँव को परिवार समझें।

आज एक गाँव के भाई हमसे मिलने आये थे। वे ग्रामदान के बारे में सोच रहे हैं। हमने अपने मन में सोचा कि ये लोग क्या सोचते होंगे? क्या आज के समाज में कोई निर्भयता है, रक्षण है? फिर उसे बदलने में डर क्यों मालूम हो? एक सुन्दर बिछौना है, परन्तु उस पर साँप पड़ा है, यह मालूम होने पर भी क्या उसका मोह होगा? हमें यह भान होना चाहिए कि आज के समाज में जो ऊँच-नीच आदि भेद हैं, वे सारे साँप हैं, उनसे दुनिया पर सेना की ही सत्ता चल सकती है। और जब तक हम सेना की सत्ता मान्य करेंगे, तब तक दुनिया मे लड़ाई खतम नहीं होगी। इसलिए सर्वोदय-राज्य की व्याख्या हम इस प्रकार करेंगे कि गाँवों के झगड़े बाहर के कोर्ट में न जायँ। जब लोग झगड़ा नहीं करेंगे, तो वकील बेकार बनकर बाबा के पास जमीन माँगने आयेंगे। वे किसान बनेंगे, तब सर्वोदय राज्य होगा। गाँव गाँव के लोग यह नियम कर सकते हैं कि हमारे गाँव का झगड़ा बाहर नहीं जायगा। लेकिन सिर्फ ऐसा नियम करने से काम नहीं बनेगा। उसके लिए गाँव की रचना ही ऐसी करनी होगी कि गाँव में झगड़े न हों।

जब हमसे पूछा जाता है कि क्या ग्रामराज्य के लिए ग्रामदान करना ही पड़ेगा, तो हम जवाब देते हैं कि तुम ग्रामदान से डरते क्यों हो? हमें ग्रामदान से मतलब नहीं है, हम तो ग्राम स्वराज्य चाहते हैं। तुम अगर यह जिम्मेवारी उठाओ कि अपने गाँव के हर मनुष्य को पूरा खाना मिलेगा, काम और उत्तम शिक्षण मिलेगा, तो हो गया ग्रामदान! उसके लिए जमीन की मालकियत मिटानी पड़ती है। यह तो बुनियाद है। मकान ग्राम-मंदिर है। इसमें सारे गाँव का एक परिवार बनाकर लोग प्रेम से रहते हैं, सर्वसम्मति से गाँव का कारोबार चलाते हैं।

सर्वोदय-राज्य में ऊँच-नीच का भेद नहीं रहेगा। पाँच अँगुलियों के जैसी समता रहेगी। पाँचों अँगुलियाँ समान हैं, पर बिलकुल समान नहीं। उनमे थोड़ी सी विषमता है, बहुत ज्यादा नहीं। हर अँगुली की अलग अलग ताकत है और पाँचो सहयोग से काम करती हैं। इसे हम विवेकयुक्त समता या

तुल्यता कहते हैं। आपके गाँवों में हरएक की अलग अलग शक्ति विकसित होनी चाहिए और सबका सहयोग होना चाहिए।

गाँव छोटी इकाई और देश बड़ी

गाँव में अच्छे सेनापति, अच्छे प्रधानमन्त्री, दार्शनिक, कवि, साहित्यिक, चित्रकार, व्यापारी, वैद्य, संगीतज्ञ सब निकलने चाहिए। लेकिन आज हिंदुस्तान की हालत यह है कि पंडित नेहरू अगर प्रधानमन्त्री पद से हटने की बात करते हैं, तो लोग सोचते हैं कि फिर अपना क्या होगा? लेकिन इस तरह क्यों रोते हो? आखिर पंडित नेहरू करते क्या हैं? वे कारोबार चलाते हैं। कारोबार चलाना तो एक मामूली बात होनी चाहिए और गाँव गाँव में कारोबार चलानेवाले निकलने चाहिए। देश में वही करना पड़ता है, जो गाँव में करना पड़ता है। गाँव में सफाई करनी पड़ती है, तो देश में सेनीटेशन की व्यवस्था करनी पड़ती है। गाँव में तालीम, रक्षण, धंधे, अच्छे रास्ते, अच्छी फसल, आरोग्य आदि सब करना पड़ता है। एक गाँव का दूसरे गाँव के साथ सम्बन्ध आता है। वैसे ही एक देश का दूसरे देश के साथ आता है। जितना देश में चाहिए, सारा गाँव में चाहिए। एक छोटी इकाई है और दूसरी बड़ी। फिर कारोबार चलानेवालों की कमी क्यों होनी चाहिए? एक जाय तो पचासों आने चाहिए। परन्तु आज हमें कारोबार चलाने की आदत नहीं। हम अपने को अनाथ समझते हैं। इसलिए सारी जिम्मेदारी योजना-आयोग पर सौंप देते हैं। आज जिला नियोजन नहीं, राष्ट्रीय नियोजन है। माना जाता है कि सोचने का काम दिल्लीवालों का है, हमारा नहीं। होना तो यह चाहिए कि गाँव का कारोबार गाँव में चले।

• स्कूल के लड़के जानते हैं कि जो सिद्धान्त एक छोटे त्रिकोण में सिद्ध हुआ, उसे बड़े त्रिकोण में फिर से सिद्ध नहीं करना पड़ता। आप अपने गाँव में कारोबार चलाने का शास्त्र सीखेंगे, तो वह देश के काम में आयेगा। मान लो कि किसी गाँव का कारोबार बहुत अच्छा चलता है। वहाँ हिंदू, मुसलमान, ईसाई सब हैं। गाँववालों ने तीनों की तालीम की अच्छी योजना बनायी है, उसे सब लोग बड़े प्रेम से चलाते हैं। उधर दिल्लीवालों के सामने समस्या आयी कि देश

में जो भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग हैं, उन सबके शिक्षण की व्यवस्था कैसे की जाय, तो गाँव के लोग कहेंगे कि हमने अपने गाँव में यह समस्या हल की है। दिल्ली-वाले योजना आयोग का सदस्य उस गाँव में देखने आयेगा कि गाँववालों ने किस तरह योजना बनायी है, फिर वही नमूना देश को लागू किया जा सकेगा। देहली में बहुत झगड़े चलते हैं और कोर्ट में मामले-मुकदमे चलते हैं। किसी गाँव के लोग कहेंगे कि हमने अपने गाँव में ऐसी अच्छी व्यवस्था की है कि पिछले दस सालों में बाहर के कोर्ट में कोई मामला नहीं गया। फिर दिल्लीवाला यहाँ आकर देखेगा कि गाँववालों ने सबको काम और खाना देने की व्यवस्था की है। अगर गाँव का कोई मूरख चोरी करे, तो उसे तीन साल की सजा नहीं, बल्कि तीन एकड़ जमीन की सजा दी जाती है और कहा जाता है कि मेहनत करके खाओ और बाल-बच्चों को खिलाओ। यह आलसी हो, तो उसे खुश्की नहीं; बल्कि अच्छी तरी जमीन दी जाती है, जिससे उसका काम आसान बने। इस तरह आप लोग गाँव में ग्रामराज्य स्थापन करेंगे, तो देश सुखी होगा।

पोन्नमपेट (मैसूर)
११-६-'५७

नमक और चमक

: ३१ :

आज एक वैदिक ब्राह्मण हमारे पास आये थे। उन्होंने कुछ वैदिक मंत्र सुनाये। वेद में कुछ ऐसे मंत्र हैं, जिनमें सबको नमस्कार किया है। उन्हें 'नमक मंत्र' कहते हैं। एक-एक पदार्थ का, एक एक प्राणी का, एक एक मनुष्य का नाम लेकर 'उसे नमस्कार-उसे नमस्कार' ऐसा कहा गया है। यहाँ तक कि चोरों का, खूनियों का, डाकुओं का भी उल्लेख कर उन्हें भी नमस्कार किया गया है। ये नमक मंत्र हम जब-जब सुनते हैं, हमारे दिल पर बहुत असर होता है। परमेश्वर के नाम अनेक हैं। कोई उसे विष्णु कहते हैं, तो कोई राम; कोई कृष्ण कहते हैं, तो कोई हरि। ये नाम उस मंत्र में नहीं लिये गये, बल्कि बढ़ई, बुनकर, किसान जैसे नाम लेकर उन्हें नमस्कार किया गया है। ब्राह्मणों ने

कुछ जातियों को ऐसे वेद-मंत्र बोलने और सुनने का अधिकार नहीं दिया था। बोलने का अधिकार न देना ठीक भी हो सकता है, क्योंकि उसमें उच्चारण का सवाल है। किन्तु सुनने का भी अधिकार नहीं दिया! एक तरफ तो यह हालत है और दूसरी तरफ इन मंत्रों में सब जातिवालों के नाम ले लेकर परमेश्वर-भाव से उन्हें प्रणाम किया है।

फिर दूसरे हैं 'चमक मंत्र'। उन्हें भी हमने आज सुना। उनमें ऋषि भगवान् से एक चीज माँगता है। कहता है : 'गोधूमारच मे, तिलारच मे।'— मुझे गेहूँ चाहिए, तिल चाहिए। बेचारे ऋषि का पेट तो छोटा होगा, लेकिन उसने इतनी चीजें माँगी कि वह सारा बोलने में भी दस मिनट लगते हैं। हमें अच्छा रास्ता चाहिए, स्वच्छ पानी चाहिए, सुन्दर गायें चाहिए, शौर्य, धैर्य, प्रेम चाहिए। इस तरह उसने मानसिक गुण और भौतिक वस्तुएँ भी माँगी हैं।

गाँव के लिए क्या चाहिए?

हमने जब वे दो तरह के मन्त्र सुने, तो ग्रामदान क्या है, इस विषय में पूरा प्रकाश दिखाई दिया। ऋषि कहता है कि ग्राम के लिए सब चाहिए, मेरे लिए कुछ नहीं चाहिए। एक जगह उसने स्पष्ट कर दिया है : 'विश्वम् पुष्टम् ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्।' याने हमारे गाँव में सब प्रकार की पुष्टि, आरोग्य रहना चाहिए। इस तरह ऋषि जब कहता है कि मुझे यह चाहिए और वह चाहिए, तो उसका मतलब है कि गाँव के लिए चाहिए। गाँव में कुछ अच्छे लोग होते हैं और कुछ बुरे भी। कुछ उद्योगी होते हैं, तो कुछ आलसी भी। भगवान् की सृष्टि है, इसमें तरह-तरह के रूप हैं—सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। सारा भगवत्-रूप ही है। इसलिए ऋषि सबको नमस्कार करता है। भले-बुरे सभी ईश्वर के रूप हैं। ऐसा हम मानते हैं, तो वे ईश्वरमय हो जाते हैं। एक क्षण में परिवर्तन हो जाता है। दुनिया में कोई ऊँच होते हैं, तो कोई नीच। लेकिन जब हम उन्हें ईश्वर-रूप में देखते हैं, तो ऊँच नीच आदि सब भेद खतम हो जाते हैं। जहाँ अंधकार होता है, वहाँ छोटे-बड़े सितारे प्रकट होते हैं। इसकी चमक ज्यादा, उसकी कम, इस तरह कहा जाता है। परंतु जहाँ

सूर्यनारायण प्रकट होते हैं, प्रकाश आता है, वहाँ वे छोटे बड़े सितारे भी खतम हो जाते हैं। सब प्रकाशमय हो जाते हैं। न कोई कम रहता है, न कोई ज्यादा। ईश्वर भावना, भक्ति-भावना का यही परिणाम होता है।

ग्रामदान की युक्ति

आज एक मनुष्य को दूसरे के लिए शका, भय, अप्रीति होती है। किसीके लिए विशेष प्रीति या आसक्ति, तो किसीके लिए द्वेष होता है। इसका क्या किया जाय? क्या हम एक एक मनुष्य को समझाते चलें? क्या एक एक पर कोर्ट में मुकदमे चलायें और उसका फैसला देते चलें? हमारे पास काफी लोग आते हैं और पारस्परिक द्वेष की कहानी सुनाते हैं। तब हम क्या करते हैं? कुछ भी नहीं सुनते, उस ओर ध्यान ही नहीं देते। हम उनसे कहते हैं कि तुमने यह सब स्वप्न में देखा है। जाग्रति में इसकी कोई कीमत नहीं है। जहाँ जाग्रति रूप ईश्वर-भक्ति प्रकट होती है, वहाँ ये सारे छोटे छोटे द्वेष, शका, भय आदि खतम हो जाते हैं। ईश्वर भक्ति की शक्ति हमारे ग्रामीणों में ज्यादा है, शहर वालों में कम। इसलिए हम आशा करते हैं कि गाँव गाँव के लोग एक हो सकेंगे। विश्वास से विश्वास बढ़ता है, प्रेम से प्रेम बढ़ता है, शंका से शका बढ़ती है, भय से भय बढ़ता है। हम विश्वास रखें, तो सामनेवाला विश्वास रखने के लिए मजबूर हो जाता है। ग्रामदान की यही युक्ति है।

ग्राम-पंचायत और ग्राम-सभा में फर्क

एक भाई ने पूछा कि आज जो ग्राम पंचायत बनती है, उसमें और ग्रामदान के बाद बननेवाली ग्राम सभा में क्या फर्क है? जितना रावण और राम में फर्क है, उतना इन दोनों में है। आज बहुमत से पंचायत का चुनाव होता है। इससे बहुमत और अल्पमतवालों में द्वेष शुरू होता है। उसमें वे ही मुखिया चुने जाते हैं, जिनके पास कुछ जमीन या सम्पत्ति है, जिन्हें कुछ तालीम मिली है, अथवा जिनका सरकार से कुछ सम्बन्ध है या अधिकारियों पर कुछ वजन है। इस तरह सारी विषमता कायम रखते हुए जिनके हाथ में पहले से ही बहुत सत्ता है, उनके हाथों और सत्ता दी जाती है। ऐसी पंचायतें गाँव गाँव में

बनती हैं, तो बहुत पंचायत (झगड़ा) हो जाती है। आज की पंचायतें विकेंद्रित शोषण योजना है। कोई एक सुल्तान है। वह शासन करता है, सबको तकलीफ देता है, सबका शोषण करता है। एक स्थान में रहकर वह अच्छी तरह शोषण नहीं कर सकता, इसलिए वह गाँव-गाँव में पचायत बनाता है। पंचायत का अध्यक्ष याने गाँव-गाँव में सुलतान। इस तरह की योजना आजकल बनती है। इसलिए लोगों को शंका होती है। इस गाँव के एम० एल० ए० भाई कहते हैं कि लोगों को शंका आती है कि यह पढ़ा लिखा है, इसका सरकार के साथ संबंध है, तो इसका अचानक परिवर्तन कैसे हो रहा है ? यह अचानक उदार कैसे बन रहा है ? दाल में कुछ काला अवश्य होगा। लेकिन शंका से शंका बढ़ती है। इसलिए जरा विश्वास भी रखना चाहिए और समझना चाहिए कि ग्रामदान के बाद जो ग्राम पंचायतें बनेंगी, वे दूसरे ही ढंग की होंगी। गाँव के १८ साल के ऊपर के सब स्त्री-पुरुष ग्राम सभा के सदस्य होंगे। जिनके हाथों सब सत्ता रहेगी, वे सिर्फ कारोबार चलाने के लिए, अपने में से ही १०-५ लोगों को सर्वानुमति से चुनेंगे।

ग्रामदान के बाद क्या हो ?

ग्रामदान के बाद प्रथम क्या काम किया जायगा, यह उस-उस गाँव की परिस्थिति पर निर्भर रहेगा। गाँव के लोग सोचें कि गाँव की प्रथम आवश्यकता क्या है। मैं क्या करूँगा, यह मैं आपको बताता हूँ। मैं सबसे पहले गाँव में एक सामूहिक दूकान बनाऊँगा। उसमें हर मनुष्य के नाम से शेयर होगा। जो पैसा नहीं दे सकते, वे श्रम देंगे। जिनके पास जितना है, उसके मुताबिक कोई कम देगा, तो कोई ज्यादा; पर अधिकार सबका समान होगा। जैसे आजकल चलता है कि जिसके पास शेयर हैं, उसका पाँचगुना हक वहाँ नहीं रहेगा। यह सर्वोदय की पद्धति नहीं है। घर में हर कोई अलग-अलग कमाते हैं, परन्तु यह नहीं होता कि जिसने जितना कमाया, उसके अनुसार वह खायेगा। उसी तरह गाँव में जिसकी जितनी शक्ति होगी, उसके अनुसार वह काम करेगा। अगर आज गाँव में कोई खानगी

दूकान चलती है, तो दूकानवाले से प्रेम से कहा जायगा कि तू अब सामूहिक दूकान गाँव की तरफ से चला। उसी दूकान की तरफ से बाहर का माल लाया जायगा और गाँव का माल बाहर बेचा जायगा। फिर ६ महीने के बाद दूकान के हिसाब पर चर्चा करने के लिए ग्राम-सभा बुलायी जायगी। उसमें दूकानवाला कहेगा कि अपने गाँव में बाहर से इतना तेल आता है, तो क्या गाँव में जो मूँगफली है, उससे इतना तेल अपने गाँव में ही पैदा नहीं किया जा सकता? गाँववाले मंजूर करेंगे कि गाँव में तेलघानी चलायी जाय और वही तेल दूकान में रखा जाय। इस तरह बाहर से आनेवाली एक-एक चीज गाँव में ही बनाने की कोशिश की जायगी। गाँव में दो साल का अनाज रहना चाहिए। नहीं तो लड़ाई की सूरत मे गाँव को फाका करना पड़ेगा।

गाँव का कपड़ा भी गाँव में ही बनाना होगा, जिससे कपड़ा खरीदने के लिए अनाज न बेचना पड़े। बहनें चूड़ियाँ पहनती हैं, जो बाहर से खरीदी जाती हैं। उसका यह उपाय हो सकता है कि वे कातें और सूत की माला बनाकर जनेऊ की तरह वेद-मंत्रों से अभिमंत्रित करके पहनें। इससे यहाँ के ब्राह्मणों को मंत्र सिखाने का काम मिल जायगा और बहनें भी रोज मंत्र बोलेंगी। यह फूटनेवाली काँच की चूड़ी जो गाँव में बनती नहीं, शहर की फैक्टरी में बनती है, तब क्यों उसे पहना जाय? यह मानना गलत है कि काँच की चूड़ी सौभाग्य-लक्षण है। वह टूटी, तो अपना नसीब फूटा! सोचने की बात है कि क्या सौभाग्य का लक्षण खरीदा जायगा? इस तरह आप सब लोग मिलकर गाँव की उन्नति के बारे में सोच सकेंगे। ग्रामदान के बाद सारी जमीन एक बनाने की जरूरत नहीं है। गाँववाले अपनी इच्छा के अनुसार अलग-अलग प्रयोग करेंगे और देखेंगे कि फसल कैसे बढ़ती है। मुख्य वस्तु यही है कि आपस का प्रेम न टूटे। इसके लिए 'नमक' और 'चमक' मंत्र बहुत जरूरी हैं।

मंत्रोपदेश

गाँव का कोई भी मनुष्य सामने आये, तो उसे नमस्कार करना चाहिए, ऐसा हमारे पूर्वजों ने सिखाया। आज हम यंत्रवत् नमस्कार करते हैं। इसके

बदले ये सारे नारायण मूर्ति हैं, यह समझकर नमस्कार करना चाहिए और सबके लिए प्रेम के शब्द का ही उच्चारण करना चाहिए। यह हो गया 'नमक'।

'चमक' का मतलब है कि गाँव के लिए सब चीजें चाहिए। गाँव की लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति बढ़ानी है। गाँव को संपन्न बनाना है। उसमें भी पहले कौन सी चीजें चाहिए, यह तय कर यथाक्रम एक-एक चीज बढ़ानी चाहिए। दूध बढ़ने से पहले फोनोग्राफ लाना उचित नहीं है। सारे गाँव का एक राज्य होना चाहिए, जिसमें रक्षण, शिक्षण, स्वास्थ्य, पोषण, सफाई आदि सबकी योजना बने। गाँव में कोई पंडित नेहरू हों, कोई राजेन्द्रबाबू, तो कोई पंतजी। सारे गाँववाले मिल-जुलकर काम करें, तो कितना आनन्द हो!

आप ब्राह्मण से पूछिये कि तुम्हारे 'नमक' और 'चमक' में क्या है। अगर वह कहे कि हरिजनों को और दूसरों को वेद सुनने का अधिकार नहीं है, तो उससे कहिये कि तुम्हारा ब्राह्मणत्व हम नहीं मानते। बाबा ने हमें सिखाया है कि दुष्ट को, चोर को, हरिजन सबको नमस्कार करना चाहिए। ऐसा ही नमस्कार नहीं, उन्हें सद्-रूप, भगवत् रूप समझकर नमस्कार करना चाहिए। क्या ऐसे रुद्र-रूप को वेद सुनने का अधिकार नहीं है? नहीं तो फिर रुद्र का तुम पर कोप होगा, इसलिए कृपा करके ऐसे भेदभाव मत रखो। सबको आदर दो, सबका सम्मान करो। आपस में शरीर के अवयवों की तरह प्रेम रखो, तब गाँव सुखी होगा।

कलहल्ली (केरल)
१२-९-'५७

ऐतिहासिक संकल्प : ३२ :

जिस काम को अभी तक हम करते आये, उसमें यहाँ के सम्मेलन ने (सर्वदलीय नेता-सम्मेलन) एक नया अध्याय शुरू कर दिया है। मैं मानता हूँ कि यह मकान एक ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु बन जायगी। यहाँ बहुत बड़ा संकल्प हुआ है। इसके साथ जिम्मेवारी भी आती है। 'जिम्मेवारी' शब्द से

डरने की कोई जरूरत नहीं। यह तो इतनी मीठी चीज है कि जैसे किसीसे कहा जाय कि 'तुझ पर लड्डू खाने की जिम्मेवारी है'। गाँव गाँव का परिवार बने, आज जो भेदभाव हैं, वे सब टूट जायँ, सब लोग मिलकर काम करें, ग्राम ग्राम में ग्राम स्वराज्य बने—यह सारा इतना सुन्दर विचार है कि इसके लिए हमें लगता है कि हमारी आयु बढ़ गयी है, दुगुनी हो गयी है। गांधीजी ने कहा था कि १२५ साल की उम्र याने पूर्ण आयुष्य है। अभी हम ६२ साल के हो चुके हैं। याने हमारी आधी उम्र हुई है। अब बाकी के ६३ साल कैसे बीतेंगे? जिस तरह का प्रस्ताव अभी यहाँ हुआ है, उसके अनुसार काम करेंगे, तो आप और हम पूरा जीवन जीयेंगे।

हनुमान् का काम

हमने कर्नाटक प्रवेश के समय मुख्य रूप से हनुमान् का नाम लिया। यहाँ हनुमान् कार्य कर रहे हैं। हम सबका विश्वास है कि वे चिरजीवी हैं, मरे नहीं। रामजी निज धाम को चले गये, तो हमारे लिए हनुमान् को यहाँ छोड़ गये। वे इस कर्नाटक प्रदेश में विशेष आसक्ति रखकर काम कर रहे हैं। हनुमान् किसी एक प्रदेश के नहीं, फिर भी उनका वासनामय देह कहाँ काम कर रहा है, इसे मैं सप्रयोग सिद्ध कर सकता हूँ। आप जानते हैं कि हिंदुस्तान में तुलसीदास, कंबन आदि महान् कवियों ने पहले रामायण लिखी, परंतु कन्नड़ ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें अर्वाचीन काल में रामायण लिखी गयी है। इस जमाने में कवि छोटी छोटी कविताएँ लिखते हैं, उनमें महाकाव्य लिखने की प्रवृत्ति नहीं दीखती। परन्तु आपके इस कर्नाटक में पुट्टप्पा ने ऐसी अद्भुत रचना की है कि आप सच गर्व कर सकते हैं। हमने पुट्टप्पा से विनोद में कहा कि आपने जमाने के खिलाफ काम कर डाला। यह महाकाव्य का जमाना नहीं, छिटपुट कविताओं का जमाना है। वे बोले : "हाँ, आपकी बात दुनिया के लिए सही है, पर वह अपने देश को लागू नहीं है। इस जमाने में हिन्दुस्तान में महाकाव्य के लायक काम हुए हैं।" हम भी सोचते हैं, तो लगता है कि भारत में

गत सौ वर्षों में जो महापुरुषों का दर्शन हुआ, वह अद्भुत ही है। इतने छोटे समय में इतने ऊँचे दर्जे के महापुरुष भारत मे हुए, जितने अभी तक नहीं हुए थे। रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री अरविन्द घोष, महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक—ये सारे क्या छोटे नाम हैं? आज का समय महाकाव्य के लायक है। इस बात का भान यहाँ पुट्टप्पा को हुआ। दूसरी जगहों पर तो छिटपुट काव्य ही लिखे जा रहे है। महाकाव्य लिखने के लिए भी पुट्टप्पा ने कौन-सा काव्य उठाया? रामायण। हम समझते हैं कि यह हनुमान् की प्रेरणा है। वह इस प्रदेश मे काम कर रहा है और उसीने इस मकान में यह काम करवाया है।

मैंने अपनी कोई संस्था नहीं बनायी। मैं किसी राजनैतिक या गैर राजनीतिक संस्था का सदस्य नहीं हूँ। यह मेरा निषेधक वर्णन हुआ, क्योंकि मै किसी संस्था का सदस्य नहीं हूँ, इसलिए सब संस्थाएँ मेरी हैं। जितने लोग हैं, वे सब मेरे कार्यकर्ता हैं। आप लोग जो सुन रहे हैं, मेरे कार्यकर्ता हैं। आप कमर कसिये और हनुमान् की वानर सेना में दाखिल हो जाइये। फिर पुट्टप्पा को नयी रामायण लिखने की जरूरत पड़ेगी। अभी तो उन्होंने पुरानी कथा लेकर रामायण लिखी। लेकिन नये पराक्रम की गाथा लिखने के लिए आप उन्हें प्रेरित कर सकते हैं।

विश्व-मानव का निर्माण आवश्यक

हमें नया मानव बनाना है, जिसे ऋग्वेद ने 'विश्व मानुष' नाम दिया है। आज हमारे सामने बहुत छोटे छोटे मानव खड़े हैं। कोई जातिवाले, कोई भाषावाले, कोई प्रांतवाले, कोई पथवाले, कोई देशवाले, कोई धर्मवाले हैं। हिंदुस्तान के कुल अखबारों मे पाकिस्तान सरकार की निंदा आयेगी। पाकिस्तान के कुल अखबारों में हिंदुस्तान की निंदा आयेगी। रूस के कुल अखबारों में अमेरिका की निंदा आयेगी और अमेरिका के कुल अखबारों में रूस की निंदा आयेगी। यानी देशाभिमान भी तोड़नेवाली चीज बन गयी है, जोड़नेवाली नहीं। केरल मे घूमते समय प्रार्थना में ईश्वर का कौन सा नाम लिया जाय, इसमें हमें बड़ी

मुश्किल मालूम होती थी। राम का नाम लें, तो ईसाई और मुसलमानों को पसंद नहीं आता और अल्लाह का नाम लें, तो हिंदू और ईसाइयों को पसंद नहीं आता। दूसरे तीसरे कामों में तो हम इकट्ठा हो सकते हैं, पर भगवान् का नाम लेने में इकट्ठा नहीं हो सकते। इसमें तो मैं नास्तिकों को पसंद करता हूँ। क्योंकि उनका एक प्लेटफार्म बन सकता है, जहाँ कुल नास्तिक इकट्ठा हो सकते हैं। यह परमेश्वर तोड़नेवाला बना है! क्या यह कोई ईश्वर का कार्य है कि अपनी संतानों में विभेद करे? हमने धर्म के नाम से भी हृदय को संकुचित बना दिया है। जाति, भाषा, प्रांत, पंथ, धर्म—ये सारे हमें तोड़नेवाले बन गये हैं। इन सबको अब बदलना है और विश्व मानुष का निर्माण करना है।

हम समझते हैं कि इसकी नींव इस मकान में डाली गयी है। सब बड़े नेता एक जगह खड़े हो जाते हैं, एकत्र विचार और संकल्प करते हैं, नैतिक, अहिंसक तरीकों की प्रशंसा करते हैं और उसका ग्रहण करते हैं—सर्वोदयवाले, पी० एस० पी० वाले, कांग्रेसवाले और कम्युनिस्ट सारे एकत्र होकर एक बात बोलते हैं—यह कोई छोटी बात है? उन्होंने जो पत्रक निकाला है, उसमें ग्रामदान में नैतिक उन्नति के साथ साथ भौतिक उन्नति का माद्दा है, इस बात का समर्थन किया है। हम उसे बहुत महत्त्व देते हैं। इससे आपको और हमें नयी चेतना मिलनी चाहिए।

एलवाल (मैसूर)
२२-६-'५७

ग्रामदान : अहिंसात्मक और सहयोगी पद्धति : ३३ :

द्विविध आशीर्वाद

यहाँ जो ग्रामदान परिषद् हुई, उसमें अनेक विचारों को माननेवाले नेता आये थे। उन्होंने दो दिन चर्चा की और परिणामस्वरूप देश को एक संहिता दी। उस संहिता में दो शब्द हैं, जो हमारे लिए द्विविध आशीर्वाद हैं। उसमें लिखा है कि विनोबा ने सामाजिक मसले हल करने के लिए जो अहिंसात्मक और

सहयोगी पद्धति अपनायी है, वह हमें मान्य है। उन्होंने हमारे काम में दो चीजें देखीं : १. अहिंसात्मक पद्धति, यह प्राचीन आशीर्वाद है और २. सहयोगी पद्धति, यह आधुनिक आशीर्वाद है। इस तरह उन्होंने उस सहिता मे दोनों आशीर्वाद दिये।

अहिंसात्मक पद्धति और सहयोगी पद्धति, ऐसी दो पद्धतियाँ हमारे सर्वोदय के कार्य में जुड़ जाती हैं। अहिंसात्मक पद्धति आत्मा की एकता के अनुभव पर आधार रखती है। वह आध्यात्मिक विचार है। सहयोगी पद्धति विज्ञान पर आधार रखती है। आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों का योग सर्वोदय मे हुआ है। इसकी पहचान नेताओं को हुई। हम समझते हैं कि साढे छह साल तक जो आदोलन चला, उसका सर्वोत्तम फल हमें इस परिषद् में मिला। हम यही कहते थे कि सर्वोदय का विचार आध्यात्मिक और वैज्ञानिक, दोनों मिल्कर बनता है। कुछ लोग समझते थे कि सर्वोदय का अर्थ दकियानूस है। ये लोग मिल से चरखे को अधिक पसन्द करेंगे, चरखे से तकली को और लोहे की तकली से लकड़ी की तकली को अधिक पसद करेंगे। अगर कोई हाथ से सूत काते, तो उसे उससे भी अधिक पसद करेंगे। इसका नाम है, सर्वोदयवादी। इनके लिए वैज्ञानिक शोधों की कोई कीमत नहीं। पर अब नेताओं के ध्यान मे आया है कि इसमें वैज्ञानिक अश है। पडित नेहरू ने कहा है कि ग्रामदान स्थिर रहने आया है, यह एक बात है। दूसरी तरफ से इसकी आध्यात्मिकता तो जाहिर ही है। सर्वोदय की आध्यात्मिकता के विषय मे किसीको कोई शक नहीं था, किंतु वैज्ञानिकता के विषय में सदेह अवश्य था। अब दोनों विषयों में नि सदिग्धता हो गयी और हमें द्विविध आशीर्वाद हासिल हुआ है।

वैज्ञानिकता के अभाव में अहिंसात्मक, आध्यात्मिक योजना कैसे होगी, इसकी हम एक मिसाल देते हैं। चीन में लाओत्से नाम के एक दार्शनिक हो गये। उन्होंने आदर्श ग्राम की एक कल्पना बतायी कि ग्राम में कुल चीजों में स्वावलबन है, बाहर से कोई चीज लाने की जरूरत नहीं, ग्रामवाले सब प्रकार से परितुष्ट हैं। उन्हें इतना ही मालूम है कि नजदीक में कोई गाँव होना चाहिए,

क्योंकि रात में दूर से कुत्तों की आवाज सुनायी देती है। यह है अहिंसात्मक योजना। इसमें वैज्ञानिकता का अभाव है। इस योजना के अनुसार कोई गाँव किसी गाँव की हिंसा नहीं करता। एक गाँववाला दूसरे किसी गाँव में किसीसे मिलने के लिए नहीं जाता। संपर्क की कोई जरूरत ही नहीं। जब हम सर्वोदय की बात करते थे, तो यहाँ के नेता समझते थे कि ये लोग बहुत करके लाओत्से-वाली योजना करना चाहते हैं।

अब आध्यात्मिकता के अभाव में, अहिंसा के अभाव में, वैज्ञानिक योजना के सम्बन्ध में जानने के लिए रूस जाना पड़ेगा। वहाँ सब खेती इकट्ठी कर दी गयी है। किसीसे पूछा नहीं जाता कि तुम राजी हो या नाराज। बैलों से हम कभी भी खेती के बारे में नहीं पूछते, न कभी उनकी सलाह ही लेते हैं। सिर्फ उनसे काम लेते हैं। खेत कितना बड़ा या कितना छोटा होना चाहिए, क्या यह कभी बैलों से पूछा जाता है? खेत में गेहूँ बोना है या चना, यह भी बैल से नहीं पूछा जाता। जो योजना तय हो, उसके अनुसार काम करना बैल का धर्म है। सोचने की बात है कि व्यवस्थापकों ने बैलों का धर्म तो पहचाना, पर अपना धर्म भी कभी पहचाना? वे कहते हैं : "जी हाँ, हमने पहचाना।" "क्या पहचाना?" "यह पहचाना कि बैलों को पेटभर खिलाना चाहिए।" यह है रूसी कम्युनिज्म। हरएक को खाना पीना पूरा मिलना चाहिए। हर कोई योजना नहीं करेगा, योजना सरकारी बनेगी, तदनुसार सबको काम करना पड़ेगा। खाने पीने के बारे में बैलों की कोई शिकायत हम नहीं रहने देंगे। आध्यात्मिकता के अभाव में वैज्ञानिक योजना कैसे बनती है, इसका यह नमूना है।

लाओत्सेवाली योजना और स्टालिनवाली योजना, ये दो योजनाएँ हमने आपके सामने रखीं। सर्वोदय की योजना याने अहिंसात्मक और सहयोगी पद्धति। लाओत्से की योजना को अहिंसात्मक—यह विशेषण लागू होता है और स्टालिन की योजना को सहयोगी योजना कह सकते हैं। हमारे नेताओं ने यह जो संहिता बनायी, उसे अहिंसात्मक और सहयोगी पद्धति का नाम दिया है।

आपका और हमारा यह बहुत बड़ा सौभाग्य है कि मैसूर में नेता आये और उन्होंने हमें दुहरा आशीर्वाद दिया। हमें इन दोनों विशेषणों को बराबर पकड़े रखना है। इनमें से एक भी विशेषण अगर क्षीण हो जायगा, तो हम खतरे में हैं। यह दृष्टि हमें इस सम्मेलन से मिली। यही दृष्टि निरन्तर रखते हुए हमने साढ़े छह साल काम किया और आज भी कर रहे हैं।

मैसूर

२९-९-'५७

सर्वोदय का गहरा अध्ययन आवश्यक : ३४ :

संपत्तिदान का उद्देश्य

संपत्तिदान का मुख्य उद्देश्य संपत्ति की मालकियत का विसर्जन है। आरंभ के तौर पर हम सपत्तिदान में एक अंश लेते हैं। उससे दाता के घर में हमारा प्रवेश हो जाता है। उसके बाद उसके दिल और जीवन में प्रवेश होगा। हमने संपत्तिदान का एक सूत्र बनाया है कि जहाँ हजारों की तादाद में रुपया मिलेगा, वहाँ कुल रुपया कार्यकर्ताओं के लिए खर्च होगा। जहाँ लाखों की तादाद मे मिलेगा, वहाँ कुछ कार्यकर्ताओं के लिए और कुछ साहित्य के लिए और जहाँ करोड़ों की तादाद मे मिलेगा, वहाँ ग्रामदानी गाँवों के लिए खर्च होगा। सपत्तिदान कम मिलेगा, ऐसा खयाल करना बिलकुल गलत है। वह तो इतना मिलेगा कि उसका बोझ हम उठा न सकेंगे। संपत्तिदान के जरिये हमें लोगों को मालकियत के विसर्जन की ओर ले जाना है। संपत्तिदान से कार्यकर्ता-सेना खड़ी करने में कुछ लोगों को यह डर मालूम होता है कि उससे आदाताओं में कुछ हीनता पैदा होगी। लेकिन ऐसा कोई डर नहीं। संपत्तिदाता अत्यन्त नम्रता से सोचेगा कि मैं स्वयं काम नहीं कर सकता, उसीके प्रायश्चित्तस्वरूप दान देता हूँ। ऐसा कहनेवाले कई लोग हैं। इसमें लेनेवाले की इज्जत बढ़ती है और देनेवाले की भी।

सूत्रांजलि में हिस्सा लें

हमने जितनी आसानी से ग्रामदान के लिए करीब करीब सारे देश को राजी कर लिया, उतनी आसानी से खादी के लिए राजी नहीं कर सके। आज ऐसी नौबत आयी है कि ग्रामदान ही बचायेगा, इसलिए ग्रामदान के प्लेटफार्म पर हम बहुत सारे लोगों को इकट्ठा कर सकते हैं। परन्तु खादी ग्रामोद्योगवाला जो विचार है, उसके खिलाफ कुल दुनिया में वाद, विचार और आग्रह खड़ा है। इसलिए हमारा झंडा चरखे का रहेगा। फिर वह चरखा सुधरा हुआ हो या अंबर हो। ये सब तफसील की बातें हैं। विकेन्द्रित उद्योग-योजना ग्राम ग्राम में बने—यह जो हमारा विचार है, उसे दुनिया आसानी से ग्रहण नहीं करेगी। इसीलिए हमम यह महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए कि जब से मनुष्य का हाथ चल सकता है, उस उम्र से हिंदुस्तान के कुल लोग सूत्रांजलि में एक गुंडी दें। इसे हमने गांधीजी की स्मृति माना है। हमने बहुत सोचा कि गांधीजी की स्मृति क्या हो, तो हमें लगा कि इससे बेहतर उनकी स्मृति है नहीं। यह चीज जोरों से चलनी चाहिए। हर १००० व्यक्तियों के पीछे एक-एक गुंडी मिले। यह कोई कठिन बात नहीं। इस काम में हम सबको हिस्सा लेना चाहिए।

स्वाध्याय की आवश्यकता

अब मैं स्वाध्याय के बारे में कुछ कहूँगा। स्वाध्याय का अर्थ केवल यह न समझा जाय कि कुछ पुस्तकों का अध्ययन करना है। पुस्तकों का अध्ययन तो उसमें है ही। परन्तु वह अन्त का, ऊपर का छिल्का है—'स्व' याने हम स्वयं, अध्याय याने अपना अध्ययन, अपने शुद्ध, निर्मल स्वरूप का अध्ययन। यहाँ जो लोग बैठे हैं, उनका स्वरूप क्या है, हमारा भी स्वरूप क्या है? स्वाध्याय में हमें स्वरूप का ही अध्ययन करना है। उसमें नाम स्मरण भी आता है। जिसे जो नाम प्रिय हो, वह उसीका जप करे। इसमें विश्वात्मा के साथ अपना सम्बंध जोड़ने की बात है। बापू बार बार कहते थे कि 'सूत कातते समय हम अपने को दरिद्रनारायण के साथ जोड़ते हैं।' हम विश्वात्मा के साथ जुड़ जायँगे, तो कुल-के कुल भेद समाप्त हो जायँगे। *आज हमारे कार्यकर्ताओं को भास होता है*

कि तरह-तरह के विरोध सामने उपस्थित हैं, पर वे कुल-के-कुल विरोध मुँह नहीं दिखायेंगे, अगर विश्वात्मा के साथ अपना अनुसंधान करने का अभ्यास हमें होगा।

सर्वोदय जैसी हृदय-परिवर्तन का दावा करनेवाली विचार पद्धति जिन्होंने अपना ली, उन लोगों ने पुराने संतों से भी अधिक ज्यादा गहराई मे जाने की प्रतिज्ञा की। इस वाक्य से आपको डरना नहीं चाहिए। हम संतों से एक कदम आगे नहीं जायँगे, तो वह उनके लिए भी अच्छा नहीं है और हमारे लिए भी। संतों ने केवल आत्मशुद्धि का दावा किया। वे समाज की यथाशक्ति स्थूलसेवा करते थे। सेवा में सहजभाव से मानव स्पर्श हो जाता है और उसीसे समाज की शुद्धि होती है, ऐसा वे समझते थे। परन्तु 'समाज-रचना बदलनी है, पूरा-का-पूरा जीवन-परिवर्तन करना है, नया मानव बनाना है, विश्व-मानव बनाना है'—यह तो ब्रह्मदेव की भाषा है, किसी सामान्य प्राणी की नहीं। ऐसी भाषा हम बोलते हैं, तो हमें आध्यात्मिक गहराई में जाना होगा। स्वाध्याय इसके लिए सबसे अच्छा साधन है।

गहराई में जाने की जरूरत

अभी मैंने ग्रामदान सम्मेलन में कहा था कि बुद्ध भगवान् के बाद कारुण्य-पूर्ण हृदय से दीनों, दुःखियों एवं दरिद्रों की आवाज अगर किसीने बुलंद की, तो महामुनि मार्क्स ने की है। उसके साथ मैंने यह भी कहा था कि केवल स्थूल दया की क्रिया करने में कारुण्य नहीं होता। निष्ठुरता की जड़ें बहुत गहराई में होती हैं। इसलिए वहाँ जाकर उन्हें काटने से ही दुःख-निवृत्ति होती है। बुद्ध भगवान् वहाँ तक गये, इसीलिए उनका विचार आज तक काम देता है और निरन्तर काम देनेवाला है। मार्क्स का विचार प्रतिक्रियारूप था, इसलिए वह आज पिछड़ गया है। वह अब आगे काम नहीं देगा। दोनों में करुणा पूर्ण थी। क्रान्ति के लिए कितने ही बुरे काम हुए, कत्लें आदि हुईं; परन्तु वे कुल-के-कुल बुरे काम कारुण्य से प्रेरित थे, यह समझना ही होगा। इसमें उनका बचाव नहीं है। कारुण्य अगर गहराई में नहीं पहुँचेगा, तो बहुत क्रूर कार्य करेगा। हम

भी गहराई में न जाते, आत्मतत्त्व का संशोधन न करते, स्वाध्याय न करते, तो अपनी अपेक्षित कल्पना से उल्टे परिणाम लानेवाले साबित हो सकते हैं। हमें मालकियत का विसर्जन करना है, ग्रामदान करना है। परन्तु उसकी शुद्ध प्रक्रिया शुरू हुई, तो फिर से व्यक्तिगत मालकियत स्थापित करने का काम शुरू करना होगा। व्यक्तिगत मालकियत गलत है। सामूहिक मालकियत चाहिए, यह कहना ठीक है। परन्तु गहराई में जाकर उसका स्वरूप हम न पहचानेंगे, तो वह भी दुःखमोचन करनेवाली चीज नहीं होगी और हमें फिर से व्यक्तिगत मालकियत स्थापित करने की कोशिश करनी पड़ेगी।

हमारे कुछ गांधीवादी भाई ग्रामदान के विचार से घबड़ाये हैं। हम समझते हैं कि उनका घबड़ाना ठीक है। वे हमें सावधान कर रहे हैं। कम्युनिज्म के विचार के नजदीक पहुँचने में आपको कितनी देर है? अगर हवा के कारण आपका जरा इधर उधर झुकाव चला जाता है, तो आपका विचार कम्युनिज्म बन सकता है। इसलिए स्वाध्याय की गहराई म जाने की जरूरत है।

मालकियत की नहीं, जिम्मेवारी की जरूरत

मालकियत मिटाने का अर्थ क्या है? केरल में ईसाई चर्चवालों ने जो सवाल पेश किया, करीब करीब वैसी ही बात कुछ गांधीवादी बोल रहे हैं। जब चर्च वालों ने यह कहा कि "भूदान तो ठीक है, वह कारुण्यपूर्ण विचार है। उसमें एक आध्यात्मिक दृष्टि है। जिनके पास भूमि नहीं है, उन्हें भूमि देना, आजीविका का साधन देना यह समझ में आता है, परन्तु मालकियत मिटाने की बात हमारे धर्म विचार के विरुद्ध है।" तो हमने उन्हें समझाया : "आपकी बात हम समझ सकते हैं। आप कहते हैं कि प्राइवेट प्रापर्टी, व्यक्तिगत मालकियत एक पवित्र वस्तु है। लेकिन व्यक्तिगत मालकियत की जरूरत नहीं, व्यक्तिगत जिम्मेवारी की जरूरत है। जिस योजना में व्यक्तिगत जिम्मेवारी खत्म होती है, वह योजना गलत है। जैसे कानून में संयुक्त और पृथक् जिम्मेदारी होती है, वैसे ही व्यक्ति को महसूस होना चाहिए।"

हमने उनसे आगे कहा : "आप एक धार्मिक परिभाषा में बोल रहे हैं, आर्थिक सिद्धान्त नहीं। व्यक्तिगत मालकियत शब्द रूढ़ हो गया है, इसलिए आप उसका प्रयोग कर रहे हैं। किसीकी व्यक्तिगत मालकियत पर दूसरे को हमला नहीं करना चाहिए, इस अर्थ में वह पवित्र है। इसे हम भी मान्य करते हैं। परन्तु क्या आप यह मानने के लिए राजी नहीं कि सामाजिक सेवा की भावना से व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन, उत्सर्ग कोई करता है, तो वह ज्यादा पवित्र है ?" आखिर उन्हें मानना पड़ा कि हमारी बात सही है। इसके बाद भी वे कहने लगे कि "यह है बड़ा कठिन।" मैंने कहा : "कठिन कार्य भी आसान हो जाता है, जब जमाना उसके लिए अनुकूल होता है। विज्ञान का जमाना ग्रामदान के लिए अनुकूल है, ऐसा समझकर हम उस काम में लगे हैं।"

ग्रामदान पर केवल आर्थिक दृष्टि से सोचा जाय, जैसा कि बहुत सारे लोग सोचते हैं, तो उसमें खतरा पैदा होता है। इसलिए हमें जो संहिता (ग्रामदान सम्मेलन के प्रस्ताव से) मिली है, उसे ठीक से पढ़नी चाहिए। वह इस जमाने के लिए और हमारे लिए एक उपनिषद् है। उसमें लिखा है कि अहिंसात्मक और सहयोगी तरीके से नैतिक उत्थान के साथ आर्थिक उत्थान भी होगा। इस तरह दोनों का उच्चारण साथ-साथ किया और वहाँ सब पक्षों के जितने भाई आये थे, सबने उसे मान्य किया। उसका एक हिस्सा आर्थिक है, लेकिन कोई उसीको लेकर काम करे, तो खतरा है।

'ग्रामराज्य' शब्द पहले से चला। उसमें दोष मालूम होने से हमने 'ग्राम स्वराज्य' शब्द निकाला। वेद में सूर्य को 'स्वराट्' कहा है। 'आदित्यः स्वराट्।' वह स्वयं प्रकाश है। चन्द्र को 'अन्यराज्' कहा है। वह दूसरे के प्रकाश से विराजमान हैं। 'स्वराज्य' शब्द बहुत ही सुंदर अर्थ बतानेवाला है। उन ऋषियों ने भी, जो कि सामाजिक दृष्टि से पराधीन नहीं थे, कहा था— 'यतेमही स्वराज्ये'—हम स्वराज्य के लिए यत्न करेंगे। उनके लिए यह यत्न की बात हो गयी थी। ऐसे व्यापक अर्थ का 'स्वराज्य' शब्द है। उतनी शब्द शुद्धि हमें करनी होगी और 'ग्राम-स्वराज्य' शब्द चलाना होगा।

व्यापक अध्ययन करें

यह सब मैंने इसलिए कहा कि गहराई में जाकर अध्ययन करने की जरूरत है। हमारे कुछ भाई कहते हैं कि हम भूदान यात्रा में लगे हैं, इसलिए अध्ययन नहीं कर सकते। यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं भूदान यात्रा में लगा हूँ, कोई नहीं कह सकता कि 'मैं भूदान-यात्रा में लगा हूँ, इसलिए श्वासोच्छ्वास ठीक से नहीं ले सकता।' हर कोई यही कहेगा कि भूदान-यात्रा में लगा हूँ, इसलिए खुली हवा मिलती है, तो श्वासोच्छ्वास अधिक आसानी से ले सकता हूँ। उसी तरह भूदान यात्रा में स्वाध्याय अधिक आसानी से हो सकता है। हम खुले आकाश में जाते हैं, तो आधे घंटे में इतना अध्ययन होता है, जो घर पर ४-५ घंटे में भी नहीं हो सकता। नींद कितने घंटे ली, इसका महत्त्व नहीं है। महत्त्व इसीका है कि वह गहरी होनी चाहिए। इसी तरह स्वाध्याय के लिए एकाग्रता चाहिए। उसके लिए खुली हवा, एकान्त अधिक अनुकूल होता है। हमारे उड़ीसा के भाइयों को इसका अनुभव है। हमने उनके साथ इसी तरह भागवत का अध्ययन किया है। भूदान यात्रा हो रही है, इसलिए अध्ययन न कर पाना अपने पाँव उखाड़ने की बात है।

मैं बार-बार कहता हूँ कि स्वाध्याय की बहुत बड़ी जरूरत है। मैं इसकी कुछ योजना करनेवाला हूँ और अपने साथियों की कुछ परीक्षा भी लेनेवाला हूँ। जिसे हम सर्वोदय विचार कहते हैं, वह उसके पहले के किसी भी आध्यात्मिक विचार से कम गहरा नहीं है। शून्यवाद, विकासवाद, परिणामवाद आदि तरह तरह के वाद दार्शनिकों ने उपस्थित किये थे। पश्चिम के दार्शनिकों ने आहार शास्त्र जैसे कई विचार चलाये। उन सबसे यह विचार गहरा है। यह विचार न सिर्फ कुल के कुल जीवन को स्पर्श करता है, बल्कि जीवन की हर बात को बदलता है। इसलिए हमें अधिक व्यापक अध्ययन की जरूरत है। उसकी योजना आज से ही करनी चाहिए, कल से नहीं। आज का व्याख्यान अध्ययन का पहला वर्ग है।

केषाम् अमोघवचनम् ?

एक दफा जयप्रकाशजी से बात हो रही थी। सामने शंकराचार्य की पुस्तक 'गुरुबोध' थी। प्रभावती मेरी विद्यार्थिनी है। उसीको ध्यान में रखकर मैंने शंकराचार्य का एक वचन सुनाया : 'केषाम् अमोघवचनम् ये च पुनः सत्य-मौन-शम-शीलाः'। किनकी वाणी अमोघ होती है ? जो निरन्तर सत्य का पालन करते हैं, जो निरन्तर मौन रखते हैं, जो निरन्तर शान्ति रखते हैं, उनकी वाणी अमोघ होती है। व्याख्यान देते हुए भी मौन होना चाहिए। मौन का मतलब 'न बोलना' ही नहीं है। न बोलनेवाला भी अपने मन में हजारों बातें बोल सकता है। वह बाह्य वस्तु नहीं, आन्तरिक वस्तु है। इसलिए हर शब्द का उच्चारण मननपूर्वक होना चाहिए। उसका पूरा अर्थ समझकर ही उच्चारण करना चाहिए। मौन की बड़ी जरूरत है।

एक भाई ने कहा कि सौम्य प्रहार से कुछ नहीं हुआ, इसलिए तीव्र प्रहार होना चाहिए। लेकिन हमने इस बारे में पहले ही सूत्र बनाया है, सौम्य, सौम्यतर, सौम्यतम। सौम्य से काम न बने, तो आपको सौम्यतर होना चाहिए, उससे भी काम न बने, तो सौम्यतम बनना चाहिए। अगर यह श्रद्धा रही कि हमारी वाणी सौम्य है, इसलिए काम नहीं होता, उग्र वाणी चाहिए, तो यह गलत विचार है। इससे वाणी की शक्ति कुंठित होती है, अमोघ वाणी नहीं होती। हम लोगों के पास जाकर ग्रामदान-भूदान समझाते हैं। हमारी वाणी अमोघ बनेगी, तो हमारा काम बनेगा। इसलिए सत्य, मौन, शम—ये तीन चीजें स्वाध्याय के साथ हमारी वाणी में आनी चाहिए।

मैसूर —निवेदक शिविर के कार्यकर्ताओं के बीच
२१-९-'५७

मैसूर शहर में रास्तों के बहुत सुन्दर नाम हैं : शंकर रास्ता, रामानुज रास्ता, कबीर रास्ता, पुरन्दरदास रास्ता, अशोक रास्ता, हर्ष रास्ता, गुप्त रास्ता, अकबर रास्ता, शिवाजी रास्ता, हैदरअली रास्ता आदि। दो प्रकार के नाम इकठा किये गये . एक वीर पुरुषों के और दूसरे संतों के। समाज-व्यवस्था की जिम्मेवारी उठानेवाले कुछ लोग वीर पुरुषों की परम्परा में हुए, तो कुछ समाज में चित्त शुद्धि का विचार फैलाकर सामाजिक क्रांति लानेवाले संतों की परम्परा में हुए। ऐसे दो बड़े प्रवाह भारत के इतिहास में चले। दोनों का स्मरण इस मैसूर नगर के रास्तों में होता है। सर्वोदय में ये दोनों प्रवाह एक हो जाते हैं। उसमें वीर और संत का भेद मिट जाता है। वीर ही संत और संत ही वीर बनता है। समाज को धारण करनेवाला ही समाज में क्रान्ति करता है और समाज म क्रांति करनेवाला ही समाज को धारण करता है। याने सर्वोदय में विचारों का समन्वय होता है। उसमें समग्रता आ जाती है।

अविरोधी व्यक्तित्व

आपके यहाँ माधवाचार्य हुए। उनका नाम विद्यारण्य भी है। वे संत थे या राज्य संचालक, यह कोई नहीं कह सकता। आपके इस प्रदेश की एक दूसरी मिसाल भी है, जहाँ विचारों का समन्वय होता है। वे हैं बसव। वे ऐसे महान् थे कि उनके जीवन में दोनों तत्त्व एक हो गये। मुहम्मद पैगम्बर भी इसी कोटि के थे। ऐसे ही कुछ उदाहरण विश्व के इतिहास में मिलते हैं। परन्तु वे सारे पुराने समाज में अपवाद हैं। एक ही शख्स जब वीर पुरुष का रूप लेकर हाथ में तलवार उठाता है और संत बनकर भगवद् भक्ति की बात करता है, तब विरोध भी आता है। उसमें दो विचार प्रवाह मिलते तो हैं, लेकिन कुछ विरोध के

साथ। किंतु जो समन्वय सर्वोदय में होता है, उसमें दो विरोधी प्रवाह अक्षरशः एकरूप होते हैं। विरोध रह ही नहीं जाता।

समाज-रक्षा की जिम्मेवारी एक विचार है और समाज के लिए कारुण्य दूसरा विचार। रक्षा की जिम्मेवारी शक्ति को दे दी। शक्ति-देवी स्वतन्त्र देवी है। यहाँ जो सामने पहाड़ पर चामुंडा खड़ी है, वह रक्षणकर्त्री शक्ति देवता है। उसकी उपासना करनेवाले हैं वीर पुरुष। समाज को सुधारनेवाली दूसरी देवी है कारुण्य मूर्ति। करुणा की उपासना करनेवाले हैं संत। रक्षण के लिए शक्ति-उपासना और समाज शुद्धि के लिए करुणा की उपासना। शुद्धि और शक्ति दोनों देवताओं की उपासना में कुछ न कुछ विरोध आता है, इसलिए एकाग्र उपासकों के द्वारा दोनों देवताओं की आराधना नहीं हो सकती। इस तरह फिर इस मैसूर के भी दो प्रकार के रास्ते बन जाते हैं। उधर अकबर रास्ता बनता है, तो इधर कबीर, उधर शंकराचार्य रास्ता बनता है, तो इधर शिवाजी रास्ता बनता है। यह विविधता हमें बड़ा आनन्द देती है। अक्सर शंकर शिवाजी नहीं हो सकता और शिवाजी शंकर नहीं बन सकता। इन दोनों के लिए पूज्य भाव रखने की जिम्मेवारी मैसूर शहर पर आती है।

सर्वोदय का वैशिष्ट्य

इन दो उपासनाओं में विरोध है। उस विरोध को पचाकर उपासना करनेवाले मुहम्मद पैगम्बर, माधवाचार्य, वसव निकल जाते हैं। दोनों को पचा लेना एक अलग बात है और दोनों का विरोध ही मिटा देना दूसरी बात है। सर्वोदय-विचार में यह विरोध ही मिट जाता है। रक्षा के लिए चामुंडा और करुणा के लिए विष्णु, इस प्रकार के दो देवता सर्वोदय में नहीं रहते। उसमें एक ही देवता रहता है। वही रक्षण करता है और वही शुद्धि। वही करुणा का रूप लेता है और वही रक्षणकारिणी शक्ति बनता है। दोनों उसमें समा जाते हैं। दोनों का उसमें कोई विरोध नहीं रहता। उसका नाम है समन्वय। समन्वय से समाज में एकरसता आती है, गुण विभाजन नहीं होता। चंद लोगों के लिए

अमुक गुण और चंद लोगों के लिए अमुक गुण, ऐसा नहीं होता। क्षत्रिय वर्ग का धर्म है बचाव के लिए हिंसा करना। ब्राह्मण का धर्म है रक्षण के लिए भी हिंसा न करना। गृहस्थ का धर्म है—समाज जीवन के लिए परिग्रह करना और सन्यासी का धर्म है—पूर्ण अपरिग्रह की उपासना करना। इस तरह परस्पर विरोधी गुणों की विभाजित योजना करनी पड़ती है। कांचन संग्रह संन्यासी के लिए पाप है, तो गृहस्थ के लिए पुण्य। एक के लिए जो गुण, वही दूसरे का दोष है। एक के लिए जो दोष है, वही दूसरे के लिए गुण है। इस प्रकार समाज के दो टुकड़े बनते हैं। गुणों का विभाजन होता है, तो कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं बनता। समाज भी पूर्ण नहीं बनता। समाज के अंतरंग में विरोध कायम रहता है। दर्जे भी बनते हैं। परिणामस्वरूप संघर्ष होता है। इसलिए सर्वोदय में अहिंसा को ही शक्तिरूपिणी समझकर उपासना करनी है। वही बचाव करेगी, वही पालन करेगी और वही प्रेम करेगी।

सेना और शिक्षा का समन्वय

प्रेम की महिमा लोग जानते हैं। परन्तु प्रेम रक्षणकारी बनेगा, ऐसी लोगों में श्रद्धा नहीं है। ज्ञान की महिमा लोग समझते हैं, लेकिन ज्ञान रक्षणकारी होगा, ऐसा भी विश्वास नहीं है। इसलिए एक होता है सेना विभाग और दूसरा शिक्षा विभाग। दोनों चाहिए। शिक्षण विभाग सुधार के लिए चाहिए और सेना विभाग दंड के लिए। कुछ महान् लोग इन दोनों को विरोध के बावजूद जीवन में एकत्रित करते हैं। पुराना शिक्षक एक हाथ में किताब रखता है और दूसरे हाथ में डण्डा। इससे विरोध मिटता नहीं। सिलाई हो जाती है, पर एक अखण्ड वस्तु नहीं बनती। ताना बाना बुनकर जो वस्त्र बनते हैं, वह एक चीज है और कपड़े के दो कटे टुकड़े सीकर एक करना दूसरी चीज है। माधवाचार्य ने दोनों को सी लिया। इधर राजा के मंत्री बनकर दंड विधान भी चलाया और उधर शंकराचार्य के अनुयायी होकर 'पंचदशी' भी लिखी। पुराने लोगों को इतना ही सूझा। उससे ज्यादा ताना बाना बुनकर अखंड वस्त्र बनाने की कला नहीं आयी।

सत्याग्रह की मीमांसा

सर्वोदय मे सत्याग्रह का जो दर्शन हुआ है, उसके परिणामस्वरूप सिलाई मिट गयी और ताना बाना एकरूप होकर अखण्ड वस्त्र बन गया। सत्याग्रह में संत और वीर दोनों एक हो जाते है, दोनों एक दूसरे में पिरोये जाते हैं, सीये नहीं जाते। यह सत्याग्रह की खूबी है। यह अपने देश की चीज है, लम्बे अनुभवों का परिणाम है। इसका थोड़ा दर्शन गांधीजी के कारण हुआ। इस शक्ति को हमे विकसित करना है।

इन दिनों हिंदुस्तान की हालत बड़ी विचित्र है। विचार स्वैर होता जा रहा है। चिन्तन गहराई में नहीं जाता। आचार में संयम नहीं है। निष्ठाएँ गिर रही हैं। न पुरानी आस्था टिकती है और न नयी निष्ठा बन रही है। परिणामस्वरूप किस वक्त कहाँ क्या दुर्घटना घटेगी, नहीं कहा जा सकता। इस खतरनाक हालत से बचानेवाली शक्ति सत्याग्रह ही हो सकता है।

लोगों में इस समय सत्याग्रह का बिल्कुल ही गलत अर्थ रूढ हो गया है। वह भी एक धमकी बन गयी है। कहीं सत्याग्रह होने की बात सुनते हैं, तो मनुष्यों के मन मे अनुकूल भावना होने के बजाय प्रतिकूल भावना पैदा होती है। सत्याग्रह को दबाव डालने की बात माना जाता है। सब प्रकार के दबावों से टूटे समाज को उन दबावो से मुक्त करना ही सत्याग्रह है। मनुष्य के हृदय पर अनेक प्रकार के दबाव हैं, इसलिए उसकी बुद्धि विचार के लिए आजाद नहीं रही। अनेक परिस्थितियों के कारण बुद्धि पर आये हुए इन दबावों को हटाने की प्रक्रिया का नाम 'सत्याग्रह' है। पचास दबाव के खिलाफ ५१वाँ दबाव खड़ा करना सत्याग्रह नहीं है। बुद्धि आजाद हो, इसीके लिए सत्याग्रह यत्न करता है। उसके कई साधन है। एक साधन है निरन्तर सेवा और दूसरा है निरन्तर आत्म-शुद्धि। जहाँ इस प्रकार के सत्याग्रह का उदय होगा, वहाँ लोगों के दिलों को ठंडक पहुँचेगी। उनके हृदय के पर्दे खुल जायँगे। बुद्धि पर आनेवाले आवरणों को दूर करने के लिए सत्याग्रह का प्रयोग है। विचार समझना, उसके लिए

जरूरी सेवा करना, मैत्री की भावना स्थापित करना, सामनेवाले के हृदय में जरा भी डर न होने देना 'सत्याग्रह' है।

सत्याग्रह की शुद्धि

बाबा ने जब जमीन माँगना शुरू किया, तो आरम्भ में कुछ विचित्र अनुभव आये। एक ओर जहाँ लोग उदारता से देने लगे, वहाँ दूसरी ओर लोग डरने भी लगे। कहीं-कहीं बाबा जिस गाँव में जाता, कुछ लोग गाँव छोड़कर चले जाते थे। वे डरते थे, क्योंकि उनके पास मालकियत थी। वे चोरों से डरते थे, सरकार से डरते थे, कम्युनिस्टों से डरते थे और बाबा से भी डरते थे। हमने कहा : "अरे भाई, बाबा से डरोगे तो कहाँ जाओगे ?" हम अपने मन में सोचने लगे कि उन्हें डर क्यों पैदा होता है ? यह ठीक है कि उनके पास जमीन है, सम्पत्ति है और उसकी आसक्ति है। वे दोषी हैं, परन्तु क्या बाबा के पल्ले में भी कोई दोष आता है ? तब हमारे ध्यान में आया कि इसमें बाबा के पल्ले में भी दोष है। क्योंकि हम सबके पास जाते और कहते हैं कि 'दुःखी, दरिद्री और भूमिहीनों के लिए दो।' हमारा यह कहना समाज के एक ही अंश को लागू होता है। धर्म सारे समाज को लागू होता है। सत्य बोलने का धर्म समाज के एक अंश को लागू नहीं होता। प्रेम और करुणा किसी एक ही विभाग का धर्म नहीं हो सकता। अतएव वह सारे समाज को लागू होता है। इसलिए हमारा भूमिहीनों के लिए माँगना कोई धर्म विचार नहीं है। उसमें करुणा है। पर वैसी करुणा तो मार्क्स में भी है। उसका यह कहना कि 'अगर और किसी तरीके से नहीं बनता, तो तलवार से भी संहार कर गरीबों का उद्धार कर सकते हैं', निश्चय ही करुणा से प्रेरित है। लेकिन उसमें पूरा विचार नहीं है, इसलिए वह धर्म नहीं हो सकता। अतः हमें लोगों के सामने ऐसा ही विचार रखना चाहिए, जो हरएक को लागू हो।

हम आगे सोचने लगे कि क्या हर किसीके पास देने के लिए कुछ नहीं है ? ऐसी बात तो नहीं। भगवान् ने हरएक को कुछ-न-कुछ दे रखा है। वह करुणामय किसीको बिना दिये नहीं रखता। किसीके पास श्रम-शक्ति है, तो किसीके

पास बुद्धि, सपत्ति, जमीन। भगवान् ने इस तरह का दान विविधता के लिए दे रखा है। वह एक ही प्रकार का देता, तो एक ही प्रकार की छाप होती। उससे काम न बनता। सिर्फ सा 'सा'''सा ''से सगीत नहीं बनता। सगीत के लिए सा ''रे ''ग''म'''स्वरों की विविधता चाहिए। साथ ही उस विविधता में विसवाद नहीं होना चाहिए। भगवान् ने किसीके हाथ मजबूत बनाये हैं, तो किसीका दिमाग। इसलिए सबको अपने पास जो कुछ है, भगवान् ने जो कुछ दान दिया है, वह समाज को दे देना चाहिए।

किसी गाँव की सारी की सारी जमीन दान दे देने पर भी वह पूर्ण ग्रामदान नहीं कहा जा सकता। ग्रामदान मे पूर्णता तभी आयेगी, जब जमीन-वाले अपनी सारी जमीन गाँव को दे देंगे, श्रमनिष्ठ अपना कुल श्रम गाँव को दे देंगे, बुद्धिनिष्ठ अपनी सारी बुद्धि गाँव को दे देंगे और शक्तिवाले अपनी कुल शक्ति गाँव को दे देंगे। आज जमीनवाला अपनी जमीन का लाभ सिर्फ अपने परिवार को देता है, श्रमसपन्न मजदूर अपनी मजदूरी का लाभ सिर्फ अपने परिवार को देता है, ग्रामदान में सारी जमीन, श्रम सपत्ति, बुद्धि पूरे गाँव-परिवार को अर्पण होनी चाहिए। इस तरह होगा, तभी वह पूर्ण ग्रामदान होगा। इसलिए बाबा से डरने का कोई कारण नहीं है। अगर डरना है, तो सभी को बाबा से डरना चाहिए, अन्यथा किसीको भी नहीं। यह विचार जब सूझा, तब बाबा का सत्याग्रह शुद्ध हुआ।

परस्पर निरुद्धयन्ते तैरयं न निरुध्यते

पहले भूमिवानों को हमें देखकर ऐसा लगता था कि यह कोई माँगनेवाला आया है। यह कुछ लोगों से माँगकर कुछ लोगों को देगा। यह वर्ग सघर्ष नहीं मानता, वर्ग-समन्वय करता है। अब ग्रामदान के काम में किसीको वैसा नहीं लगता। ग्रामदान का अर्थ है—विविधता के साथ सारा समाज एकरस बने। श्रमिकों का श्रम, बुद्धिमानों की बुद्धि और जमीनवालों की जमीन, सबकी योग्यता समान है। जिसने अपने पास की चीज समाज को समर्पित कर दी, वह समर्पण योगी हो गया। जिस किसीके पास जो कुछ भी था, वह दे दिया, वह

भक्त हो गया। जब कोई निर्भय धर्म-विचार समाज के सामने आता है, तो उससे डर नहीं रहता। ग्रामदान का विचार अत्यन्त निर्भय विचार है। इसमें परिपूर्णता और समग्रता है।

ग्रामदान में यह कीमिया है कि वह परस्पर विरोधी तत्त्वों का विरोध मिटाकर सबको एकरस बना देता है। गौड़पादाचार्य ने एक प्रसिद्ध श्लोक में यही कहा था: 'परस्परं निरुद्ध्यन्ते तैरयं न निरुध्यते।' ये लोग परस्पर विरोध करते हैं। लेकिन मेरे साथ उनका कोई विरोध नहीं है। ग्रामदान आज सबको यही कहता है कि तुम सब लोग परस्पर विरोध करते हो। पर ग्रामदान में आ जाओ, तो तुम्हारे सभी विरोध मिट जायँगे। मैसूर शहर में भी रास्ते के नामों ने विरोध पैदा किये हैं। वे मिटा देने चाहिए। सब रास्ते सर्वोदय के रास्ते बन जाने चाहिए—सर्वोदय रास्ता न० १, सर्वोदय रास्ता न० २, सर्वोदय रास्ता न० ३। सर्वोदय में जीवन से विरोध ही खतम करने की बात है। हम कहना चाहते हैं कि यह सारी दुनिया के लिए तो लाभदायी है, लेकिन भारत के लिए अत्यन्त बचाव करनेवाली चीज है। हमारे इस विशाल देश में, जहाँ अनेकविध भेद हैं, अगर अविरोध और समन्वय की शक्ति न सधी, तो देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे।

मैसूर
२६-९-'५७

स्त्रियों के लिए त्रिविध कार्य : ३६ :

आज समाज में जितने भेद निर्माण हुए हैं, उनमें पुरुष स्त्रियों को दाखिल करना चाहता है। यूरोप, अमेरिका में स्त्रियाँ सेना में भर्ती की जाती हैं। वे इसमें अपना गौरव समझती हैं कि हम पुरुषों की बराबरी में आ गयीं। देश की रक्षा के काम में तो उन्हें गौरव समझना चाहिए, परन्तु विनाशकारी कार्यों में पुरुषों का साथ देने में भी अगर उन्हें गौरव मालूम हुआ, तो इसका मतलब यह हुआ कि माता पिता दोनों मिलकर बच्चे की वफादारी छोड़ रहे हैं। फिर

समाज का कोई त्राता नहीं रह जायगा। इसलिए स्त्रियों को जाति, धर्म, भाषा, देश, पक्ष आदि सब भेदों से परे रहना चाहिए। स्विट्जरलैंड में स्त्रियाँ मताधिकार नहीं माँगतीं। वे माँगतीं तो उन्हें मिल जाता, परन्तु वे समझती हैं कि यह कोई महत्त्व की चीज नहीं है। मानव के विकास के लिए महत्त्व के जो काम हैं, उनके साथ इसका सबंध नहीं है। बच्चों की तालीम, नीति विचार कायम रखने की बात, धर्म भावना बनाये रखने की श्रद्धा आदि सब बातें हम कर सकती हैं, करती हैं, तो फिर वोट के कारण पैदा होनेवाले झगड़ों में क्यों पड़ें? उसमें उनको रस नहीं है। वह कोई पिछड़ा हुआ देश नहीं, प्रगतिशील देश है। पचास साल पहले इग्लैण्ड की स्त्रियों को मताधिकार नहीं था। उन्होंने उसके लिए आन्दोलन किया, तब उन्हें हक मिला। स्त्रियों को हक तो होना ही चाहिए, हकों में किसी प्रकार की कमी नहीं रहनी चाहिए। परन्तु मैं कहना यह चाहता हूँ कि मानवता की रक्षा के जो काम करते हैं, उनके लिए पार्टी पॉलिटिक्स कोई चीज नहीं है। पार्टी पॉलिटिक्स से ऊपर उठी हुई बहनों को शान्ति स्थापना के कार्य में आगे आना चाहिए। शान्ति सेना के काम में वे सफल हो सकती हैं।

सांस्कृतिक क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में हो

स्त्रियों को वे सारे क्षेत्र हाथ में लेने चाहिए, जो सांस्कृतिक क्षेत्र माने जाते हैं। आज तक इन क्षेत्रों म प्रकट रूप से ज्यादातर पुरुषों का हाथ रहा है, दुनिया के महान् काव्य, जिनका दुनिया पर असर है, चाहे वह वाल्मीकि रामायण हो, व्यास का महाभारत हो या होमर, डान्टे, मिल्टन आदि के काव्य हों, सबके सब पुरुषों ने लिखे हैं। वेद में थोड़ी स्त्रियों ने मन्त्र निर्माण किया है और बीच के समय में कर्नाटक की अक्क महादेवी, राजस्थान की मीराबाई आदि २-४ नाम हैं। परन्तु कुल साहित्य पर स्त्रियों का ज्यादा असर नहीं रहा है। बच्चों की तालीम आदि का सामाजिक कार्य भी आज पुरुषों के हाथों में है। पुरुषों में बच्चों को तालीम देने लायक कोई अक्ल नहीं है। बड़े होने पर भले ही पुरुष उन्हें तालीम दे सकें, परन्तु प्राइमरी स्कूल के बच्चों के साथ कैसा व्यवहार

करना, यह पुरुष क्या जानेगा ? यह सारा का सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में आना चाहिए। साहित्य, तालीम, धर्म का आयोजन आदि क्षेत्रों में स्त्रियों को स्थान मिलना चाहिए।

स्त्रियाँ आश्रम स्थापित करें

स्त्रियों को एक विशेष काम यह करना चाहिए कि वे आश्रमों की रचना करें। गांधीजी ने आश्रम खोले। वहाँ स्त्री-पुरुष दोनों रहते थे। परन्तु किसी स्त्री ने ऐसा आश्रम नहीं खोला, जिसमें दोनों रहते हों। पाण्डिचेरी की माताजी हैं, परन्तु वह आश्रम भी श्री अरविन्द ने खोला। गांधीजी के आश्रम ने देश को बनाया। उस आश्रम के जरिये हिंदुस्तान पर असर डाला गया। हिंदुस्तान के कोने कोने में ऐसे लोग मिलते हैं, जो साबरमती में दो चार महीने या साल-दो साल रहे हैं और वहाँ से स्फूर्ति लेकर काम कर रहे हैं। मुन्शीराम के गुरुकुल ने, रवीन्द्रनाथ के शान्तिनिकेतन ने, श्री अरविन्द के आश्रम ने भारत पर जो असर डाला, उस तरह देश पर असर डालनेवाली स्त्रियाँ क्यों नहीं निकल सकतीं ?

पुरुषों की अक्ल का दिवाला निकल रहा है, इसलिए अब वे स्त्रियों से भी कहने लगे हैं कि तुम बंदूक लेकर आओ ! ऐसे समय में अब स्त्रियों को हिंदुस्तान पर असर डालने का काम उठा लेना चाहिए। वे उसे उठायेंगी, तो बहुत असर डाल सकेंगी। अभी हम आनन्दाश्रम (केरल) में रामदास स्वामी के यहाँ गये थे। वहाँ जो बहन है, वही मुख्य काम करती है। वैसे रामदास स्वामी बोलते भी हैं कि मैं उन्हींके आश्रम में हूँ। फिर भी वह आश्रम रामदास स्वामी का ही माना जाता है। हिंदुस्तान में ऐसी कोई संस्था नहीं है, जो किसी स्त्री ने चलायी है और उसमें स्त्री पुरुष दोनों आते हैं, तालीम पाते हैं।

कस्तूरबा ट्रस्ट की सेवा

एक जमाने में पुरुष खेती करते थे और स्त्रियाँ बुनाई करती थीं। अब पुरुष बुनाई करते है और स्त्रियाँ सिर्फ उन्हें मदद करती हैं। याने वे गौण कार्य

करती हैं। पहले स्त्रियाँ सिलाई करती थीं, लेकिन अब मशीन आने के बाद वह काम भी पुरुषों के हाथ में चला गया। इस तरह हरएक क्षेत्र में उन्हें गौण स्थान दिया जा रहा है। स्त्रियों का भी पालन हम करते है, ऐसा अहंकार पुरुषों में है। यह सारी रचना अगर बदलनी है, तो स्त्रियों को समाज पर असर डालने के लिए आश्रम चलाने चाहिए।

कस्तूरबा ट्रस्ट के काम में तेजस्विता नहीं आयी, क्योंकि उन्होंने अल्पज्ञान में संतोष माना। मै पहले से यह कहता आया हूँ कि थोडे ज्ञान में संतुष्ट नहीं होना चाहिए। ट्रस्ट के काम में यह होता है कि बहनो को थोड़ी सी तालीम दी जाती है, प्रसूति-सेवा का या बच्चों की सेवा का काम सिखाया जाता है और दूर-दूर के गाँवों में भेज दिया जाता है। जहाँ हम ज्ञान की गहराई में नहीं पहुँचते, वहाँ ऊपर की सेवा करते है। कस्तूरबा ट्रस्ट के जरिये यह काम हो सकता था। अगर ऐसी योजना की जाती कि कुछ स्त्रियों को अच्छी तालीम देते और बीच में फिर-फिर से कुछ और तालीम देते जाते, तो इन स्त्रियों को दीक्षा दे सकते थे। फिर भी जो बहनें काम कर रही हैं, उनका काम बहुत अच्छा है, बेजोड़ है।

भूदान-आन्दोलन में स्त्रियों के लिए बहुत गुंजाइश है। इसमें सारा सास्कृतिक विचार बदलने की बात है। घर में बच्चे हैं, इसलिए बच्चों की तालीम की योजना समान होनी चाहिए। जब तक जमीन की मालकियत है, तब तक बच्चों का समान पोषण नहीं हो सकता। इसलिए इस काम में वात्सल्य की और कारुण्य की जरूरत है।

स्त्री-शक्ति को जाग्रत करने का अवसर

आप पर घर की रक्षा का जिम्मा तो है ही, परन्तु उसके साथ साथ समाज को बचाने का जिम्मा भी है। यह सोचकर आपको यह काम उठाना चाहिए। रमादेवी और मालतीदेवी ने इसमें बहुत काम किया है। इसके परिणामस्वरूप कोरापुट में १०-२० बहनें ऐसी मिलीं, जो निर्भयता से जंगलों में घूमकर काम करती हैं। ऐसी जितनी स्त्रियाँ सामने आयेंगी, उतनी ही

उनकी नैतिक धाक रहेगी। गांधीजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने स्त्री शक्ति को जगाया। वे स्त्री शक्ति को इसलिए जगा सके कि उनका कार्य अहिंसा का था। समाज में जब तक सारा आधार हिंसा पर रहेगा, तब तक स्त्रियों का स्थान गौण रहेगा। एक झाँसीवाली रानी निकली, परन्तु वैसी ज्यादा नहीं निकल सकीं। अगर हमने यह माना कि हिंसा शक्ति से समाज का बचाव होना चाहिए, तो उस कार्य में पुरुषों का ही मुख्य स्थान रहेगा, स्त्रियों का गौण स्थान रहेगा। अहिंसा में स्त्री का बहुत ज्यादा प्रवेश है। गांधीजी ने सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा को मान्य किया, इसीलिए स्त्री शक्ति को जगा सके। व्यक्तिगत क्षेत्र में तो अहिंसा पहले से ही मान्य थी, परन्तु गांधीजी उसे सामाजिक क्षेत्र में लाये। इसलिए इस क्षेत्र में स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी में या कुछ ज्यादा ही काम कर सकती हैं।

इस तरह स्त्रियों के सामने बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है। ग्रामदान, शान्ति सेना, आश्रम और तालीम इस तरह विविध कार्य उन्हें करना चाहिए। आज तक वे इन कामों में गौण रूप से लगी थीं, परन्तु अब उन्हें मुख्य बनना होगा।

मैसूर
२६-६-'५७

शान्ति-सेना-दर्शन : ३७ :

सन् '५७ के आगे की बात का जवाब देते हुए हमने कहा था कि हम काल और स्थल में काम नहीं करते। हमारा काम कालातीत है, स्थलातीत है। हमें सूझा कि ग्रामराज तो बन ही गया। अब इसकी रक्षा के लिए शान्ति सेना बननी चाहिए। ग्रामराज के काम में अण्णासाहब को कितनी तकलीफ पड़ रही है, यह अण्णासाहब ही जानते हैं। उन प्रयत्नों का इतिहास लिखा जायगा, तब कुछ दर्शन होगा। लेकिन अपने मन में हमने मान लिया कि वह बात हो चुकी है। रामदास स्वामी को दर्शन हुआ था कि आगे क्या होगा। उन्होंने कहा: 'म्लेच्छ संहार झाला।' म्लेच्छों का संहार हो चुका, जिन पाप शक्तियों

ने देश पर कब्जा कर लिया था, वे पाप शक्तियाँ खत्म होंगी। इधर रामदास थे, तो उधर औरंगजेब था। रामदास के मरने के ठीक २५ साल बाद वह मरा। परंतु रामदास को दर्शन हुआ कि वह परकीय सत्ता समाप्त हुई। 'उदंड झाले पाणी स्नान संध्या करूनियां'—अब स्नान संध्या के लिए पानी खुल गया। याने काशी नगरी जो परकीय सत्ता मे थी, वह स्वराज्य मे आ गयी। उन दिनों यह कल्पना थी कि स्वराज्य तब आयेगा, जब काशी मुक्त होगी। मराठे काशी तक पहुँचे नहीं थे। उनका सारा काम यहीं पूना के नजदीक था। पर रामदास को प्रतिभा-दर्शन हो गया कि अब सब हो चुका। ऐसे ही मुझे लगा कि ग्रामदान तो हो चुका, अब उसके रक्षण के लिए शांति-सेना बननी चाहिए।

शान्ति-सैनिकों की संख्या

गणित तो मेरा हमेशा चलता ही है। मैंने हिसाब लगाया कि ५ हजार मनुष्यों की सेवा करने के लिए एक शान्ति सैनिक चाहिए। अर्थात् ३५ करोड़ की सेवा के लिए ७० हजार सैनिक चाहिए। यह बड़ी सख्या नहीं है। इन दिनों शस्त्रास्त्र और फौज कम करने की बात चलती है। सुझाव पेश किया गया है कि एशिया अपनी सेना कम करके इतनी करे, अमेरिका अपनी सेना कम करके इतनी करे। अब कम करके २० लाख करे, तो बढ़ा करके कितना करना पड़ेगा? अजीब से आँकड़े हैं। उभय पक्षों का बिल्कुल प्रेमभाव बनने के बाद २० लाख सेना खड़ी हो सकती है। हमारे पूर्वजों ने अगर ये आँकड़े सुने होते, तो समझते कि क्या शांति के लिए भी २० लाख सेना की जरूरत है। उस हिसाब से ३५ करोड़ लोगों के इतने बड़े देश में ७० हजार की शान्ति-सेना की अगर कोई माँग कर रहा है, तो उसे ज्यादा नहीं कहा जायगा। यही आक्षेप आयेगा कि इतने से काम नहीं निभेगा। कोई बड़ी संख्या चाहिए। पर हमने कम-से-कम गणित लगाया।

शांति-सैनिकों की निष्ठाएँ

शान्ति सैनिक की योग्यता में सत्याग्रही लोकसेवकों की पंचविध निष्ठा से

कुछ अधिक भी चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। सत्याग्रही लोक-सेवक लाखों होने चाहिए। ये ७० हजार तो चुने हुए लोग होंगे। लोकसेवक को किसी राजनैतिक पक्ष का सदस्य नहीं होना चाहिए। इस विषय में बहुत चर्चा होती है। निष्कामता की शर्त लोगों को चुभती नहीं है, यद्यपि वह इतनी कठिन है कि रात दिन गीता की ध्वनि सुनायी देगी, तब काम होगा। पर उसकी लोगों को इतनी चिंता नहीं मालूम होती। चिंता यह है कि पक्षातीतवाली बात उचित है या अनुचित।

इन दिनों हमारे चित्त पर राजनीति का बड़ा भारी बोझ है। अंग्रेजों का बोझ तो उतर गया, पर राजनीति का यह बोझ, जो हमारे सिर पर उन्होंने लादा, कायम है। हम सिर्फ इतना ही कहना चाहते हैं कि जो शस्त्र सैनिक होते हैं, वे भी पक्षातीत रहें। अगर सेना में पक्ष बनने लगेंगे, तो भारत के दस लाख सैनिकों में से कुछ पी० एस० पी० के, कांग्रेस के, तो कुछ कम्युनिस्टों के हो जायँगे। ऐसा हुआ, तो आपकी सेना काम नहीं करेगी। सैनिक परिभाषा में भी यह मान्य है कि सिपाही को सबका सेवक होना चाहिए। इसलिए सत्याग्रही लोकसेवकों की प्रतिज्ञा में सब पक्षों से मुक्त होने की बात शान्ति सैनिक के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

यह हिंसा कैसे फूट निकलती है? अभी रामनाडपुरम् में हिंसा चली। उस जिले में हमारी यात्रा आम चुनाव के दिनों में चल रही थी। तभी हमने समझ लिया था कि यह ज्वालामुखी है। हरिजन विरुद्ध परिजन, यह जाति-भेद का झगड़ा था। इत्तिफाक से हरिजन बहुत से ईसाई थे और परिजन हिंदू। एक पार्टी ने इसे खड़ा किया, दूसरी पार्टी ने उसे। इस तरह धर्म भेद, जाति भेद, पार्टी-भेद—त्रिगुणात्मक रस्सी बन गयी। वहाँ जानेवाले शांति सैनिक किसी एक पार्टी के हों, तो काम नहीं आ सकते। अशांति के कारणों में ही पार्टी भेद एक कारण होता है। इसलिए हमारा शांति सैनिक जाति भेद निरपेक्ष हो, सब धर्मों को समान माननेवाला हो। पचविध निष्ठाएँ शांति सैनिक में चाहिए ही। उनके अलावा एक छठी निष्ठा भी रखी है। वह यह कि शांति सैनिक को कमांडर (सेनापति) की कमांड (आदेश) माननी ही चाहिए। अभी तक हम शासन-

मुक्त समाज, विचार स्वातंत्र्य की जो बात बोलते आये हैं, उससे बिल्कुल भिन्न ही नहीं, बल्कि विपरीत-सी यह बात लगती है। और तदनुसार हमने काम भी किया। शांति-सेना और बातो म तो दूसरी सब सेनाओं से बिल्कुल विरुद्ध ही है, परन्तु अनुशासन के बारे में वह उनमे कम सख्त नहीं हो सकती, कुछ अधिक ही हो सकती है। क्योंकि उसमे दूसरों का प्राण लेने की सहूलियत नहीं है। अपने हाथ मे शस्त्रास्त्र होने पर भी प्राण खोने का मौका तो आता है। इसीलिए वहाँ शौर्य है और इसीलिए उसका गौरव भी है। पर उसके साथ प्राण लेने का भी उसम माद्दा है, सहूलियत है, तैयारी है, योजना है। यह तो बिल्कुल ही एकांगी बात हो गयी कि इसमें अपना प्राण खोने की बात और दूसरों के प्राण बचाने की बात है। कोई तलवार से अगर हमारे गले पर प्रहार करता हो, तो अपने गले पर प्रहार न हो, इसकी चिन्ता तो हमें होनी ही नहीं चाहिए। पर प्रहार करनेवाले के हाथ को किसी प्रकार की चोट न लगे, इतनी चिंता जरूर होनी चाहिए। यहाँ बिना अनुशासन के नहीं चलेगा। सेवकों को सेनापति का आदेश मानने की आदत पडनी चाहिए। आदेश हो कि 'रुक जाओ', तो तुरन्त रुक जाय। सोचने की बात नहीं है। ऐसी आदत पड़नी चाहिए, तब काम होगा। यह बात हमने केरल में कर ली।

केरल का काम

केरल में केलप्पन जैसे नेता शांति सेना के कमांडर होने के लिए तैयार हो गये। पहले तो वे किसी पक्ष म पड़े हुए थे। पर फिर उन्होंने फौरन बिना किसी हिचकिचाहट के इस्तीफा दे दिया। उनके पूर्वकर्म अच्छे थे। सामाजिक क्षेत्र में और रचनात्मक क्षेत्र मे काफी सेवा के कार्य उन्होंने किये थे। उनके प्रति लोगों में इज्जत थी। जैसे वे सेनापति बनने को तैयार हुए, वैसे ही उनका शब्द मानने के लिए सेना भी तैयार हुई। पचासों जवानों ने यह कह दिया कि हमें मजूर है। एक अजीब ही दृश्य केरल म उपस्थित हुआ। एक सभा में खड़े होकर ८९ लोगों ने प्रतिज्ञा की कि हम शांति सेना के लिए तैयार रहेंगे और जहाँ ऐसा प्रसंग आयेगा, वहाँ मर मिटेंगे। उस सभा में

ऐसे दस बीस लोग और भी हो सकते थे, परन्तु हमने उनको रोका। हमने कहा कि हम अभी ज्यादा लोग नहीं चाहते, यह प्रथम दिन है। इस तरह के परखे हुए लोग, जिनसे हमारा सम्पर्क आया है, आरम्भ के लिए बस हैं। इस तरह केरल में इसकी स्थापना हुई। शांति-सेना हमेशा के लिए सेवा-सेना होगी।

शांति-सेना का तत्त्व

शांति-सेना गांधीजी का शब्द है। जो दस-पाँच शब्द उन्होंने हमको दिये, उनमें से यह एक शब्द है। उन दिनों यह चीज एक ऐसी परिस्थिति में से निकली थी कि इसको गहरा अर्थ नहीं आ सकता था। वे भी महसूस करते थे कि शांति सेना हमेशा के लिए सेवा-सेना रहनी चाहिए। परंतु जगह-जगह जो अशांति हो, वहाँ हम पहुँच जायँ और अपना जीवन अर्पण करें, इस प्रकार से यह चीज निकली। शांति-सैनिक वही हो सकता है, जो मातृवत् सबका सेवक हो। 'मातृवत्' शब्द का मैंने बहुत सोच-समझकर प्रयोग किया है। भाई भाई को बचाता है, मित्र मित्र को बचाता है, सेवक स्वामी को बचाता है—ऐसी बहुत सी मिसालें हैं। लेकिन माँ बच्चों को जैसे कठिन प्रसंग में बचाती है, वह अद्भुत ही है। वह मिसाल न सिर्फ मनुष्यों मे है, बल्कि अन्य प्राणियो में भी है। किसी शेरनी का बच्चा पकड़ लिया जाता है, तो शेरनी किस तरह टूट पड़ती है, बावजूद इसके कि वह जानती है कि सामने बन्दूक है, उससे मैं खतम होनेवाली हूँ। शिकारियों ने अपने अनुभव सुनाये हैं कि शेर तो भाग गया, पर बच्चा पकड़ में आ जाने से शेरनी बार बार तम्बू में आती है और हमला करती है। फिर बन्दूक देखकर वह पीछे हटती तो है, पर भागती नहीं। फिर से आकर टूट पड़ती है। उसकी तृप्ति तब होती है, जब वह गोली का शिकार होती है और समझ लेती है कि बच्चे के लिए मुझे जो करना चाहिए था, वह मैंने किया। शांति सेना का यही तत्त्व है। शेरनी चाहती है कि बच्चे को छीननेवाले को मैं फाड़कर खाऊँ। वह सर्वोदय-विचार को माननेवाली तो नहीं है। अपने शिशु के बचाव का विचार

उसके मन में है।, वह उद्यत है मारने के लिए, मरने-के लिए भी। मरने तक वह कोशिश करती है और मरने के बाद ही उसका प्रयत्न समाप्त होता है। माता को सामनेवाले से भय ही नहीं मालूम होता। इसलिए मैंने कहा कि माता जिस तरह बच्चे का रक्षण करती है, वैसा ही शांति-सैनिकों को होना चाहिए। उनकी स्वाभाविक ही ऐसी प्रवृत्ति होनी चाहिए कि हमारे समाज में कहीं भी खतरा पैदा हो, तो अपनी रक्षा का कोई खयाल छोड़कर उसी तरह शांति सैनिक वहाँ दौड़ जायँ। माता की यह मिसाल तब लागू होगी, जब माता के समान काम किया जायगा। इसलिए शांति-सैनिक मुख्यतया सेवा-सैनिक होगा। शांति सेना सेवा-सेना होगी। वह निरन्तर वात्सल्य भाव से सेवा करेगी। हममें और जनता में स्नेह निर्माण हुआ है। उस हालत में कोई कठिन प्रसंग आता है, तब मनुष्य को प्राण की कोई कीमत मालूम ही नहीं होती। स्वाभाविक ही त्याग होता है। उस वक्त वह उसे त्याग समझता ही नहीं। वह समझता है कि यह प्रेम कार्य है।

आध्यात्मिक आधार

शांति सेना किस भौतिक या आध्यात्मिक आधार पर खड़ी होगी? हमारी सरकार सेना बनाती है। उस सेना का आध्यात्मिक तथा भौतिक आधार क्या है? उसका आध्यात्मिक आधार है, लोग से प्राप्त किया हुआ वोट। वोट का आधार न हो, तो उस सेना और लूटनेवाली टोली में कोई फर्क ही न रह जाय। यह जरूर है कि इस प्रकार से यह वोट का आधार भी बहुत ही क्षीण है। नाममात्र का बहुसंख्यक वोट है। कुल लोगों में से ६० प्रतिशत लोगों ने वोट दिये हैं। उनमें ३० प्रतिशत वोट इस पार्टी को मिले हैं। बाकी के ३० प्रतिशत वोट दूसरी पार्टियों में बँटे हैं। तीस प्रतिशतवाली पार्टी राज्य चलाती है। किसी भी देश में जहाँ लोकतान्त्रिक ढाँचा है, वहाँ ३० फीसदी वोट से चुने हुए लोग सौ फीसदी लोगों की सेवा नहीं करते, उन पर सत्ता चलाते हैं। मेरे लिए तो ऐसी हालत में सेवा करना ही मुश्किल हो जाता है। अगर कल मैं सेवा के लिए खड़ा होऊँ और सौ में से तीस ही लोग मेरी सेवा चाहें, तो और बाकी के लोग जिन्हें

दूसरे दो चार व्यक्तियों की सेवा चाहें, मेरी सेवा न चाहें, तो मैं चुनकर जाऊँ और उनके ऊपर अपनी सेवा लादूँ, यह मेरे लिए मुश्किल है। जो मेरी सेवा चाहते हैं, उनकी सेवा मैं करूँगा और जो नहीं चाहते हैं, उन पर अगर सेवा लादूँगा, तो एक अजीब सी बात हो जायगी। आज तो लोग नहीं चाहते हैं, उन पर सेना लादने की बात नहीं है। उन पर सत्ता लादने की बात है। और इस आधार पर सेना बनती है। पर एक सैंक्शन माना जाता है कि उसके लिए जनता का वोट है। इसलिए यह राष्ट्र-रक्षक सेना मानी जाती है। तो, वह आध्यात्मिक आधार उसके पीछे है। हमारे पीछे भी कोई आध्यात्मिक आधार चाहिए। हम करुणा प्रेरित हैं और सेवा करना चाहते हैं, इससे अधिक दूसरा कोई आध्यात्मिक आधार हमें मान्य नहीं है।

, हमने कहीं खादी का कार्य शुरू किया, कहीं कोई ग्रामोद्योग का काम शुरू किया, तरह तरह के रचनात्मक काम उठाये, लेकिन लोगों की सम्मति नहीं ली! हमारे मन में सेवा की इच्छा है और जिसके हृदय में ऐसी करुणा है, उसको लोगों में जाकर सेवा करने का अधिकार है। उसकी शिकायत भी नहीं है कि लोग उसकी बात मानते हैं या नहीं। मानते हैं तो ठीक है, उन्हें मानने का अधिकार है। हम किसी गाँव में गये, किसी कोशिश में वर्षों बिताये। कहीं पचीस प्रतिशत लोग खादीधारी हुए, कहीं तीस प्रतिशत हुए, कहीं पैंतीस प्रतिशत हुए। बात रुक गयी। हमने माना कि बहुत अच्छा काम हुआ। बाकी के लोग जो खादीधारी न हुए, हमारी बात उन्होंने न मानी। उन्हें न मानने का अधिकार था और जिन्होंने हमारी बात मानी, उनको बात जँच गयी। इसलिए उन्होंने मानी। यह ठीक है, इस तरह सेवा करने का सबको अधिकार है। परन्तु शांति सैनिक होकर मैं सबकी सेवा करना चाहता हूँ और बिना आपकी सम्मति से मैं सेवा करूँ, तो मेरे पाँव में ताक़त नहीं आयेगी।

सम्मतिदान

आज सर्वोदय का काम करनेवालों के मन की क्या हालत है? कांग्रेस

को कुछ वोट हासिल होते हैं, उसके पीछे कुछ जनता है। पी० एस० पी० को कुछ वोट हासिल हैं, तो कुछ जनता उसके पीछे है। आपके हमारे पीछे क्या है? ऐसे प्रश्न पर मुझ जैसा मनुष्य कह देता है कि हमारा यह संकल्प विश्व-संकल्प है। जहाँ निर्मल शुद्ध संकल्प होता है, वहाँ विश्व-संकल्प बन जाता है। यह कहने का हमारा अधिकार है। लोगों में जाकर हम सिर्फ मर मिटें, इतनी ही तो हमारी आकांक्षा नहीं है। लोगों में जाकर हम शांति बना सकें, यह हमारी आकांक्षा है। सिर्फ हम मर मिटें, तो सब हो गया और उसके बाद अशांति कायम रही, तो हमको परवाह नहीं। यह तो आखिरी अवस्था है। हमारा कर्तव्य हो गया। पर अपेक्षा यह है कि हमारी उपस्थिति का लोगों के दिलों पर ऐसा असर पड़े कि शांति बने। इस प्रकार का न सिर्फ सेवा का अधिकार, बल्कि लोगों के दिलों पर नैतिक प्रभाव डालने का जो अधिकार हम चाहते हैं, उसके लिए लोगों की तरफ से कोई सम्मति होनी चाहिए। मैंने उसको सम्मतिदान नाम दिया है। एक दान की परंपरा चल पड़ी है। सम्मतिदान याने आपकी सेवा हमको मंजूर है। इसलिए हम कुछ न कुछ कर लेंगे। आज राजनैतिक पार्टी को जो वोट मिलता है, वह निष्क्रिय वोट है। आपके विचार हमको मान्य हैं। आपको अपनी सेवा का अधिकार हम देते हैं। बस, खतम हो गया। इससे ज्यादा हम कुछ भी करने के लिए बँधे नहीं हैं। हाँ, आप टैक्स बढ़ायेंगे, तो टैक्स देने के लिए बँधे रहेंगे। पर आप दान माँगेंगे, तो देने के लिए बँधे रहेंगे, ऐसी बात नहीं है। हम कुछ करेंगे, इस प्रकार की प्रतिज्ञा आजकल जो वोट हासिल किये जाते हैं, इन वोटों में नहीं है। आपको अधिकार है, इसलिए आप प्रतिनिधि बनते हैं। हम ऐसी सम्मति नहीं चाहते कि हमारी रक्षा का अधिकार आपको हम दें। तब तो हम एक प्रकार के क्षत्रिय बन जायेंगे। शस्त्र चलानेवाले क्षत्रिय नहीं, पर क्षत्रिय इस अर्थ में कि बाकी के लोग रक्षित और हम रक्षक। यह जो भूमिका आयी, वहाँ हमारा एक वर्ण बन गया। इस तरह हमको रक्षक का अधिकार देनेवाला वोट हम आपसे नहीं माँगते, हमारा कार्य आपको पसंद है, इसलिए आप कुछ करेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा का निदर्शक सम्मतिदान हम आपसे माँगते

हैं। एक टोकन के तौर पर सुझाया कि हमें पाँच मनुष्यों के परिवार से एक गुंडी सूत मिले। उसकी कीमत २० पैसे होती है। केरलवालों ने जो सुझाया, वह बड़ा अच्छा लगा कि हर घर से एक नारियल दिया जाय। यह भी एक शुभ विचार है। मंगल कार्य के लिए नारियल देते ही हैं और यहाँ तो नारियल ही पैदा होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि एक गुंडी या उसका पर्याय रूप, कोई चीज जनता हमें दे, तो हम समझेंगे कि हमारे कार्य के पीछे जनता का आध्यात्मिक बल है, सम्मति है।

भौतिक आधार

हमारे लिए भौतिक आधार क्या है? सर्वोदय विचार की खूबी ही उसका भौतिक आधार है। जब हमको पाँच हजार लोगों से पाँच हजार नारियल मिलेंगे, तो वे ही उनका शारीरिक जीवन का आधार होगा और इतने से पूरा न होगा, तो कुछ संपत्तिदान से दिया जायगा। शान्ति सैनिक जिनकी सेवा में लगेगा, उन सब घरों से उसके लिए सम्मति के तौर पर हर महीने कुछ-न कुछ मिलता रहेगा, वही उसका मुख्य आधार होगा। इसलिए अब आपको कुल भारत में इस तरह से फैल जाना है। सर्व सेवा संघ के सामने हमने यही बात रखी है। फैल जाने का कर्तव्य, नेताओं ने जो संहिता बनायी उसमें आता है। यह मेरा उस संहिता का भाष्य समझ लीजिये। संहिता यह कह रही है कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट्स के काम का और ग्रामदान के काम का सहयोग होना वांछनीय है। इसका अर्थ आप क्या समझे? यह संहिता आपको हिदायत दे रही है कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट पाँच लाख गाँवों मे फैलनेवाला है। कल कम्युनिटी प्रोजेक्ट का अधिकारी आपके सामने आयेगा और पूछेगा कि आपका कुछ सुझाव है? इस पर आप कहेंगे कि हमारा तो ँ पर मनुष्य ही नहीं है। क्या यह कोई सहयोग है? जितने गाँवों में वे ० हैं, उतने गाँवों में आपको भी फैल ही जाना चाहिए। तब तो सहयोग होगा। हम चाहते हैं कि कुल गाँव बनें, न बन सकें तो भी उसकी

हवा जरूर फैले। जो कम्युनिटी प्रोजेक्ट इत्यादि योजना चले, उस योजना को सर्वोदय का रग हो। सब तरफ कम्युनिटी प्रोजेक्ट फैले हों और हम सब दूर न फैले हों, तो उस हालत में हमारा उन पर क्या रग चढेगा? वे कहेंगे कि सर्वोदयवाले कुछ सहयोग करेंगे, ऐसा हम मानते थे। पर अब देखते हैं कि उनकी कोई हस्ती नहीं है। जरा कोरापुट में हैं, तो उनका सहयोग वहाँ पर मिला। इनके कुछ पॉकेट्स हैं। लेकिन सर्वत्र हमको उनका सहयोग नहीं मिल सकता। इसलिए इस सहिता ने हम पर जिम्मेवारी डाली है कि हम हर गाँव में फैलें और उसका यही तरीका है कि ग्रामराज्य हो चुका है, ऐसा हम समझकर चलें। इससे ग्रामदान का और ग्राम निर्माण का कार्य भी जारी रहेगा और ग्राम रक्षण के लिए शाति सेना भी खड़ी हो जायगी। उसका आधार है सम्मतिदान। हम जिसने सम्मतिदान दिया है, नारियल दिया है, उस आदमी ने प्रतिज्ञा की कि आपके पास में हमारा सहयोग होगा, ऐसा हम इसका अर्थ करते हैं। आप काम ही नहीं करते, तो सहयोग किसलिए माँगते हैं? इसलिए जिस क्षेत्र में हम ऐसा काम करना चाहते हैं, उस क्षेत्र में सम्मतिदान की बात करेंगे। ऐसे क्षेत्र बनाते बनाते हम सारे भारत में व्याप्त हो जायेंगे।

सुप्रीम कमांड

श्रद्धेय सेनापति, श्रद्धावान् सैनिक और विशिष्ट क्षेत्र की सेवा योजना यह तीनों जहाँ मौजूद हों, वहाँ उस स्थान के लिए कोई कमाडर मिलेगा, तो उसकी कमाड माननी होगी। सारे भारत की शाति सेना के लिए कोई सुप्रीम कमाड चाहिए, यह परमेश्वर ही करेगा। जिस भाषा में मैं बोल सकता हूँ, उससे दूसरी भाषा में बोलने की ताकत मुझमें नहीं है। फिर भी लक्षण यह दीखता है कि अखिल भारत में शाति सेना के सेनापतित्व की जिम्मेवारी विनोबा को उठानी होगी और वैसी मानसिक तैयारी विनोबा ने कर ली है।

सस्थाओं का समर्पण

मुझे लगता है कि खादी, नयी तालीम, अस्पृश्यता निवारण आदि का काम करनेवाली हमारी जितनी रचनात्मक संस्थाएँ हैं, उन सबको इस काम के लिए

समर्पित हो जाना चाहिए। जो खादी सेवक शांति सैनिक नहीं बनेगा, उसको हम हीन नहीं समझेंगे। वह भी एक सेवक है। सेवा करे। जो खादी सेवक शांति सैनिक बनेगा, वह खादी को जिंदा रखेगा, दूसरा सेवक खादी को जिंदा नहीं रखेगा, बल्कि खादी के जरिये स्वयं जिंदा रहेगा। वह खादी का पालन नहीं करेगा, खादी उसका पालन करेगी। जितने रचनात्मक संस्थाएँ हैं, वे सबकी सब गांधीजी के नाम से निकली हैं। बाबा का उन सब संस्थाओं पर अधिकार है। अधिकार कम बेशी होता है। बाबा का जहाँ अधिक से अधिक अधिकार था, ऐसी एक संस्था का हमने समर्पण करने का सोचा है—ग्राम-सेवा मंडल, गोपुरी (वर्धा)। हमने जग आदि भूदान कार्यकर्ताओं से कह दिया है कि तुम इस संस्था का चार्ज ले लो और फिर जिस तरह से उसे चलाना चाहते हो, भूदान-यज्ञमूलक रूप देने के लिए जो भी परिवर्तन करना चाहते हो, कर सकते हो। इस संस्था में परिवर्तन के लिए जो गुंजाइश है, वह आगे होनेवाली है। पर जब यह प्रस्ताव किया था, तब शांति सेना की बात उस संस्था के सामने हमने रखी नहीं थी। वह हमारे मन में थी। हमने सिर्फ इतना ही कहा था कि भूदानमूलक और अब तो ग्रामदानमूलक ग्रामोद्योग प्रधान शांतिमय क्रांति के लिए इस संस्था का समर्पण हो। इसी तरह दूसरी संस्थावाले भी जरा सोचें और निर्णय करें। धीरे धीरे ग्राम सेवा मंडल की तरह और संस्थाएँ भी ऐसे समर्पित होंगी, जब यह ध्यान में आयेगा कि शांति सेना की बहुत जरूरत है।

विचार-स्वातंत्र्य के लिए आचार-नियमन आवश्यक

सामाजिक जीवन का मूल आधार क्या है? विचार स्वातंत्र्य और आचार नियमन। इसकी सर्वोत्तम मिसाल अपना हिंदुस्तान का धर्म है। हिन्दुस्तान के धर्म में छह छह दर्शन हैं। वे एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन से हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, बौद्ध और जैन। और भी पचासों दर्शन थे, वे अब मौजूद नहीं हैं। बुद्ध के जमाने में कोई पचास तत्त्वज्ञानियों के भिन्न भिन्न तत्त्वज्ञान चलते थे, ऐसा उल्लेख है। तत्त्वज्ञानियों की इस भूमि और संस्कृत

भाषा में हमने खूब विचार-स्वातन्त्र्य देखा, लेकिन उसके साथ साथ आचार-नियमन न होता, तो धर्म के जैसी चीज ही नहीं बनती। इसलिए विचार स्वातन्त्र्य की जो बात हमने सर्वोदय-समाज में रखी थी, उसके साथ साथ शाति सेना के सेनापति का आदेश मानने की बात आज जो हम आपके सामने रख रहे हैं, उसमें विरोध नहीं है। उसका एक सूत्र हमने संस्कृत में बनाया है, जो साम्य सूत्र में दाखिल है—'संयतेन स्वैरम्'। अगर आप विचार में स्वैर रहना चाहते हैं, तो आपको आचार में संयत रहना पड़ेगा। उसकी मिसाल मैं रोज देता हूँ। अगर एक निश्चित रास्ते से घूमने का तय हो, तो विचार बिल्कुल स्वैर नहीं रहता। यही देखना पड़ता है कि कहाँ से रास्ता फूटता है। अपना हमेशा का रास्ता निश्चित है, तो आँख बंद करके मनुष्य चल सकता है और खूब स्वैर चिंतन कर सकता है। रास्ते की कोई चिंता नहीं। रास्ता तय ही है। जहाँ रास्ता तय होता है, निश्चित होता है, मनुष्य आचार में संयत रहता है, वहाँ उसके विचार के लिए बिल्कुल स्वातंत्र्य है। अगर विचार-स्वातंत्र्य हम चाहते हैं, तो उसके साथ आचार नियमन आता है।

मैसूर —निवेदक-शिविर में
२६-६-'५७

शान्ति-सेना के संबंध में स्पष्टता : ३८ :

शान्ति सेना आदि के बारे में आपने बहुत अच्छे सवाल पूछे हैं। कल के व्याख्यान के बाद भी ऐसे सवाल न आते, तो हम समझते कि हमारे सामने कोई मुर्दा वस्तु ही खड़ी है। अब हम आपके सवालों के संबंध में कुछ कहेंगे।

हमारा ध्येय

हमने शासन-मुक्त समाज का ध्येय सामने रखा है। शासन मुक्त समाज शान्ति सेना से भी मुक्त होगा। उसमें सेवक वर्ग रहेगा। अगर किसीसे कोई

गलत बात बनी, तो उसका प्रहार आने पर उठाने के लिए हर घर में लोग रहेंगे। बाप ने कोई गलत काम किया, तो बेटा उसका प्रहार उठाने के लिए तैयार रहेगा और बेटे ने कोई गलत काम किया, तो बाप उसका प्रहार उठाने के लिए तैयार रहेगा। इसी तरह अड़ोसी पड़ोसी को सँभालेगा और एक गाँव दूसरे गाँव को सँभालेगा। ऐसा करने से अंतिम दशा में उस-उस स्थान पर बात सँभल जायगी, तो शांति के लिए दूर से न किसीको आना पड़ेगा और न जाना पड़ेगा। हम उस अंतिम दशा को लाना चाहते हैं।

शब्द-शक्ति

शब्दों के प्रयोग के विषय में कोई बहुत ज्यादा झिझक नहीं होनी चाहिए। शब्द समझाने के लिए होते हैं। उनका अर्थ हम ठीक तरह से समझ लें, तो शब्द शक्ति विकसित होती है। हमारे देश में कुछ शब्द 'वीर-परंपरा' से आये हैं और कुछ शब्द 'संत-परंपरा' से। संत परंपरा के शब्दों में उनकी छाया के तौर पर शब्द-छाया, शब्द के अर्थ की छाया और अर्थ के तौर पर दुर्बलता भी दीख पड़ती है। नम्रता, दीनता, हीनता, निरहंकारिता, शून्यता, अनाक्रमणशीलता, शरणता, अपने लिए तुच्छता, आत्मनिंदा इत्यादि शब्दों का उपयोग संत हमेशा करते हैं। उनके साथ-साथ बुरे भाव भी प्रकट होते हैं। आक्रमणकारिता, अहंकार, सत्ता लोगों पर लादने की वृत्ति आदि भाव शौर्य, धैर्य, वीर्य, पराक्रम के साथ-साथ वीर-परंपरा में आते हैं। ये दोनों परंपराओं से प्राप्त शब्द हमारे लिए अत्यंत पवित्र हैं, यह समझना चाहिए। अगर हम इनमें से किसी भी परंपरा के शब्द तोड़ेंगे, तो हमारी हालत पर कटे पक्षी की तरह हो जायगी। 'महावीर' शब्द को ही लीजिये। यह संज्ञा सिर्फ दो को ही लागू होती है। एक हैं परिपूर्ण अहिंसा में माननेवाले जैनों के तीर्थंकर महावीर और दूसरे रामायण के अधिष्ठाता आर्य हनुमान्। एक संत-परंपरा के, दूसरे वीर परंपरा के। दोनों भक्त शिरोमणि! अब क्या 'वीर' शब्द को हम कमजोर समझेंगे? अतः शान्ति-सेना के प्रसंग में आये कमान आदि शब्दों से किसीको घबराना नहीं चाहिए। जो शब्दों से डरेंगे, वे निर्भयता खोयेंगे।

बाबा की जिम्मेवारी

बाबा जब बोलता है, तो इम्पर्सनल (अवैयक्तिक) बोलता है, पर्सनल (वैयक्तिक) भाषा नहीं बोलता। बाबा की अपनी वृत्ति है और वह यह कि दुनिया में कितनी भी कत्ल चले, तो भी बाबा दिन में तीन दफा खाता रहेगा। यह इसलिए कि बाबा मुख्यत. सीखा है वेदान्त और उसके बाद अहिंसा। गाधीजी ने अहिंसा बाद में सिखायी। उससे पहले वह वेदात सीखा हुआ था। इसलिए बाबा से पूछा जाय कि कमान हाथ में लेने का क्या अर्थ है, तो वह जवाब देगा कि उसका अर्थ है किसी मौके पर अतिम अनशन का जिम्मा उठाना। मान लीजिये, किसी जगह भयानक घटना घटी, तो बाबा से पूछने पर वह कहेगा कि सत्याग्रह की परपरा में उपवासादि आता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध अपनी आत्मा मे पहुँचता है। पाप की जिम्मेवारी अपने पर आती है, इसलिए पाप क्षालन करना पड़ता है। तो, हिंसा के खिलाफ कहीं न कहीं अनशन आदि बातें खड़ी हो सकती हैं। क्योंकि उस परिस्थिति में अतिम अनशन के सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता। कुल स्वभाव देखते हुए यह कहा जा सकता है कि किसी भी पाप की जिम्मेवारी अपने पर लेने की वृत्ति बाबा की नहीं है, फिर भी बाबा को जिम्मेवारी लेना है, क्योंकि परिस्थिति मे कुछ गभीरता है और इसलिए अपने निज स्वभाव के विरुद्ध कुछ जिम्मेवारी उठाने के लिए वह अवैयक्तिक रूप से तैयार हो रहा है।

कमाड का प्रश्न !

शाति-सेना में एक मुख्य कमाडर (सेनापति) होता है, तो बीच में और भी होंगे क्या ? होंगे और हो भी चुके हैं। केरल में नौ मनुष्यों ने सभा के सामने खड़े होकर हमारी उपस्थिति में यह प्रतिज्ञा ली कि अनुशासन मानने की बात के साथ हम शाति-सेना में दाखिल होते हैं। इस तरह जहाँ तक केरल का सवाल है, वहाँ पर केलप्पन को नेता के तौर पर माना गया। अपनी-अपनी टोली बनाकर मार खाने के लिए खड़े होने की बात चल पड़ी है। परन्तु वैसे देखा जाय, तो अहिंसा की कमाड में अपनी आत्माहुति के सिवा

और कोई कमांड नहीं आती। वे सब छोटी-छोटी बातें हैं। वे भी जरूरी हैं, इसलिए कमांड शब्द लागू होता है।

कल दादा से बात हो रही थी। उन्होंने पूछा कि क्या आज्ञा से बलिदान देने की तैयारी हो सकती है? अगर हो भी तो क्या उस बलिदान में हृदय प्रेम से भरा हुआ रहेगा? हमने जवाब में बताया कि स्वतंत्र चिंतन से यह होने का जितना संभव है, उससे लेशमात्र संभव आज्ञा से होने में नहीं है। रामजी जैसा कार्य ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं, हनुमान्‌जी वैसा ही कार्य श्रद्धापूर्वक कर सकते हैं। रामायण में जितनी महिमा राम की है, उतनी ही महिमा हनुमान् की है। इस विषय में गांधीजी के साथ हमारी जो चर्चा हुई, उसका जिक्र मैं यहाँ करूँगा।

सन् १९४२ के आन्दोलन से पहले की बात है। गांधीजी का खयाल था कि इस वक्त जेल में जाते ही उपवास आरंभ कर देंगे। बलिदान की तैयारी कोई बड़ी बात नहीं है, परन्तु जिसके हृदय में प्रेम भरा हो, वही बलिदान कर सकता है। प्रेमयुक्त बलिदान कौन कर सकता है? कोई व्यक्ति कर भी सकता है, तो क्या उसका आन्दोलन हो सकता है, यह सवाल उठा। गांधीजी समझते थे कि यह हो सकता है और इसका आरंभ अपने से ही होगा। उपवास का आरंभ बापू ही करेंगे। इससे कुल लोग घबड़ा गये, जो लाजिमी ही था। सब लोग चाहते थे कि किसी न किसी तरह यह टले। कम-से-कम बापू उपवास न करें। 'उपवास का सिलसिला नहीं बन सकता, उपवास करनेवालों की सेना नहीं बन सकती, ऐसे काम आज्ञा से नहीं हो सकते,' ऐसा विचार बापू के इर्दगिर्द के लोगों का था। इसमें केवल बापू को बचाने की कोशिश नहीं थी, बल्कि वह विचार ही था। उस समय बापू ने मुझे बुलाया। मेरे सामने अपनी बात रखी। सवाल यह था कि जो काम ज्ञानी मनुष्य ज्ञानपूर्वक कर सकता है, वही काम क्या अनुयायी श्रद्धा से कर सकते हैं? मैंने जवाब दिया कि "जी हाँ, कर सकते हैं। जो काम रामजी ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं, वही काम हनुमान् श्रद्धापूर्वक कर सकते हैं।" बात वहीं समाप्त हो गयी। उसके बाद नौ अगस्त का दिन आया। बापू पकड़े गये। उस वक्त प्यारेलाल बाहर थे। बापू

ने प्यारेलाल से कहा कि विनोबा को इत्तला दो कि जेल में जाते ही उपवास न करे। उन्होंने मान ही लिया था कि जब वह शख्स मेरे साथ चर्चा करके गया है, तो उपवास जरूर करेगा। उन्होंने कोई कमांड (आदेश) नहीं दिया था। परन्तु जो कमांड से भी ज्यादा दिया जा सकता था, वह दिया था। सलाह पूछना कमांड से कम नहीं था।

नौ अगस्त के दिन ही हम भी जेल में गये। दादा साथ थे। जेल में जाते ही हमने जेलर से कहा: "तुम तो मुझे जानते हो कि मैं जेल के हर नियम का बारीकी से परिपालन करनेवाला हूँ। दूसरों से करवानेवाला भी हूँ। इसलिए मेरे जेल में आने पर तुम्हारा काम मिट जाता है। परन्तु इस वक्त वह नहीं होनेवाला है। मैंने सुबह तो खा लिया था, इसलिए दोपहर का सवाल नहीं; पर शाम को नहीं खाऊँगा और कब तक नहीं खाऊँगा, मैं नहीं जानता। यह आपका अनुशासन तोड़ने के लिए जरा भी नहीं है। मेरा एक अनुशासन है, उसे मानने के लिए है।" यों कहकर मैं अन्दर चला गया। दो घंटे के बाद बुलावा आया। बापू ने प्यारेलाल से जो कहा था, वह संदेश उन्होंने किशोरलाल भाई के पास भेजा, क्योंकि वे वर्धा में थे। किशोरलालभाई ने डिप्टी कमिश्नर से पूछा, डिप्टी कमिश्नर ने गवर्नर से पूछा कि क्या इस तरह सूचना दे सकते हैं, तो गवर्नर ने कहा कि हाँ, दे सकते हैं; बशर्ते कि एक शब्द भी अधिक न बोला जाय। मुलाकात वगैरह कुछ न हो, सिर्फ इतना ही कहा जाय कि बापू का आदेश है कि उपवास नहीं करना। डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि ठीक है, मैं उन्हें कहूँगा। किशोरलालभाई ने कहा कि इस तरह आपके समझाने से विनोबा नहीं मानेगा, इसलिए हममें से किसीको जाना होगा। फिर बालुंजकर आये। उन्होंने बापू का आदेश सुनाया। तो मेरा वह उपवास नहीं हुआ।

बाद में जब बापू ने उपवास शुरू किया, तब मैंने भी शुरू किया। बापू ने जितने आनन्द से उपवास किया, मेरा दावा है कि मेरे उपवास में उससे लेशमात्र कम आनन्द नहीं था, ज्ञान तो मेरे पास है नहीं। आप जानते हैं कि ज्ञान तो उनके पास था, परन्तु श्रद्धा से मैंने माना था। मैंने उसे हुकम समझा था।

चाहे आप यह शब्द इस्तेमाल करें या न करें। उससे उसका पूरा अर्थ प्रकट नहीं होता है। परन्तु मैंने यह इसलिए कहा कि श्रद्धा से आज्ञा समझकर अत्यन्त आनन्दपूर्वक और प्रेमपूर्वक अपना बलिदान किया जा सकता है। कोई ज्ञानपूर्वक काम करे, तो उसके ज्ञान में संशय आ सकता है। मुझे आदेश देनेवाले बापू के, ज्ञानी के चित्त में कोई शंका हो, ऐसा उन्हें लग सकता है, परन्तु श्रद्धावाले के चित्त में कोई संदेह पैदा नहीं हो सकता। इसलिए इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि आज्ञा से यह काम किया जा सकता है।

सर्वोदय समाज का लक्षण

अब यह आज्ञा कौन करे, किसे करे, उसका क्षेत्र क्या होगा आदि सवाल उठ सकते हैं। अगर हम किसीसे कहें कि कुएँ में कूदकर मर जाओ, तो कोई श्रद्धा से इस आज्ञा का पालन कर सकता है। परन्तु हम किसीसे यह नहीं कह सकते हैं कि फलानी चीज को ज्ञान न हो, तो भी ज्ञान मानो। ज्ञान के बारे में आज्ञा हो ही नहीं सकती, याने वह असम्भव वस्तु है। फिर भी कुछ लोग धर्मान्तर आदि जबर्दस्ती से करते हैं। जिस इसलाम के लिए इतिहास में यह जाहिर है कि उसने करोड़ों का जबर्दस्ती से परिवर्तन किया, उस इसलाम ने कहा है कि 'ला इकराह फिद्दीन'। धर्म के बारे में कभी जबर्दस्ती नहीं हो सकती। "जो मनुष्य कोई चीज नहीं समझ रहा है, उसे अगर कोई ऐसी आज्ञा दे कि तू समझ, तो वह कहेगा कि आज्ञा से समझने की बात होती, तो तुम्हारे लिए मुझे इतना आदर है कि मैं वह बात फौरन समझ जाता। पर अब नहीं समझ रहा हूँ।" विचार के क्षेत्र में परिपूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यह सर्वोदय समाज का बहुत बड़ा लक्षण है। उसमें हम किसी तरह से कसर नहीं आने देंगे।

सौम्य अर्थ लें

क्या पचविध निष्ठावाले लोकसेवक काफी नहीं हैं? उनके होते हुए शांति-सेना की क्या जरूरत है? इसमें शांति सेना के मूल विचार पर ही प्रहार है। इस पर मुझे यह कहना है कि कुछ मौके ऐसे होते हैं कि वहाँ अगर देर हो जाय, तो काम नहीं होता। नेपोलियन से जब पूछा गया कि वॉटरलू की लड़ाई में

तुम्हारी पराजय किस कारण से हुई। उसने कहा कि मार्शल ने ७ मिनट देर की, इसलिए। पहले से हमारी ऐसी व्यवस्था हुई थी कि फलानी जगह फलानी सेना फलाने वक्त आयेगी, पर उसके आने में सात मिनट देर हुई। खैर, इतना शाब्दिक अर्थ लेने की जरूरत नहीं है। परन्तु ऐसे मौके आते हैं, तो थोड़े ही समय में सेना भेजने की जरूरत होती है। इसलिए कमाड शब्द इस्तेमाल किया गया। अब उसका जो सौम्य-से सौम्य अर्थ आप ले सकते हैं, वह लें।

मैसूर
२७-९-'५७

—गुजरात के कार्यकर्ताओं के बीच

शान्ति-सेना में कर्तव्य-विभाजन और विचार-शासन : ३९ :

प्रश्न : आपने चाडिल में विचार शासन और कर्तृत्व विभाजन की बात कही थी, अब आचार नियमन की बात कर रहे हैं। तो क्या चाडिलवाली प्रक्रिया कायम है या उसमें कोई फर्क पड़ा है?

कर्तव्य

उत्तर : शाति सेना की रचना में परिपूर्ण कर्तृत्व विभाजन है। खयाल यह है कि सारा हिंदुस्तान ७० हजार हिस्सों में विभाजित किया जाय और उस उस हिस्से में एक एक मनुष्य रहे। वह अपनी स्वतंत्र बुद्धि से वहाँ काम करे। उसे बुद्धि की कोई सप्लाई (रसद) कहीं से पहुँचाने की कोई योजना हमारे पास नहीं है। वह अपने लिए, अपने सिद्धांतों के लिए और उस समूह के लिए जिसका वह सेवक है, स्वतंत्र रीति से जिम्मेवार है। अगर वह स्वतंत्र न हो, तो वहाँ काम कर ही नहीं सकेगा। उसे कुछ सूझेगा भी नहीं। हर मौके पर वह सवाल पूछेगा, तो उत्तर देनेवाला उत्तर दे भी नहीं सकेगा। उत्तर देनेवाला उस स्थान में तो नहीं रहेगा। इसलिए पूरी जिम्मेवारी, कर्तृत्व विभाजित होता है। विचार शासन उसके लिए प्रमाण है। अपने विचार से वह सबकी निरंतर सेवा करे, सबके परिचय में रहे, सबके गुण दुर्गुण को पहचाने, सबके गुण से गुणी

हो, सबके दुःख से दुःखी हो, उसका अपना कोई सुख दुःख न हो। मौके पर अत्यन्त प्रेमपूर्वक, निर्वैरभाव से नहीं, बल्कि मातृवत् वात्सल्य भाव से अपना बलिदान देने के लिए तैयार रहे। इसके सिवा दूसरा कोई शासन उसके पास नहीं है। इस तरह विचार शासन और कर्तृत्व-विभाजन की परिपूर्ण योजना शान्ति सेना में है। जहाँ आप इस प्रकार का आयोजन करते हैं, उन (हिंसक) पल्टनों का आयोजन इस प्रकार से नहीं होता है। उन्हें एकत्र रखा जाता है। विशेष प्रकार से ट्रेनिंग दी जाती है। उन्हें यान्त्रिक बनाया जाता है, बाहर के किसी विचार का उन्हें स्पर्श न हो, ऐसी योजना की जाती है, जिससे कि उनमें बुद्धि-भेद पैदा न हो। परन्तु हमारी योजना में तो विश्व में जो विचार-प्रवाह चलते हैं, जिनकी प्रतिक्रियाएँ समाज के चित्त पर होती हैं, उन सबका जाग्रत भाव से, स्वतंत्र बुद्धि से, विश्लेषणपूर्वक चिंतन करना सेवकों का कर्तव्य है। किसी भी विचार को ग्रहण करने के लिए या उसका परित्याग करने के लिए वे मुक्त हैं। इसलिए अगर कोई शान्ति सैनिक किसी हकीकत से परिचित नहीं रहेगा, तो उसकी यह अक्षम्य गल्ती मानी जायगी। दुनिया के किसी ज्ञान से उसे वंचित रखने की बात नहीं है। बल्कि दुनिया के कुल ज्ञान से उसे अपने-आपको परिचित रखने की बात है। तिस पर भी यह कमाण्ड कहाँ आती है?

सहायक कैसे हों?

एक क्षेत्र में काम करनेवाला सेवक अपने क्षेत्र में बाहरी मदद चाहता है, तो उसे तुरन्त मदद भेजी जानी चाहिए। वह मदद ऐसे लोगों की पहुँचनी चाहिए, जो कि श्रद्धालु हैं। हम दूसरे के क्षेत्र में जाकर चिकित्सक बुद्धि का उपयोग नहीं कर सकते। वहाँ जाकर वहाँ काम करनेवाले मनुष्य की कमाण्ड (आज्ञा) माननी होती है। उसके अनुकूल होना होगा, क्योंकि उसे मदद देनी है। इसलिए वह श्रद्धा से काम करनेवाला होना चाहिए। और उसे आदेश देकर उस स्थान में तुरन्त भेजनेवाली कोई एजेन्सी चाहिए। फिर वह एजेन्सी किसी व्यक्ति की हो, तो अधिक श्रद्धास्पद होगी या किसी समूह की हो, तो अधिक श्रद्धास्पद होगी। इसका निर्णय मानव को अभी करना बाकी है।

अवीर-पूजा का भय

वीर पूजा नहीं होनी चाहिए, ऐसा आजकल बहुत बोला जाता है। परन्तु ऐसा तभी तक बोलते रहेंगे, जब तक कोई वीर सामने खड़ा नहीं होता। हम खूब ऐंठ करें कि हम निर्गुण पूजक हैं, सगुण पूजक नहीं हैं। परंतु यह तभी तक चलता है, जब तक सगुण का साक्षात्कार नहीं होता। जहाँ सामने सगुण खड़ा होता है, वहाँ हमने ऐसा कोई निर्गुणवादी नहीं देखा, न सुना, जिसका सिर वहाँ न झुका हो। यह हर क्षेत्र में होता है। इसलिए वीर पूजा का उतना डर नहीं है, जितना अवीर पूजा का है। अवीरों का महत्त्व सामूहिक योजना के कारण बढ़ता है।

लोग चुने जाते हैं। जो चुने जाने के लायक हैं, वे उससे अलग रहते हैं। और जो वास्तव में लायक नहीं हैं, वे चुने जाते हैं। इसलिए सामूहिक योजना विश्वसनीय है कि कोई श्रद्धेय व्यक्ति विश्वसनीय है, इसका निर्णय अभी समाज को करना बाकी है।

व्यक्ति या विचार ?

सामूहिक योजना से फैसला हो, तो अधिक स्फूर्ति आती है। उतनी व्यक्ति निरपेक्षता वास्तव में हममें आती हो, तो अच्छा ही है। हमें व्यक्ति-निरपेक्ष जरूर बनना चाहिए। जहाँ तक विचार का ताल्लुक है, विचार विरुद्ध व्यक्ति, ऐसा सवाल खड़ा हो, तो विचार ही प्रधान है। व्यक्ति की कोई हैसियत नहीं है। एक जगह विचार के साथ व्यक्ति है और दूसरी जगह व्यक्तिहीन विचार है, क्योंकि हम स्वयं देहधारी हैं, इसलिए हमारे लिए विचारयुक्त व्यक्ति अवश्य श्रद्धेय साबित होगा। ऐसी अभी तक समाज की स्थिति है। आगे विचार की निष्ठा सर्वत्र फैली हुई होगी, एक-दूसरे से विचार विमर्श करने की भी जरूरत नहीं रहेगी। उस हालत में समाज आगे बढ़ सकता है। बौद्ध धर्म में भी 'बुद्ध शरणं गच्छामि' से आरम्भ किया गया। हमें समझना चाहिए कि एक बिन्दु होता है, जहाँ मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती। वैसे बुद्धि बहुत काम करती है, यह बलवान् है। परन्तु एक बिन्दु ऐसा उपस्थित होता है, जहाँ

बुद्धि काम नहीं करती। वहाँ श्रद्धा काम देती है। यह श्रद्धा का तत्त्व बुद्धि के विरुद्ध नहीं है, बुद्धि का सहायक है। अब सवाल इतना ही है कि एक मध्यवर्ती एजेन्सी खड़ी हो, जो लोगों को सूचना दे कि फलानी जगह फलाने दस मनुष्यों को जाना है। उस एजेन्सी के जरिये आदेश मिलने पर कार्य को छोड़कर अपने कुटुम्ब का भी परित्याग करके जाना होगा। इसमें अपना बलिदान देना, यह बहुत बड़ी बात नहीं है। परंतु कुटुम्ब का परित्याग करना कठिन है। बहुत से कुटुम्बवाले गृहस्थ ही होते हैं। उस हालत में अपना छोटा बच्चा, जिसे अभी ससार में आये १२ दिन हुए हैं और जिसकी माता लाचार पड़ी है और उधर से हुक्म आया, तो यह सब छोड़कर जाना होगा।

श्रद्धेय की समर्थ प्रेरणा

'अमृतानुभव' के एक वाक्य में ज्ञानदेव ने गुरु का वर्णन किया है: 'श्रातां उपाय वन वसंतु। श्राज्ञेचा श्राहेव तंतु।' गुरु उपायरूपी वन का वसत ऋतु है। जैसे वसत के होने से सारा वन प्रफुल्लित हो उठता है, वैसे ही गुरु के होने से शिष्यों को साधना करनी ही नहीं पड़ती। एकदम साधना का उत्कर्ष होता है। गुरु-दर्शन से, गुरु की मदद से साधकों की साधना प्रफुल्लित हो उठती है। यह तो गुरु का एक वर्णन हुआ। और दूसरा वर्णन है, 'श्राज्ञेचा श्राहेव ततु।' आशा कोई स्त्री है, ऐसा मानो। 'आज्ञा' शब्द स्त्रीलिंग है भी। स्त्री का सौभाग्य ततु माना गया है पति। यह पुरानी भाषा है। इसलिए पुरानी दृष्टि से ही उसकी ओर देखिये, आधुनिक दृष्टि से नहीं। ज्ञानदेव ने लिखा है कि अगर गुरु नहीं होते, तो आज्ञा विधवा हो जाती। दुनिया में किसीकी आज्ञा नहीं चलती, सिर्फ गुरु की चलती है। क्योंकि गुरु में ज्ञान है, सत्य है, प्रेम है और सत्ता बिल्कुल ही नहीं है। ये सब जहाँ इकट्ठा होते हैं, वहाँ आज्ञा बिलकुल टाली ही नहीं जाती। दुनिया में आज्ञा अगर कहीं सौभाग्यवती है, तो गुरु के कारण है। किसी सरकार के कानून का ऐसा अमल नहीं होता, किसी सेनापति के हुक्म का वैसा पालन नहीं होता, जैसा गुरु के वचन का होता है। मनुष्य को अपना उत्सर्ग करने की प्रेरणा होती है, यह एजेन्सी के

जरिये कम होती है। इसलिए आखिर किसी श्रद्धेय व्यक्ति का नाम लेना होता है। इसके सिवा कहीं भी, शांति सेना में भी, आज्ञा का नाम आता ही नहीं।

आज्ञा-पालन की मर्यादा

एक सवाल यह खड़ा होता है कि एक दफा आज्ञा की आदत पड़ गयी, तो उसके परिणामस्वरूप क्या सैन्यीकरण नहीं आयेगा? क्या जीवन के दूसरे क्षेत्रों में उसका स्पर्श नहीं होगा? सोचने की बात है कि अगर तैरने के लिए यह विधान बताया कि आपको नदी में खड़े नहीं होना है, लेटना है, तो क्या आपको लेटने की आदत पड़ जायगी और किनारे पर भी आप लेटेंगे? लेटने का विधान नदी तक ही सीमित है। किनारे पर आने पर तो खड़े होना है। जीवन का कुल-का कुल विभाग जिसका आबाद होगा, वही शांति सेना का आज्ञा पालन कर सकेगा। जो बुद्धू होगा, गुलाम होगा, हर मौके पर सिर झुकाता होगा, स्वतन्त्र चिंतन नहीं करता होगा, वह इस आज्ञा का पालन कभी नहीं कर सकेगा। जिसका सिर पचास मौके पर झुकता है, वह भगवान् के सामने कभी नहीं झुकेगा। जिसे गुलामी की आदत पड़ गयी, वह ऐन मौके पर आज्ञा का पालन करने में असमर्थ साबित होगा। शांति सेना में आदेश दिया जायगा कि फलानी जगह जाकर काम करो। तो क्या आपको वहाँ जाकर मर मिटना है? यही काम सौंपा गया है? आपको आदेश दिया जायगा कि अपनी बुद्धि का परिपूर्ण उपयोग करते हुए कृपा करके जीवित वापस आइये। वह आप नहीं कर सकेंगे, तब बलिदान करने की बात आयगी। आपको यह आदेश नहीं जायगा कि वहाँ जाकर नजदीक कहीं नदी देखो और डूब मरो। जहाँ दूसरी किसी भी प्रकार की मदद पहुँचाये बिना, कोई आयोजन किये बिना आपको एक पागल समाज के सामने फेंक दिया जाता है, वहाँ आपको अपनी बुद्धि की, स्वतन्त्र विचार की पराकाष्ठा करनी होगी। आपको प्रत्युत्पन्नमति होना होगा। कर्म कुशलता वहाँ कसौटी होगी। आप योगी हैं, यह बात उस मौके पर सिद्ध या असिद्ध होगी।

भाषा में कमांड शब्द है। पर भाषा तो समझाने के लिए इस्तेमाल की जाती है। ईसामसीह ने 'कमांड' शब्द इस्तेमाल किया था। अंतिम समय उन्होंने अपने शिष्यों से कहा: तुम एक-दूसरे पर प्रेम करो। 'ए न्यू कमांडमेंट

आइ हैव गिवेन टु यू।' फर्मान यही है कि प्रेम करो। यह बिल्कुल प्रेम की परिभाषा है। नानक ने भी 'हुक्म' शब्द इस्तेमाल किया है। एक प्रसंग आता है कि जहाँ गुरु, परमेश्वर, सत्य इनमें भेद ही नहीं रहता है, ये सब पर्याय रूप हो जाते हैं। ऐसी निष्ठा जब पैदा होती है, तब मनुष्य अपने को झोंक देता है। इसलिए शांति सेना में विचार की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं आती है। मैन्यी-करण का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता है।

हनुमान् की प्रक्रिया

जगह-जगह नेता बनाये जायँ, यह जरूरी नहीं है। परन्तु जगह-जगह गुरु—मार्गदर्शक उपलब्ध हों, तो खुशी की बात है। ऐसे उपलब्ध न हों, तो उनकी जरूरत भी नहीं है। परन्तु अगर हों तो क्या हर्ज है? आपके पास संदर्भ के लिए कोष पड़ा है, तो उससे आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। वह कोष आपसे यह नहीं कहेगा कि आप कौनसा शब्द इस्तेमाल करें। आप विचार करें। जहाँ आपको जरूरत पड़े, वहाँ उसका संदर्भ लिया जाय। वैसे ही कोई नेता हो, तो तात्कालिक संदर्भ के लिए आपके पास कुछ है, इतना ही समझना चाहिए। शांति सेना के काम में आपको दो शब्द कहे जायँ कि 'वहाँ पहुँचो।' इसके सिवा और कोई आज्ञा नहीं होगी। कोई बौद्धिक मदद भी आपको नहीं मिलने-वाली है। कुल की कुल बौद्धिक मदद आपको अन्दर से निकालनी पड़ेगी। नहीं तो ऐसे ख्याल से कोई शांति सैनिक बनेगा कि इसमें सोचने की बात नहीं है, बाबा आज्ञा देता रहेगा, तो वह इसे ठीक समझा नहीं। अपनी बुद्धि का पूर्ण उपयोग करने की आपकी जिम्मेवारी रहेगी। आप बिलकुल एकाकी भेजे जायँगे। हनुमान् को लंका भेजा गया। तुलसीदास ने लिखा है कि जगह-जगह हनुमान् 'अति लघु रूप धरि' पैठते थे। रूप तो उनका पहले से ही विशाल था। परन्तु उसे वे वहाँ प्रकट नहीं करते थे, लघु रूप प्रकट करते थे। ऐसे मौके पर लघु रूप प्रकट करना बुद्धि का लक्षण है, वह बुद्धि आपमें होनी चाहिए। फिर कहीं विभीषण देखना चाहिए, जो कि अपने लिए सहानुभूतिवाला हो, तो वहाँ पाँव रख सकेंगे। शांति-सेना के सैनिक की सारी प्रक्रिया याने हनुमान् की प्रक्रिया

है। इस तरह बहुत कुशलता से काम करना होगा। वह काम सैनिक की बुद्धि से होगा। जहाँ बुद्धि से काम न हो, वहाँ प्राणार्पण करने की जरूरत पड़ेगी, तो वह किया भी जायगा। उसका फल स्थूल रूप से मिलेगा या नहीं, इसकी कोई परवाह नहीं है। वह परमेश्वर की योजना में मिलेगा ही। केवल बलिदान का परिणाम नहीं होगा, शुद्ध बलिदान का परिणाम होगा।

मसूर
२७-६-'५७

सही समझ

: ४० :

प्रश्न : यदि कोई पार्टी अहिंसा में न मानती हो और अपने संविधान में भी हिंसा का विरोध न करती हो, तो क्या उस पार्टी के सहयोग से साधन शुद्धि होगी ?

उत्तर : हिन्दुस्तान में कोई पार्टी अहिंसा में विश्वास रखनेवाली है, ऐसा ज्ञान मुझे नहीं है। शान्तिपूर्ण और वैध उपायों को माननेवाले लोग हैं। अहिंसा में विश्वास रखनेवाले लोग काग्रेस में हैं, ऐसा मैं जानता और मानता हूँ। दूसरी पार्टियों में भी वैसे कुछ व्यक्ति हैं। गाधीजी ने काग्रेस के विधान में 'शान्तिपूर्ण और वैध उपाय' की जगह 'अहिंसात्मक और सत्यमय' शब्द रखने का सुझाव दिया था, लेकिन उस सुझाव को स्वीकार नहीं किया गया। शातिपूर्ण और अहिंसात्मक मे अतर है, इसी तरह वैध और सत्यमय में भी अतर है। शब्दों के अतर कोष पर से नहीं मालूम होते। वे तो प्रत्यक्ष अनुभव से, व्यवहार से और वृत्ति से मालूम होते हैं। अग्रेजी में सभव है 'ट्रूथफुल' और 'लेजिटिमेट' एव 'पीसफुल' और 'नानवायलेंट' का अर्थ एक ही होता हो, परन्तु वह दूसरे सदर्भ में है। काग्रेस के और देश के संदर्भ में वे दोनों शब्द एक नहीं हैं। यह अन्वयव्यतिरेक से सिद्ध हुआ है। अगर वे दोनों शब्द एक ही होते, तो बापू की सूचना या तो निरर्थक मानी जाती या ऐसे ही स्वीकार हो जाती। परन्तु उनकी सूचना [illegible]

मानी गयी और उसका अस्वीकार किया गया। परमेश्वर की कृपा से अहिंसा में माननेवाले कुछ व्यक्ति हर जगह मौजूद हैं, जो हर जमाने में और हर देश में होते हैं। शायद इस देश में कुछ अधिक तादाद में हैं।

सुप्रीम कमांड का अर्थ

प्रश्न : आपने सुप्रीम कमाड की बात जिस तरह समझायी, उसका अर्थ होता है, आत्मसमर्पण करना। क्या आदेश देने के इस प्रकार में प्रेम का अभाव कहीं होगा? उसमें क्या प्रेरणा मिलेगी?

उत्तर : हमने मामूली कमाड की बात नहीं की, सुप्रीम कमाड की बात की है। वह छोटी-छोटी चीजों में दखल देनेवाली नहीं है। वह जितनी कम दखल देगी, उतनी ज्यादा सुप्रीम होगी। इसलिए सुप्रीम कमाड का डर रखने का कोई कारण नहीं है। हम अपने मन को अंतिम बलिदान के लिए तैयार रखें। गुरु की तलाश याने शिष्यत्व की प्राप्ति का प्रयत्न। सुप्रीम कमाड याने आखिरी प्रयत्न के लिए अपने मन को तैयार रखना। इसके सिवा उसका ज्यादा अर्थ मत करो।

आज की आवश्यकता

प्रश्न : हम जिस शासन मुक्त समाज को आदर्श मानते हैं, उसमें अंततोगत्वा न आदेश रहेगा, न कोई आदेशक। हर व्यक्ति अंत प्रेरणा से तथा निजी अभिक्रम से व्यवहार करेगा। ऐसी अवस्था में शाति सैनिक के गुणों से युक्त अनेक व्यक्ति समाज में रहेंगे, लेकिन शाति सेना जैसी कोई सघटना, फिर वह कितनी भी लचीली क्यों न हो, नहीं रहेगी। ऐसी अवस्था में क्या हम शान्ति सेना के सगठन को सक्रमण अवस्था का प्रतीक मान सकते हैं?

उत्तर : अभी जो ऐटम, हाइड्रोजन बम वगैरह तैयार हुए हैं, उनके परिणामस्वरूप शासन मुक्त समाज जल्दी आने का सभव हो गया है। इससे समाज को ही मुक्ति मिल जायगी और किसी मसले पर सोचने का कोई कार्यक्रम नहीं रहेगा। इसलिए अततोगत्वा क्या होगा, इस बारे में मैं कभी नहीं सोचता। सक्रमण अवस्था में क्या करना है, यह भी नहीं सोचता। क्योंकि सक्रमण अवस्था

एक सनातन अवस्था है, वह भूतकाल और भविष्य के बीच का काल है। हर कोई काल संक्रमणकाल है। इसलिए मैं वर्तमान परिस्थिति, आवश्यकता के विषय में ही सोचता हूँ। भूदान यज्ञ किसी सूरत में शुरू नहीं होता, अगर तेलंगाना की वह घटना नहीं बनती और उस दिन जमीन की माँग न होती। कार्यक्रम परिस्थिति के अनुसार प्रकट होता है। उसे परिस्थिति के अनुसार बदल भी सकते हैं। आज हिंदुस्तान की परिस्थिति शांति सेना की माँग कर रही है। वह माँग अगर पूरी हो जाय, शांति स्थापित करने का प्रसंग न आये, तो यह शांति सेना सेवा-सेना बन जायगी। उसके बाद सेवा के भी प्रसंग नहीं आयेंगे, सब लोग अपना अपना काम कर लेंगे, तो सेवा सेना की जरूरत भी नहीं रहेगी। एकरस समाज, सर्वोदय समाज बन जायगा। धीरे धीरे एकरसता, एकरूपता आती जायगी और विविध भेद लीन होते जायेंगे। उस अंतिम अवस्था में तो जो किसान होगा, वही तत्त्वज्ञानी होगा, वही शांति सैनिक होगा, वही सत्याग्रही होगा। एक में सारे समा जायेंगे। ऐसा वह परिपूर्ण होगा। परन्तु आज की अवस्था में यह नहीं है। इसी वजह से हमारा ग्रामदान, ग्रामराज्य कुल-का कुल खतरे में है।

आजकल कुछ लोग अहिंसा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। कुछ माधुर्य पैदा कर रहे हैं। क्षाराम्बु में शहद के बिंदु डालकर माधुर्य लाने की कोशिश कर रहे हैं। उनकी यह चेष्टा 'चेष्टा' ही होगी। इसलिए अहिंसा का कानून निर्माण होना चाहिए। चंद लोग अहिंसा का काम कर रहे हैं। इतने से अब नहीं चलेगा। हरएक के मन में अहिंसा का भाव आने में देर भी हो, परन्तु आज देश पर अहिंसा का प्रभाव पड़ना चाहिए। इसलिए शांति-सेना का कार्यक्रम बहुत दूर का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि आज का है।

शान्ति-सैनिक की जिम्मेवारी

प्रश्न : क्या इमर्जेंसी (संकट) के समय सत्याग्रही सेवकों पर 'शांति सैनिक'

चनने की पूरी जिम्मेवारी नहीं सौंपी जा सकती ? यह डुप्लीकेशन (दोहरा काम) किस कारण किया जा रहा है ?

उत्तर : शांति की जिम्मेवारी किस पर कौन डालेगा ? जो शांति-स्थापना की जिम्मेवारी उठायेगा, उसी पर उसका जिम्मा डाला जायगा। ज़िम्मेवारी उठानेवाला शख्स पहले से ही शांति सेना का सैनिक हो और पंचविध निष्ठा माननेवाला हो, यह जरूरी नहीं है। एक पापी, पतित, दुराचारी भी ईमानदार हो सकता है। वह ईमानदारी से अपने पाप में बरतता है। कहीं वैमनस्य पैदा हुआ, तो उसकी भी अंतरात्मा में चिनगारी पैदा हो सकती है और वह शांति-स्थापना के लिए अपना बलिदान दे सकता है। उसको बलिदान करने का अधिकार है। सम्भव है कि उस बलिदान से उसी एक क्षण में वह समाज में शांति की स्थापना कर सके और अपने पूर्व पापों का दहन कर सके। यह सब हो सकता है। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि शांति की स्थापना शांति-सैनिकों के जरिये ही होगी। इसके साथ ही यह योजना भी नहीं हो सकती है कि शांति-सेना के लिए पापी पुरुष ही नाम दें, ताकि उनके पाप-दहन की योजना की जाय। अंतिम क्षण कुछ भी हो सकता है। योजना बनाते समय शास्त्रीय योजना ही बनानी पड़ती है। गीता में कहा है कि पुण्यवान् पुरुष चार प्रकार की भक्ति करते हैं : 'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।' भगवान् ने तो कहा है कि अत्यन्त दुराचारी भी मेरी अनन्य भक्ति करे, तो परमेश्वर का प्रिय हो सकता है और वह भी काम कर सकता है।

'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥'

भक्त सदाचारी होता है, परन्तु अत्यन्त दुराचारी भी भक्त बन सकता है। जहां भक्ति है, वहाँ काम होगा। वह भक्ति किसीके भी दिल में किसी भी क्षण पैदा हो सकती है। यह भी सम्भव है कि जिसने अपने को शांति सेना के लिए तैयार किया, वह ऐन मौके पर शिकस्त मदरसा करे।

गोली चलाने और पत्थर फेंकने का फर्क

प्रश्न : सरकार गोलियाँ चलाती है और लोग पत्थर फेंकते है, इस सम्बन्ध में आपका क्या कहना है?

उत्तर : लोगों का पत्थर फेंकना और लोकतंत्रात्मक पद्धति से बनी हुई सरकार का गोली चलाना एक कोटि के नहीं है, वे दोनों भिन्न-भिन्न हैं। सरकार की ओर से जो गोलियाँ चलती हैं, उसके पीछे एक स्वीकृति है। उन्हें एक आज्ञा हुई है। और जो पत्थर फेंके जाते हैं, उनके पीछे स्वीकृति नहीं है, आज्ञा नहीं है। दड का अधिकार हमने सरकार के हाथ में दिया है। उसमे इतनी ही चर्चा हो सकती है कि सरकार उसका उचित उपयोग कर रही है या अनुचित? गोलियाँ जो चलीं, वे परिमाण में ज्यादा थीं या कम? पत्थर फेंकनेवालों के बारे में यह चर्चा नहीं हो सकती कि पत्थर फेंकना उचित था या अनुचित? इतनी मात्रा में फेंकना योग्य है या नहीं? उस बारे में यही कहा जा सकता है कि पत्थर फेंकना गलत है। लोगों ने बाकायदा गोलियाँ चलाने की सत्ता सरकार के हाथ में दी है। उसके पीछे आपकी, हमारी और सबकी सम्मति है। गोली चलाना ही गल्त है, यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक जनता सरकार को फौज खत्म करने की आज्ञा न दे। आज पार्लियामेंट में सरकार की तरफ से बिल आते हैं। उसमें सुझाव पेश किये जाते हैं कि फलाना खर्च कम कर दिया जाय। परंतु फौज के लिए सरकार की तरफ से जो रकम माँगी जाती है, उसके बारे में कोई सुझाव पेश नहीं किये जाते। वे माँगें एक क्षण में मंजूर होती हैं। सरकार से सिर्फ इतना ही पूछा जाता है कि वह सेना पर काफी खर्च कर रही है या कम कर रही है? हमारे बचाव की ठीक व्यवस्था है न? आधुनिकतम शस्त्रास्त्र उसने खरीदे हैं या पुराने गये-बीते शस्त्रों से ही काम चला रही है? सरकार सेना पर जो खर्च करती है, उसके खिलाफ किसीकी कोई शिकायत नहीं होती। आप किस आधार से कहते हैं कि गोली चलाना गल्त है? गोली चलाना आज की हिंदुस्तान की समाज-रचना में मान्य की हुई बात है, परंतु पत्थर फेंकना मान्य नहीं है। ये दोनों बातें ध्यान में रखनी चाहिए। यह ठीक है कि पत्थर फेंकने से सिर्फ सिर फूटते हैं, प्राण नहीं जाते

और गोली से प्राण जाते हैं। लेकिन यह बन्दूक अहिंसा के नजदीक है और यह पत्थर अहिंसा के नजदीक नहीं है। सरकार औसत सरकार होती है। यह अशांति के तत्त्व के निरसन के लायक नहीं होती। उससे यह काम बनेगा भी नहीं। तब काम किससे बनेगा? उसकी जिम्मेवारी आप पर और हम पर आती है, जो अहिंसा और सत्य को मानने का दावा करते हैं। जन शक्ति का, शासन मुक्ति का हमारा ध्येय है और गांधीजी की विरासत हमें मिली है, इसलिए यह हमारा बिलकुल स्पष्ट कर्तव्य है। जो शांति सेना में नाम देंगे, वे लिखित सैनिक होंगे। अलिखितसैनिकों के तौर पर लाखों करोड़ों लोगों को इसमें शामिल होना चाहिए।

कर्तव्याचरण का आन्दोलन

प्रश्न : सर्वोदय-विचार से लोग प्रभावित अवश्य हो रहे हैं। परन्तु इस विचार को जीवन में उतारने के लिए तैयार नहीं हो रहे हैं। जिस प्रकार 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' मन्त्र की सिद्धि के लिए असंख्य भारतीय लोग आ खड़े हुए, उसी प्रकार ग्रामदान और ग्राम स्वराज्य के मन्त्र की सिद्धि के लिए क्या व्यावहारिक कदम हो, जिससे जनता इसे उठा ले?

उत्तर : हम जो काम कर रहे हैं, वह जन्मसिद्ध अधिकार के लिए नहीं, बल्कि जन्मसिद्ध कर्तव्य के लिए कर रहे हैं। जहाँ जन्मसिद्ध अधिकार की प्राप्ति का प्रश्न है, वहाँ मामला बिल्कुल आसान हो जाता है। उसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं रहती, क्योंकि उसमें थोड़ा-सा त्याग करना पड़ता है। उसके लिए जो आंदोलन करना पड़ता है, वह भी हर व्यक्ति को छुए, इतनी गहराई में जाने की जरूरत नहीं होती। इस प्रकार पुराना आंदोलन अधिकार-प्राप्ति का आन्दोलन था, यह कर्तव्याचरण का आन्दोलन है।

पुराना आंदोलन चलानेवाले अधिकार हाथ आने पर वे कहाँ गये हैं? उनकी आज क्या गति है? उस गति पर से उनकी पुरानी स्थिति का पता चल सकता है। अधिकार प्राप्ति के लिए कुछ त्याग तो करना ही पड़ता है। बुढ़ापे में आराम मिले, इसलिए कोई जवानी में मेहनत करे, तो उसे मेहनत प्रिय

नहीं कहा जा सकता। आगे आराम चाहिए, इसलिए आज त्याग किया। वह आंदोलन भी पवित्र था, उसमें पवित्र लोग थे। परन्तु स्वयमेव स्वराज्य-प्राप्ति पवित्र नहीं है। गांधीजी ने उसे धर्मरूप बनाया था, इसलिए उसमें बहुतों के जीवन-परिवर्तन हुए। अन्यथा वे न होते। अपना यह कार्य बहुत कठिन भी है और आसान भी। कठिन इसलिए है कि आज मनुष्य बाह्य वासनाओं में पड़ा है। उन सबका त्याग करना पड़ता है, तो कठिन मालूम होता है। परन्तु यह आसान इसलिए है कि इसमें करना क्या है? सिर्फ छोड़ना है। छोड़ने का काम हमेशा आसान होता है। अगर मैं आपसे कहूँ कि गुस्सा नहीं करना है, तो आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा। क्रोध न करना कोई तकलीफ देनेवाली बात नहीं है। क्रोध करने के लिए कुछ करना पड़ेगा, आँखों का विस्तार करना होगा, आँखें लाल करनी होंगी। इसी तरह हिंसा न करो कहा, तो उसके लिए परिश्रम करने का कोई सवाल नहीं है। जो कार्यक्रम हम रख रहे हैं, वह आत्मा के आधार पर खड़ा है। 'ग्राम-परिवार के अंग बनो' यही हम कहते हैं, तो उसमें कौन तकलीफ होनेवाली है? यह बहुत ही आसान आंदोलन है। आज वासना के कारण लोगों की जो प्रवृत्ति बनी है, इसके लिए यह कठिन मालूम होता है। लोग हमसे कहते हैं कि आप कठिन साधना अंगीकार करने के लिए कह रहे हैं। मुझे जो आसान साधना मालूम होती है, उसीका अंगीकार करने के लिए कहता हूँ। यह भी कार्यकर्ताओं को कठिन मालूम होता है। परंतु जिस साधनाक्रम से मैं जा रहा हूँ, मुझे श्रद्धा है कि वह बहुत ही आसान है। उसमें बहुत ही आराम है। असंख्य लोग जिस क्रम से जा रहे हैं, संसार-चक्र में ग्रस्त हैं, वैसा काम मुझसे कैसे बनेगा? -यह तो मुझे बहुत कठिन कार्य मालूम होता है।

एक भाई ने कहा कि हिंदुस्तान के तत्त्वज्ञान में पलायनवाद है। मैं नहीं जानता कि हिंदुस्तान के तत्त्वज्ञान में क्या है और क्या नहीं है। परन्तु दुनिया में जो सबसे श्रेष्ठ पलायनवादी हैं, उनमें मैं एक हूँ। घर को आग लगी हो, तो मैं वहाँ से भागना चाहता हूँ। धम्मपद में लिखा है कि 'कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ?' (जरावग्गो) चारों ओर आग लगी है, तो काहे की हँसी

और काहे का आनन्द ? इसीलिए मैं घबड़ाया हूँ। मैं कहना चाहता हूँ कि मेरा साधनाक्रम बिल्कुल आसान है। इस कार्यक्रम को आप आसान ढंग से और आसान समझकर लोगों के सामने रखें, तो लोग फौरन कबूल करेंगे। यह कार्यक्रम सारी जनता कैसे कबूल करेगी ? ग्रामदान के अभाव से ग्रामदान सुरक्षित है। दान के अभाव से दान अधिक सुरक्षित है और सुखद है। यही समझो और लोगों को समझाओ। आज दुःख से दुनिया जर्जर है और यह दुःख-मुक्ति का कार्यक्रम है, इसलिए सुखद है, आसान है। गाँव से हर कोई तरकारी खरीदने के लिए बाजार में जाता है। पचास लोग तरकारी खरीदने के लिए ६ मील चलते हैं, तो ३०० मील की यात्रा हुई। अगर गाँव में सामूहिक दूकान हो, तो यह ३०० मील का दौरा बच जाय। आज तमाम किसान रात को जागते हैं, ताकि पड़ोसी के बैलों से अपने खेत की रक्षा हो। सब किसान एक हो जायँ, तो क्या बैलों का इंतजाम नहीं कर सकते ? बैलों का इंतजाम अवश्य कर सकते हैं, परन्तु मानव प्रेरित बैलों का इन्तजाम करना कठिन है। आज हर कोई अलग-अलग कर्ज लेता है, साहूकार के पजे में आता है और दुःखी होता है। हरएक को शादी के लिए कर्ज लेना पड़ता है। इसलिए एक शादी याने जिंदगी की बर्बादी ! परन्तु गाँव एक हो जाय, सब शादियाँ गाँव की तरफ से हों, तो शादी याने सचमुच कल्याणम् (तमिल में शादी को कल्याणम् कहते हैं) हो जायगा, आनन्द का उत्सव हो जायगा। उस निमित्त गाँव में प्रेम प्रकट होगा।

अभी नेताओं के सम्मेलन में चर्चा चली थी। एक भाई ने कहा कि गाँव के लोगों में सहयोग होना चाहिए। दूसरे ने कहा कि उससे समाधान नहीं होगा, ग्राम परिवार होना चाहिए। किसीने उत्तर दिया कि ग्राम परिवार तो आगे की बात है, सहयोग आसान है। किसीने कहा कि यह आगे की बात ही सामने रखिये, क्योंकि हमारी ग्रामीण जनता के लिए वह आसान है। सहयोग कहने से बड़ा झमेला पैदा होता है। उसके लिए अपनी भाषा में शब्द भी नहीं है। संस्कृत से शब्द बना सकते हैं, परंतु अपनी भाषा में जिसके लिए शब्द नहीं है, वह कैसे ग्रहण होगा ? ग्राम परिवार कहने से जनता आसानी से ग्रहण करेगी।

यह आंदोलन कर्तव्यपरायण है, इसलिए अभी तक के आंदोलनों से उसका तरीका भिन्न है। दूसरी बात यह है कि इसे आसान समझकर और आसान समझाकर जनता के सामने रखोगे, तो काम होगा। खुद अपने जीवन में भी इसे आसान समझना होगा। अगर मन मे यह हो कि यह कठिन काम है, इसके लिए अपना बड़ा बँगला आदि छोड़ना पड़ेगा और फिर जनता में जाकर कहो कि यह आसान काम है, तो काम नहीं बनेगा। हमारा किसान अब इतना चतुर बन गया है कि वह आपको इतना पूछ ही लेगा कि "भाई, यह कार्यक्रम आसान है, तो आपके जीवन मे कितना आया है ?"

आजकल सत्याग्रह का जो व्यायाम चल रहा है, उससे सत्याग्रह करनेवालों को व्यायाम की आदत पड़ जाती है और जनता को यह सुनने की आदत हो जाती है कि पचास व्यक्ति जेल गये या सौ व्यक्ति गये। इस तरह यह कार्यक्रम सत्याग्रह शक्ति को कुंठित करने का कार्यक्रम है। जो मनुष्य हर मामूली बात में गुस्सा ही करेगा, उसके क्रोध का प्रसग विशेष में कोई असर नहीं होगा। अगर आप चाहते हैं कि आपके क्रोध का असर हो, तो आपको कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। हर बात मे क्रोध करने से सामनेवाले को आपका क्रोध पचाने की आदत हो जायगी। सत्याग्रह शक्ति व्यायाम से नहीं बढ़ती। उसके लिए सेवा, कारुण्य, आत्मशुद्धि, तपस्या आदि की जरूरत है। हम अपने जीवन से लोगों के सामने एक चीज रखें, तो लोग समझ जायेंगे कि सत्याग्रही कौन है। 'सत्याग्रह' में सत्य ही महत्त्व का है, 'आग्रह' नहीं है। उसमें वे दो शब्द जुड़े हुए हैं, इसलिए तकलीफ होती है। फिर भी वे जुड़े रहें। उसमें से हम अच्छा अर्थ निकालते चले जायँ। सत्याग्रह का अर्थ है, हमारा निज का अनाग्रह। सत्य को ही हम आग्रह करने दें, हम बीच में न आयें। होता यह है कि सत्य के नाम से हमारा ही आग्रह सामने आता है। इसलिए सत्य को ही अपना आग्रह करने छोड़ दिया जाय, तो उसके सामने असत्य टिक नहीं सकता। बीच मे हमारा आग्रह आता है, तो सत्य छिप जाता है। इससे सत्याग्रह शक्ति कुंठित होती है।

सबसे श्रेष्ठ सत्याग्रह जो हम कर सकते हैं, कर रहे हैं। ग्रामदान आदि कार्य

के लिए अपना जीवन अर्पण करना, व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन करना, भाइयों के साथ एकत्र होकर अपने परिवार को व्यापक बनाना, ग्राम-परिवार में अपने को लीन करने के उस कार्यक्रम में हिस्सा लेना सबसे श्रेष्ठ सत्याग्रह है। कितने ही लोग हमसे कहते हैं कि सन्' ५७ के बाद जो सत्याग्रह होगा, उसके लिए हमारा नाम लिख लीजिये। अगर उनसे पूछते हैं कि आज आपका नाम कहाँ है, तो कहते हैं कि घर में, संसार में, राजनीति में। एक भाई ने कहा कि उपवास का मौका आयेगा, तब मेरा नाम लिख लीजिये। याने वह अपने को उपवास का विशेषज्ञ मानता है। अगर २०-३० दिन का उपवास चलेगा, तो हमारे जैसे कमजोर का क्या चलेगा ? फिर तो जो मजबूत है, वही 'उपवास बहादुर' बनेगा। जैसे आज जो तलवार चलाता है, वह बलवान् माना जाता है, वैसे ही उपवास का चला, तो शायद जैन उसमें प्रवीण साबित होंगे। जैनों के उपवास से केवल लोगों के मन में आदर पैदा होता है। उसमें हृदय परिवर्तन का माद्दा नहीं है। कोई आमरण उपवास करता है, तो लोग देखते हैं कि यह कब मरेगा। मरने पर वे जुलूस निकालेंगे, उसका आदर करेंगे। इस तरह उपवास को एक बाह्य टेकनीक (कला) के तौर पर मानेंगे, तो वह सत्याग्रह नहीं होगा। सत्याग्रह सत्य ही है। हमारा आग्रह हट जाय और हम अपने जीवन से, वाणी से और कृति से सत्य को मौका दें, तभी वह सत्याग्रह होगा।

मैसूर —निवेदक शिविर का प्रवचन
२७-६-'५७

ग्राम सभी क्षेत्रों में स्वावलंबी बनें : ४१ :

पहले हम ग्राम-राज्य कहते थे, अब ग्राम स्वराज्य कहते हैं। इसका अर्थ है, गाँव में बुद्धि, शक्ति, तालीम आदि जो कुछ भी साधन हैं, उन्हींको मुख्य पूँजी समझकर उनके आधार पर गाँव का निर्माण करना। बाहर से मदद मिलती हो तो अच्छा है, उसे अस्वीकार नहीं करना है। वह ली जा सकती है। किन्तु

उसीकी आशा रखकर काम करने से गाँव की ताकत कभी विकसित नहीं होगी। अगर हमारे गाँव में साधन कम हों, हमारे नसीब में गरीबी हो, तो उसे भी हम बाँट लें। दु खी होंगे, तो सब साथ में दु खी होंगे और सुखी होंगे, तो सभी सुखी होंगे। ग्रामदान के बारे म समझाते हुए हमने यहाँ तक कहा था कि ग्रामदान के गाँव में अगर चोरी करने की नौबत आयेगी, तो सभी लोग चोरी करेंगे। वह सामूहिक चोरी होगी। आज के गाँव म किसी किसीको कर्ज लेना पड़ता है। पर ग्रामदान के गाँव में कर्ज लेने की नौबत आयी, तो सारा गाँव कर्ज लेगा। आज गाँव में फसल बढती है, तो कुछ लोगों की बढती है। पर ग्रामदान के गाँव में फसल बढेगी, तो सारे गाँव की बढेगी। व्यक्तिगत तौर पर सब सुखी दु खी हैं। पर ग्रामदान के गाँव में कोई व्यक्तिगत तौर पर सुखी दु खी नहीं रहेगा। सामूहिक ढग से ही सुखी और दु खी रहेंगे। जब हम अपनी सारी बुद्धि का उपयोग करते हैं, तो हृदय म सतोष होता है। नहीं तो नहीं होता। इसी तरह अगर अपनी सारी शक्ति एकत्र करवायें, तो हम सुख शाति मिलेगी।

पावित्र्य और सौभाग्य सदा स्वावलबी रहे

महाराष्ट्र में रिवाज है कि जब कीर्तन होता है, तो काले बुक्के का टीका लगाते हैं। मैंने एक दफा समझाया था कि वह टीका लगाने की चीज अगर गाँव में नहीं बनती, तो गाँव की शुद्ध मिट्टी में स्वच्छ निर्मल पानी डालकर उसीका टीका किया जाय। गाँव की मिट्टी और गाँव का ही पानी होने से वह एक पवित्र वस्तु बन जायगी। गाँव की छोटी सी चीज भी बनती है, तो वह पवित्र है, इसलिए पावित्र्य और सौभाग्य की जो जितनी भी चीजें हैं, उनमें गाँव को प्रथम स्वावलबी होना चाहिए। सौभाग्य और पावित्र्य जिन चीजों का आधार हैं, वे बाहर से कभी न आनी चाहिए। बहनें आज चूड़ियाँ पहनती हैं, जो शहर की फैक्टरियों म बनती हैं। अगर कल वे फैक्टरियाँ बद हो जायँ, तो क्या बहनें बिना चूड़ी की रहेंगी? बहनें उन्हें शृगार का साधन नहीं मानतीं, वह तो उनका सौभाग्यचिह्न है। क्या अपना सौभाग्य और पावित्र्य फैक्टरी के हाथ में

सौंप देना उचित है ? इसके लिए जैसे सूत कातकर जनेऊ पहना जाता है, वैसे ही रोज-रोज नया सूत कातकर, रँगकर हाथ में पहन लिया जाय। केशर न हो, तो हल्दी से ही उसे रँग लें। गाँव के पानी और गाँव की मिट्टी से बना हुआ धागा भर दिया, तो वह मंगल होगा। पावित्र्य का विचार गाँव की शक्ति और गाँव की वस्तु से हो। आज गाँवों में शादी के लिए बाहर से कितनी चीजें खरीदी जाती हैं। मनुष्य मर जाय, तो उसकी हड्डी भी उठाकर काशी में गंगा तक लायी जाती है। क्या अपने गाँव से काशी तक कोई पवित्र मुल्क ही नहीं है। अजीब सी बात है। जहाँ जन्म पाया, जहाँ खाया पीया, क्या वह स्थान पवित्र नहीं है ? गाँव की चीज गाँव को ही मिलनी चाहिए।

पिताजी की दहन की कहानी

धुलिया में मेरे पिताजी मर गये। विचार हुआ कि उनकी हड्डी कहाँ डाली जाय ? गंगा दूर थी। गोदावरी नजदीक थी। इसलिए वहीं डालने की बात चली। मैंने तुरन्त कहा : पिताजी की हड्डी पर गोदावरी का क्या हक है ? गोदावरी पानी है और हड्डी है मिट्टी। पानी का मिट्टी पर क्या अधिकार ? मिट्टी पर तो मिट्टी का ही अधिकार हो सकता है। तेज तेज में, वायु वायु में, पानी पानी में और मिट्टी भी मिट्टी में ही मिल जानी चाहिए। जब पिताजी का शरीर जला और उसकी खाक हो गयी, तो उसे हमने गड्ढा खोदकर भर दिया और उस पर तुलसी का पेड़ लगा दिया। लोगों को लगा कि यह हमने बड़ा विचित्र काम किया। अस्थियाँ किसी गंगा में प्रवाहित करनी चाहिए, कम से-कम गोदावरी में तो करनी ही चाहिए। परन्तु हमने तो वेद में से यह अर्थ निकाला। वेद में प्रार्थना है कि 'हे माता, मेरी लाश के लिए तू मुझे जगह दे।' पाश्चात्य टीकाकारों ने सवाल निकाला कि पहले दफन क्रिया होती थी या दहन ? वे केवल ऐतिहासिक निष्कर्ष निकालते हैं कि पहले दफन क्रिया होती थी। सिर्फ अन्दाज की बात है। हमने एक ही सूत्र में से दो अर्थ निकाले। पहले लाश का दहन किया जाय और फिर जो राख बने, उसकी दफन क्रिया की जाय। यों कहकर वेद का आधार दिया।

पावित्र्य के बाद तालीम आदि में भी स्वावलंबन

शुद्धि, पावित्र्य और सौभाग्य की चीजें गाँव में ही बनें। पहले गाँव मे पावित्र्य स्वावलंबी हो, उससे जीवन-सुधार का आरंभ होगा। पवनार में हम भजन करते थे। बहुत दफा बात उठी कि भजन के लिए वाद्य-वीणा हो। मैंने पूछा : "वीणा कहाँ से आयेगी ? वह गाँव में तो नहीं बनती।" अगर वीणा के अभाव में हमारा भजन बंद हो जाय, तब तो हम भक्ति में भी परावलंबी हो जायेंगे। और चीजों मे तो ठीक, परन्तु भक्ति में परावलम्बी बनने से हमारा कैसे चलेगा ? भजन मे ताली बजायी कि हो गया स्वावलंबन। बाहर बैठने के लिए जाजिम चाहिए। जाजिम गाँव में नहीं बनती। तब क्या बिना जाजिम के भक्ति नहीं हो सकती ? इसीलिए हमने बाहर मिट्टी में बैठना शुरू किया। बारिश के दिन आये। फिर भी घर मे प्रार्थना नहीं चलायी। पानी से स्नान करते ही हैं। फिर ऊपर से पानी मिल जाय, नैसर्गिक स्नान हो जाय, तो क्या उसे सहन न करेंगे ? हमने बारिश में खड़े-खड़े प्रार्थना शुरू की, तो हमें बड़ा ही आनंद आया। बिल्कुल अपरिग्रह के साथ प्रार्थना की। गरीब मनुष्य आसन कहाँ से लाये ? मिट्टी में बैठेगा, तो वस्त्र मलीन होंगे। अपने आँगन में खड़े हो जायँ, तो प्रार्थना के विषय में पूर्णतः स्वावलम्बी हो गये। तात्पर्य यह कि जीवन का प्रथम अंश पावित्र्य है, उसमें स्वावलंबन हो। फिर तालीम में भी स्वावलंबन हो। आज तो बच्चों की तालीम शुरू होती है और बाहर से खरीदना शुरू होता है। लिखने के लिए पेन चाहिए तो बाहर से, चित्रकारी के लिए रंग ब्रश चाहिए तो बाहर से। वास्तव में पुस्तकों के अलावा कोई चीज बाहर से लानी न पड़े, ऐसा होना चाहिए। पुस्तकों में भी अपने हाथ से लिखी हुई स्वतंत्र पुस्तक भी बन सकती है। इस प्रकार ज्ञान में भी स्वावलंबन होना चाहिए। अन्न में तो स्वावलंबन होना ही चाहिए।

सांस्कृतिक स्वावलंबिता

जरूरत की बड़ी बड़ी चीजें बाहर से लानी पड़ें, तो ला सकते हैं। परन्तु सिलसिला स्वावलंबन की ओर होना चाहिए। उसका क्रम सांस्कृतिक ख्याल से

होना चाहिए। घड़ी ही ले लीजिये। इन दिनों हरएक के हाथ में घड़ी होती है। परन्तु उससे हर मनुष्य की नियमितता बढ़ी नहीं। घड़ियाँ खुद अनियमित बनती हैं। चाभी नहीं दी, तो हो गयी बन्द। चलानेवाला अनियमित, तो घड़ी भी अनियमित। इसके बजाय गाँव में बाहर की घड़ी या कोई एक बड़ी घड़ी रखी जाय और एक घंटा रखा जाय। घंटे घंटे पर घंटा दिया जाय और सारा गाँव नियमित रहे। हमने एक दफा लेख लिखा था कि दिवाली कैसी सजायी जाय? आसमान में नक्षत्र, तारे उगते हैं। दिवाली है, तो वे सारे नक्षत्र नीचे लाये जायँ। गाँव की मिट्टी से बने दीप से दिवाली मनायी जाय, तो सांस्कृतिक शोभा होती है। इस तरह धीरे-धीरे सांस्कृतिकता के क्रम में स्वावलम्बन की ओर जाना चाहिए।

मैसूर
२८-६-'५७

कार्यकर्ता आध्यात्मिक चिन्तन करें : ४२ :

यह आन्दोलन जितना गहरा जा रहा है, उतना ही कार्यकर्ताओं का स्तर ऊपर उठना चाहिए। इसके लिए आध्यात्मिक चिंतन की आवश्यकता है।

किन्हीं दो मनुष्यों में झगड़ा होता, तो बापू की आदत थी कि वे उन दोनों को बुलाते, घंटों उनके स्तर में जाकर बातचीत करते और उनका झगड़ा मिटाने का प्रयत्न करते थे। वे अपने प्रयत्न में कहीं सफल हुए, कहीं नहीं भी हुए। उनका वह तरीका व्यक्तिगत तरीका, मानसिक युग का तरीका है। विज्ञान के युग के लिए अब वह तरीका समर्थ नहीं हो सकता। विज्ञान के युग में 'ऑब्जेक्टिव' पदार्थनिष्ठ सत्य प्रधान होता है, मन गौण होता है। आत्म-ज्ञान भी मन को गौण समझता है। दोनों मन की गौणता में मानते हैं। आध्यात्मिकता कहती है कि मन का उन्मन बनना चाहिए। विज्ञान भी वही कहता है। उस हालत में मन से ऊपर उठकर बात करने की योग्यता आनी चाहिए। किसीमें मनोमालिन्य हो गया, तो क्या करना होगा? उपेक्षा।

उपेक्षा को हम पहचानते नहीं हैं। मन की भूमिका से ऊपर उठेंगे, तभी यह काम होगा।

अरविन्द की अतिमानस भूमिका

श्री अरविन्द 'सुप्रामेंटल' की बात करते थे। उनके मत से ऊपर जाकर परमेश्वर-दर्शन और परमेश्वर स्पर्श के अमृतपान से परितृप्त होकर मन उन्मन होता है और उसके बाद नीचे आता है, इसीको वे अवतरण कहते हैं। मुक्ति हो गयी तो समाप्ति हो गयी, ऐसा वे नहीं मानते। वे तो कहते हैं कि मुक्ति के बाद, मन उन्मन होने के बाद फिर कार्यक्रम शुरू होता है। यह भूमिका अतिमानस की भूमिका है। उसीको वे 'अवतार' कहते हैं।

अभी तक ऐसी बात होती थी कि मुक्त होने के बाद कोई शख्स नीचे उतरना चाहे, तो उतर सकता है और अगर न उतरना चाहे, तो मुक्ति में लीन रहे। परन्तु श्री अरविन्द का खयाल है कि यह गौण चीज है। शंकरादि कहते हैं कि मुक्ति देकर लौटाओ मत। ऐसे बहुत-से तो वापस लौटते ही हैं। कोई वैकुंठ में जाकर तो कोई इन्द्रलोक में जाकर, तो कोई सगुण ईश्वर के पास जाकर पूर्णात्मा, व्यापक हो गये, ऐसा नहीं होता। एकदम कोई निर्गुण के पास पहुँचता नहीं है। इद्र, सूर्य, चद्र आदि भिन्न-भिन्न भूमिका में पहुँचते हैं। फिर उन उन भूमिकाओं से वापस लौटते हैं। जैसे बी० ए० हो गये, तो अध्ययन समाप्त नहीं हुआ। अध्ययन में स्वावलम्बन हो गया, अभ्यास परिपूर्ण नहीं हुआ। अभ्यास में स्वावलंबन याने युनिवर्सिटी, कॉलेज, ट्यूटर या प्रोफेसर की अब जरूरत नहीं रही। वैसे ही अरविन्द की दृष्टि से मुक्ति याने डिप्लोमा मिल गया कि अब विश्व की सेवा कर सकते हैं। जब तक मुक्ति नहीं मिली, तब तक विश्व की सेवा नहीं कर सकते।

सारे विश्व में अपनी इच्छित शक्तियों से विचार फैलायेगा और सबके जीवन में परिवर्तन लायेगा। कुल समाज को दिव्य रूप देना है, यह एक विशाल दर्शन है। परन्तु हम ऊपर जाकर फिर अवतार लें, ऐसी आकांक्षा न रखें। इतना बड़ा काम न कर सकें, तो भी हमें मानसिक भूमिका पर से तो ऊपर उठना ही चाहिए। नहीं तो समाज में से झगड़े नहीं मिटेंगे और हर समय होनेवाले घर्षण को कम करने के लिए तेल डालते रहना पड़ेगा। यह यंत्र ही ऐसा हो जाना चाहिए कि उसमें घर्षण न हो, तेल की जरूरत न हो। इस शरीर में ढील नहीं है, तो भी हड्डी एक-दूसरे से नहीं टकराती। उसकी योजना ही ऐसी है कि घर्षण न हो। शरीर में प्रेम-शक्ति काम करती है। पैर में तकलीफ होती है, तो हाथ तुरन्त ही सेवा करने लगता है। यह जो सारे शरीर के अन्तर्गत प्रेम-शक्ति है, इसके कारण शरीर में घर्षण नहीं होता, उससे काम लिया जा सकता है। वैसी ही समाज की भी यंत्र-रचना हो जाय, तो फिर तेल की डिब्बी की जरूरत नहीं रहेगी। यह मन से ऊपर उठेंगे, तभी होगा और इसके लिए आध्यात्मिक गहराई में जाने की जरूरत है।

महाकाव्य का युग

हमने मैसूर के महाकवि श्री पुट्टप्पा से कहा : "आपने तो बहुत बड़ी किताब लिखी है। 'पैराडाइज लास्ट' से भी दुगुनी है। बहुत बड़ा काव्य है। उसमें मामूली रावण नहीं है, सारे-के-सारे पात्र प्रतीकात्मक हैं। रावण का तेज रामचन्द्र के तेज में समाविष्ट हुआ, इतना पर्याप्त नहीं है। उन्होंने उसकी पद्धति का वर्णन किया है। मैंने उनसे विनोद में पूछा कि यह जमाना तो छिट-पुट काव्य का जमाना है, इस जमाने में आपने महाकाव्य कैसे लिखा? उन्होंने जवाब दिया कि हिन्दुस्तान में आज महाकाव्य का जमाना है। इन ७०-८० सालों में हिंदुस्तान में इतने महापुरुष हो गये, जितने दुनिया में और कहीं नहीं हुए। यही महाकाव्य का जमाना है।" विज्ञान के युग में काव्य नहीं लिखा जायगा, ऐसा खयाल गलत है। विज्ञान के युग में सृष्टि का गूढ़ अर्थ प्रकट होगा। पुराने लोगों के सामने सृष्टि का गूढ़ कम प्रकट था। इस सृष्टि का ज्ञान

जितना प्रकट हुआ, वह विज्ञान है और जितना गूढ रहा, वह काव्य! पुराने जमाने में सृष्टि मे कितनी गूढता है, यह जानते ही नहीं थे, इसलिए काव्य के लिए गुंजाइश कम थी। जितनी गूढता ज्यादा प्रकट होगी, उतनी ही काव्य के लिए गुंजाइश ज्यादा होगी। विज्ञान के जमाने में सृष्टि की गूढता अधिक प्रकट होती है, इसलिए काव्य के लिए अधिक गुंजाइश है।

कृत्रिम चावल के विज्ञान में काव्य

हम खाद्य शोध-संस्थान में गये। सुना तो था कि मूँगफली और टेपिओका से चावल बनाते हैं, परन्तु जब वह देखा, तो मन पर कुछ विलक्षण असर हुआ। रात को सोकर सुबह जागे, तो सारा कारखाना हमारे सामने आकर खड़ा हो गया। कहते हैं कि उस चावल मे पोषक तत्त्व ज्यादा है। उसमें खूबी यह है कि मूँगफली और टेपिओका दोनों जब अलग-अलग होते हैं,- तो दोनों में कुछ कमी होती है, परतु जब इकट्ठे किये जाते हैं, तो वह कमी हट जाती है और वह पोषक हो जाता है। कहीं अकाल पड़ा, तो तुरन्त वह चीज काम में आ सकती है। मुझे तो वह सब देखकर विज्ञान होने पर भी उसमें काव्य ही मालूम हुआ। सृष्टि की वह सारी गूढ़ता देखकर मेरी कल्पना पर असर हुआ। अगर मेरी बुद्धि पर प्रभाव पड़ता, तब तो वह विज्ञान हो जाता, परन्तु मेरी कल्पना पर प्रभाव पड़ा, इसलिए वह काव्य हो गया। पुराने जमाने में सृष्टि कम प्रकट थी और सृष्टि का गूढ भी कम प्रकट था। इसलिए विज्ञान भी कम था और काव्य भी कम था। इस जमाने में सृष्टि का प्रकाशन भी ज्यादा है और गूढता का प्रकाशन भी ज्यादा है। सृष्टि और उसकी गूढता दोनों अधिक प्रकट हुए हैं। इसलिए जैसे विज्ञान की संभावना अधिक है, वैसे काव्य की भी संभावना अधिक है। पुट्टप्पाजी ने हमसे यही कहा कि इस महाकाव्य के युग में अनेक महापुरुषों ने अनेक आंदोलन, अनेक प्रक्रियाएँ चलायी हैं, उनकी प्रेरणा सबको मिल रही है।

कार्यकर्ता अध्ययन करें

कार्यकर्ता कहते हैं कि हमें अध्ययन के लिए कम समय मिलता है, इसलिए

मैंने आज का प्रयोग करके दिखाया। तीन घंटों की यात्रा हो, तो चार घंटों की यात्रा समझ लेनी चाहिए और एक घंटा बीच में ही अध्ययन होना चाहिए। उड़ीसा में हमने ढाई महीने में जगन्नाथदासजी की भागवत पूरी की। सब लोगों के साथ रास्ते में कहीं एकांत जगह देखकर बैठ गये। जप ध्यान कर लिया और फिर अध्ययन शुरू। इस तरह किया करोगे, तो जो जरूरी चेतना चाहिए, वह बनी रहेगी। नहीं तो फिर आरोहण के बजाय अवरोहण हो जायगा।

पांडवपुरम् (कर्नाटक) —पद-यात्रा के बीच कार्यकर्ताओं में

३०-९-५७

सद्धर्म का प्रचार करने निकलिये : ४३ :

आज का दिन पवित्र है और स्थान भी पवित्र है। आज गांधीजी का जन्म दिन है और यह रामानुज का स्थान है। दिन और स्थान दोनों पवित्र हैं। रामानुज जन सेवक थे। वर्षों तक वे सारे हिन्दुस्तान में घूमे। उन्होंने लोगों में यह ज्ञान फैलाया कि भक्ति की महिमा जाति से बढ़कर है। उन दिनों जातीय संकुचितता और संकीर्णता बहुत ज्यादा थी। इसलिए रामानुज समाज के सामने भक्तिरूपी वस्तु रखकर जाति भेद को समाप्त करना चाहते थे। इसके लिए वे गाँव गाँव गये और गुरु की आज्ञा भंग कर भी उन्होंने एक गुह्य मंत्र सबके सामने प्रकट कर दिया। इस प्रकार को प्रत्यक्ष गुरु की आज्ञा की उपेक्षा कर, उनके लिए आदर रखते हुए भी जन समाज में ज्ञान फैलानेवाली दो चार मिसालें भी दुनिया में नहीं मिलतीं। रामानुज को ऐसा करने के कारण समाज की तरफ से काफी कष्ट सहन करना पड़ा और तमिलनाड छोड़कर यहाँ आना पड़ा। वे यहाँ १५ साल तक रहे। बाद में जब तमिलनाड अनुकूल हुआ, तो वे वापस वहाँ लौटे।

मुहम्मद पैगम्बर के जीवन में इसी प्रकार की बात हुई थी। उन्हें मक्का

छोड़ना पड़ा और अपने लोगों को लेकर मदीना जाना पड़ा। अरबी में उसे हिजरत कहते हैं। मेरा खयाल है कि रामानुज भी यहाँ अकेले नहीं आये होंगे, पाँच पचीस शिष्यों को लेकर ही आये होंगे। इसीलिए आप देखते हैं कि यद्यपि यह कन्नड भाषावाला प्रान्त है, तथापि इस स्थान पर आज भी कुछ तमिल भाषा चलती है। रामानुज के मन में तमिल और कन्नड ऐसा भेद नहीं था।

उन्होंने जो लिखा, वह अधिकांश संस्कृत में लिखा। रामानुज को लोक-कल्याण की तीव्र वासना थी। नहीं तो उनके परम गुरु और गुरु के गुरु सब तमिल में लिखते थे। तमिलनाड में भक्ति का जो स्रोत जोरों से बहा, उसका आरम्भ रामानुज से नहीं, बल्कि नम्मलवार से हुआ। नम्मलवार का जो असर तमिलनाड पर है, वह अद्‍भुत ही है। नम्मलवार को हिन्दुस्तान नहीं जानता, परन्तु रामानुज को सारा भारत जानता है। रामानुज अपने को नम्मलवार की तुलना में बहुत ही छोटा समझते थे। यह जो नम्रता है, वह नम्मलवार में भी थी। उन्होंने लिख रखा है कि मैं दास का दास हूँ, वैसे नम्रता तो हर सत्पुरुष में होती ही है। फिर भी रामानुज का सारा आधार नम्मलवार थे। रामानुज की विशेषता यह थी कि उन्होंने दूर-दूर जाकर साधारण जनता में ज्ञान का प्रसार किया।

रामानुज-सम्प्रदाय की वर्तमान परम्परा

रामानुज की परंपरा में जो भक्तगण हैं, उनको क्या कोई तकलीफ उठानी पड़ती है? यहाँ देवस्थान बना है, आमदनी का जरिया है, योगक्षेम चल रहा है, नित्य पाठ चल रहा है। रामानुज को जो तकलीफ थी, क्या उसका एक अंश भी इनको है? वह व्यक्ति देशभर घूमता था, भिक्षा माँगकर खाता था। उसके अन्दर भक्ति, ज्ञान और करुणा थी। करुणा का आविर्भाव बुद्ध के बाद शायद रामानुज में ही विशेष हुआ। ज्ञान और भक्ति का प्रकर्ष तो दूसरे पुरुषों में भी दीखता है, परन्तु भक्ति और ज्ञान के साथ करुणा का प्रकर्ष रामानुज में दीखता है।

प्राचीन भक्त समाज-सुधारक भी

उस जमाने में जो भक्तजन थे, वे बड़े समाज-सुधारक भी थे। समाज में जो दोष था, उसके निवारण का काम उनके जीवन का मिशन था। हमें 'मिशन' शब्द इस्तेमाल करना पड़ा, क्योंकि इन दिनों ऐसा कार्य मिशनरी ही करते हैं। वे दुनिया के कोने-कोने में जाकर रोगियों की सेवा करते हैं, अस्पताल, कॉलेज खोलते हैं, जंगल-जंगल के गाँवों में जाकर बाइबिल सुनाते हैं। जहाँ दूसरे लोग जाते नहीं, वहाँ भी वे जाते हैं और ईसामसीह के नाम से आमरण काम करते हैं। करुणा से प्रेरित होकर जो काम लिया, उसके साथ आमरण चिपके रहने का नाम है मिशन। उसके लिए अपनी भाषा में शब्द भी नहीं मिलता है। (एक भाई ने मिशन के लिए 'समूह स्नेह' शब्द सुझाया। 'स्नेह-समूह' शब्द अच्छा है, उसे हम उठा लेते हैं।) उस जमाने में जाति-भेद तीव्र था। रामानुज ने भक्ति का आलम्बन लेकर जाति-भेद पर प्रहार करने का काम उठाया। इस जमाने में चन्द लोग भूमि के मालिक बन गये हैं और बाकी भूमिहीन बने हैं, जो भूमि की सेवा नहीं कर सकते हैं। इसलिए अब यह समस्या करुणा की समस्या हो गयी है। रामानुज ने करुणायुक्त होकर अपना मन्त्र बिल्कुल नीची जातियों को सुनाने की कोशिश की थी, जिसका परिणाम आज हमने यहाँ मंदिर में देखा। यहाँ भेदभाव नहीं था, वैष्णवों के दूसरे स्थानों में भेदभाव है, परन्तु यहाँ नहीं है। हम समझते हैं कि हमने जो काम उठाया है, वह रामानुज सम्प्रदाय में ठीक बैठेगा।

भूदान करुणा का कार्य है। भूदान के बजाय अगर हम जमीन छीनने की बात करते, तो यह कम्युनिज्म का कार्य हो जाता। लेकिन जहाँ करुणा से प्रेरित होकर अपने भाई को जमीन देने की बात है, वहाँ यह धर्म-कार्य हो जाता है। 'भूदान यज्ञ समूहस्नेह।' इस तरह हम नयी तपस्या करेंगे, तब धर्म उज्ज्वल होगा। प्राचीन ऋषियों ने तपस्या की, इसलिए धर्म उज्ज्वल हुआ। आज हम नयी तपस्या नहीं करेंगे, तो धर्म क्षीण होगा। यहाँ पर हमें 'कल्याणी' तीर्थ दिखाया गया। वह स्वेदजन्य है, ऐसा लोग कहते हैं। अब कोई परिश्रम

करता ही नहीं, तो स्नेद कहाँ से आये और तीर्थ कैसे बने? नया 'कल्याणी तीर्थ' बनना बद हो गया है।

रामानुज के अनुयायी ग्रामदान का कार्य उठाये

आपको इस काम को उठा लेना चाहिए। मैं घूमता रहूँ और रामानुज-सम्प्रदाय के लोग बैठे रहें, क्या यह ठीक है? आपके लिए कुछ आधार है, भगवान् की पूजा के लिए कुछ आमदनी है, यह ठीक है। उस आधार से आप अध्ययन करते हैं। अब आप बाहर निकलें और गाँव-गाँव जाकर ग्रामदान का विचार समझायें, साथ साथ रामानुज का भाष्य भी सुनायें। आज ही हमने भूदान कार्यकर्ताओं को रामानुज का भाष्य सुनाया। 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' का भाष्य करते हुए रामानुज ने लिखा है कि भक्त से कोई द्वेष करता है, तो भक्त समझता है कि 'मदपराधानुगुण्य ईश्वरप्रेरितानि एतानि भूतानि द्विषन्ति अपकुर्वन्ति च'। हमने कार्यकर्ताओं से कहा कि भाई, तुमसे कोई द्वेष करे तो तुम्हें द्वेष नहीं करना चाहिए। तुम्हें तो यह समझना चाहिए कि हमारे ही किसी अपराध के कारण वह द्वेष करता है और उसमें ईश्वर की भी प्रेरणा है। इसलिए क्षमाशील रहना चाहिए। हम जब रामानुज भाष्य सिखाते हैं, तो आप क्यों नहीं निकलते वह भाष्य सुनाने? ग्रामदान का कार्य रामानुज का कार्य है और आप हमारी मदद में आइये। हमने आपके जैसा 'तिरुनामम्' (चंदन का टीका) नहीं लगाया। इसलिए हम नम्रता के साथ बोलते हैं। परन्तु आप अधिकार के साथ बोल सकते हैं। आप समता और करुणा का सदश लेकर निकल पड़ेंगे, तो हिंदुस्तान में रामानुज सम्प्रदाय फिर से जोर पकड़ेगा और सारे देश पर आपका अधिकार चलेगा। रामानुज सम्प्रदाय के लोग केवल कर्नाटक, तमिलनाड में ही नहीं हैं, उत्तर हिन्दुस्तान में भी है। पहले के जमाने में रामानुज सम्प्रदाय के लोग देशभर में फैल गये, वैसे आप भी फैलें। आपमें से कुछ लोग यहाँ अध्ययन अध्यापन करें और कुछ लोग विचार प्रचार के लिए निकलें।

करुणा के बिना वेद-प्रचार असम्भव

हम ४० साल से वेद का अध्ययन कर रहे हैं। हम समझते है कि वेद प्रचार

करुणा के बिना नहीं होगा। कोई उसको सुनेगा नहीं। वेद संदेश यह है कि 'यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति ?' जो परमेश्वर तत्त्व जानता नहीं, वह वेद लेकर क्या करेगा ? आज समाज में इतना भेदभाव बढ़ा है कि करुणा बिल्कुल सूख गयी है। लोग मालिक बनकर बैठे हैं, भूमिहीनों को कितनी तकलीफ होती है, जानते भी नहीं। इस हालत में वेद का अध्ययन कर जनता के बीच जायेंगे और करुणा का संदेश सुनायेंगे, तो उससे लोग प्रेरित होंगे ? आज कोई अत्याचारी मनुष्य दूसरों को सताकर पैसा इकट्ठा करे और वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों को पैसा देकर पुण्य प्राप्त करे और आप भी समझें कि हम वेदाध्ययन कर रहे हैं, तो इस प्रकार पैसा लेकर वेदाध्ययन नहीं हो सकता। प्रतिग्रह शुद्ध होना चाहिए। इसलिए जैसे मैं वेद लेकर जनता में जा रहा हूँ, वैसे आप भी निकलें। फिर आपका वेद बहुत चलेगा। भूदान यज्ञ इस जमाने की पूर्व मीमांसा है। उसके बाद लोगों को जो ज्ञान दिया जायगा, वह उत्तर-मीमांसा होगा।

भगवान् बुद्ध का व्यावहारिक उपदेश

एक बार बुद्ध भगवान् के शिष्य एक आदमी को लेकर आये। उन्होंने भगवान् से कहा : इसे उपदेश दीजिये। भगवान् ने देखा कि उसका चेहरा सूखा हुआ है। वे पूछने लगे, खाना खाया ? जवाब मिला कि दो दिन से खाना नहीं मिला। भगवान् ने शिष्य से कहा कि इसे खाना खिलाओ। जब खाना खिलाकर शिष्य उसे उनके पास लाया, तो उन्होंने उससे जाने के लिए कहा। शिष्य भगवान् से पूछने लगे : आपने उसे उपदेश तो दिया ही नहीं। इस पर भगवान् बोले : अरे मूर्खो, उपदेश उसको देना या तुमको देना था ? मैंने तुम्हें उपदेश दिया कि भूखे को खिलाओ। यही वेदाभ्यास है। भूखा अपने सामने खड़ा है, तो क्या उससे वेदाभ्यास की बातें करोगे ? प्रथम करुणा आनी चाहिए और उसके बाद वेदाभ्यास। करुणा कार्य पूर्व-मीमांसा है और आत्मज्ञान का प्रचार उत्तर-मीमांसा।

काशी के वैदिक ब्राह्मणों ने हमसे खेती करने के लिए जमीन माँगी थी। हमने भूदान समिति को आदेश दिया कि उन्हें जमीन दी जाय। आप लोगों

के पास जायेंगे, तो आपको लोगों का दुःख मालूम होगा। आजकल लोग वोट माँगने जाते हैं, परन्तु आप जब कहेंगे कि हम वोट माँगने नहीं आये हैं, गरीबों के लिए जमीन माँगने आये हैं, तो लोगों को विश्वास हो जायगा और उनमें करुणा जागेगी। यजुर्वेद में एक रुद्र सूक्त है। सायणाचार्य ने उसका भाष्य किया था। उसमें एक सुन्दर वचन है—'बुभुक्षमाणः रुद्ररूपेण अवतिष्ठते।' जो संहार करता है, वह रुद्र है। जिसे भूख लगती है, वह रुद्र बनता है। इसलिए रुद्र की उपासना करने का मतलब है, भूखे को खिलाना। यही सायणभाष्य है।

मेलकोटे (मैसूर)

२-१०-'५७

बेदखलियाँ रोकने का उपाय : ४४ :

इधर कुछ बेदखलियाँ चल रही हैं। ऐसी ही शिकायत हमने जगह जगह सुनी, परन्तु हमें उसकी बहुत चिंता नहीं है। अभी मैसूर में हिंदुस्तान के बहुत बड़े नेताओं ने देश को आदेश दिया कि गाँव गाँव में ग्रामदान होना चाहिए। उस आदेश के सामने बेदखलियाँ कब तक चलेंगी ? अब हवा बदलनेवाली है। गाँव के लोग इकट्ठा होनेवाले हैं और सब मिलकर काम करनेवाले हैं। ग्रामदान के बाद छोटे बड़े जमीनवाले सब बराबरी में आ जायेंगे। समान होने पर छोटे लोग स्वयं ही बड़ों को थोड़ी अधिक जमीन देते हैं। कोरापुट में इसी तरह ग्रामदान के बाद गाँववालों ने बड़ों को प्रेम से थोड़ी अधिक जमीन दी। हिंदुस्तान के लोगों में मत्सर नहीं है। हम सुखी हैं और यदि दूसरे लोग हमसे ज्यादा सुखी हैं, तो हम उनसे कोई द्वेष नहीं करते। कुछ लोग ज्यादा सुखी हों, तो कोई हर्ज नहीं। लोगों की इतनी ही माँग है कि दुःखी लोगों का दुःख मिटे। सब बिलकुल बराबर हो जायँ, ऐसी माँग लोग नहीं करते।

बड़ों का भय

बड़े लोगों को यह बात कौन समझायेगा ? छोटे लोग शब्दों से नहीं, वृत्ति

से समझायेंगे। छोटे लोग अगर अपनी छोटी मालकियत छोड़ देंगे, तो बड़े लोग समझ जायँगे कि मालकियत जानेवाली है। फिर उनके हृदय में प्रेम प्रकट होगा। आज वे जो बेदखलियाँ करते हैं, वह दुष्टता से नहीं, बल्कि डर के कारण करते हैं। उन्हें लगता है कि न मालूम सरकार क्या कानून बनायेगी और हमारी क्या हालत होगी ? इसलिए हमें उन्हें समझाना चाहिए कि आपके लिए डरने का कोई कारण नहीं है। आप ग्राम परिवार में आ जाइये, तो हम अपने माता पिता की जितनी इज्जत करते हैं, उतनी आपकी करेंगे। इस तरह उन्हें निर्भय बनाना चाहिए। जब उनका भय चला जायगा, तब वे हमारे साथ आयेंगे।

भारतीय अभिरुचि

आज एक भाई ने हमें बड़ी सुन्दर बात बतायी। वे बोले कि हिंदुस्तान के लोगों को सुख बाँटने में रुचि नहीं है, दुःख बाँटने में रुचि है। सबको समान सुख चाहिए, ऐसी वासना हिंदुस्तान के लोगों की नहीं है। वे इतना ही कहते हैं कि कोई दुःखी न रहे। यह बहुत बड़ी बात है। इसमें हिंदुस्तान की करुणा है, सभ्यता है, धर्म निष्ठा है। हम यह नहीं चाहते हैं कि सुख बढ़ाते चले जायँ। वह तो यूरोप और अमेरिका के लोग करते हैं। हम लोग इतना ही चाहते हैं कि दुःख मिटे। यदि दुःख नहीं रहेगा, ससार की चिंता नहीं रहेगी, तो हम प्रेम से भगवान् का नाम लेते रहेंगे। यह अपने देश का हृदय है। यह बात दूसरे राष्ट्रों को सीखनी होगी। सुख को बढ़ाते रहने से सुख बढ़ता नहीं है, उसे मर्यादा में रखने से ही वह बढ़ता है। यह बात सारी दुनिया को भारत से सीखनी होगी। दुनिया यह बात तब सीखेगी, जब हम हिंदुस्तान में किसीको दुःखी नहीं रहने देंगे। फिर भारत की सभ्यता मे जो शांति और प्रेम है, उसका मूल्यांकन दुनिया करेगी।

एक बनें

आज जो बेदखलियाँ चल रही हैं, उन्हें रोकने का एक ही उपाय है कि आप लोग सारे गाँव की जमीन एक बनायें। जितने लोग एक हो सकते हैं, उतने एक हो जायँ और जो उसके अन्दर न आयें, उनसे द्वेष न किया जाय, उनके साथ भी

प्रेम ही किया जाय। हम एक होंगे, तो वे देखेंगे कि ये एक भी हुए और नेक भी हुए। इनकी धर्म-भावना बड़ी है। यह देखकर उनके चित्त पर असर हो जायगा और फिर वे भी इसमें दाखिल हो जायँगे। बेदखलियाँ बंद करने का यही रास्ता है। यदि आप अलग-अलग रहेंगे, तो तिनके के समान आपकी ताकत नहीं बनेगी। यदि आप एक हो जायँगे, तो आपकी मजबूत रस्सी बनेगी। फिर जो बेदखली करनेवाले हैं, वे भी उस प्रेम-रज्जु से बँध जायँगे।

दुद्दा (मैसूर)
४-१०-'५७

व्यापारी समाज-सेवा का कार्य करें : ४५ :

अपने देश में प्राइवेट सेक्टर बनाम पब्लिक सेक्टर का एक बड़ा झगडा चल रहा है और चूँकि सरकार समाजवादी ढाँचा (सोशलिस्ट पैटर्न) चाहती है, इसलिए धीरे धीरे वह प्राइवेट सेक्टर का प्रतिशत कम करना चाहती है और पब्लिक सेक्टर का प्रतिशत बढ़ाना चाहती है। मंत्री इस तरह कहा भी करते हैं। यह सब सुनकर व्यापारी घबरा जाते हैं। तब फिर सरकार कहती है कि इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। फिलहाल दोनों सेक्टर साथ साथ चलेंगे। प्राइवेट सेक्टर को उसम अच्छा स्थान रहेगा, किन्तु बाद में जैसे जैसे पब्लिक सेक्टर की शक्ति बढ़ेगी, वैसे वैसे प्राइवेट सेक्टर कम होता चला जायगा।

प्राइवेट सेक्टर बनाम पब्लिक सेक्टर

अभी प्राइवेट सेक्टर ८०% है, तो पब्लिक सेक्टर २०%। कल देश प्रगति करेगा, तो प्राइवेट सेक्टर ७०% हो जायगा और पब्लिक सेक्टर ३०%। इस तरह जैसे जैसे एक बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे दूसरा घटता जायगा। यह आज की विचार पद्धति है। लेकिन हम कहते हैं कि पब्लिक सेक्टर १००% होना चाहिए और प्राइवेट सेक्टर भी १००% होना चाहिए। सर्वोदय में

दोनों एकरूप हैं। मैं अक्सर मिसाल देता हूँ कि हाथ से जो काम होता है, वह अँगुलियों से ही होता है और जो अँगुलियों से होता है, वह हाथ से ही होता है। हाथ और अँगुलियों के बीच घटने बढ़नेवाला कोई प्रतिशत नहीं है। प्राइवेट सेक्टर अँगुलियाँ हैं और पब्लिक सेक्टर हाथ। इन दोनों के बीच विरोध नहीं होना चाहिए।

आध्यात्मिक बुनियाद

व्यापार के बिना किसीका काम नहीं चलता। लेकिन हमारे इस देश में व्यापार को व्यावहारिक ही नहीं, आध्यात्मिक भी माना गया है। 'कृषिगोरक्ष-वाणिज्यम्' वैश्य का धर्म व्यापार करना है। अगर वह व्यापार नहीं करता, तो कर्तव्य से च्युत होता है। प्रामाणिकता और निष्काम बुद्धि से अपना कार्य करने वाला व्यापारी मोक्ष का वैसा ही अधिकारी है, जैसा कि वेदाभ्यासी ब्राह्मण। व्यापारी अच्छा काम करेगा, तो लोगों का उस पर भरोसा रहेगा और वह अच्छा पैसा कमायेगा, यह तो दुनिया जानती है; लेकिन अच्छा व्यापार करने से वह मोक्ष भी पायेगा, यह सिर्फ हिन्दू-धर्म में ही है। इस तरह हमारे यहाँ हिन्दुस्तान में व्यापार का एक स्वतंत्र स्थान है। इस देश की और दूसरे देश की सामाजिक और आर्थिक विचारधारा में यही अन्तर है। इसीलिए यहाँ भूदान-ग्रामदान चलता है। दूसरे देशों में ऐसा काम होता तो वह ऐहिक नहीं, स्वर्गीय माना जाता; यथार्थ नहीं, आदर्श माना जाता; किन्तु हिन्दुस्तान की जनता के लिए यह काम आदर्शमूलक भी है और यथार्थमूलक भी। यहाँ के लोग इसे व्यावहारिक कार्य समझते हैं और यह कार्य भी लोगों के हृदयों को खींचता है। ऐसा क्यों है? इसलिए कि अपने देश की सभ्यता में व्यापार, कृषि आदि कार्य सिर्फ व्यावहारिक ही नहीं, धार्मिक कार्य भी माने गये हैं। जो शख्स प्रामाणिकता और निष्काम बुद्धि से यह कार्य करता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। इसी बुनियादी श्रद्धा पर आधार रखकर हम आज घूम रहे हैं। हमारे कार्य के नीचे ठोस आध्यात्मिक बुनियाद है।

अधिकारप्रदत्त लोकतंत्र

आज दुनियाभर में दो महत्त्व के कार्य हैं : समाज सेवा का कार्य और धार्मिक कार्य। ये दोनों कार्य हमने प्रतिनिधियों को सौंप दिये हैं। कुछ प्रतिनिधियों को हम सरकार में भेजते हैं। उनका काम होता है—सेवा करना, उसके लिए चाहे वे कर लगायें या कोई दूसरे उपाय करें। धार्मिक कार्य हमने मंदिर, मस्जिद और चर्चवालों को सौंप दिये हैं। हमारे हाथ में अब खाने-पीने के अलावा कुछ नहीं बचा है। खाना पीना ठीक तरह से न मिले, तो हम शिकायत करते हैं कि हमने जिन प्रतिनिधियों को चुना है, वे लायक नहीं हैं। हम खुशी होते हैं, तो उनकी स्तुति करते हैं और दुःखी होते हैं, तो निंदा करते हैं। इस तरह हमारे हाथ में केवल स्तुति या निंदा ही रह जाती है। कोई स्वतंत्र पुरुषार्थ हम नहीं करते। आजादी के लिए यह बड़ी खतरनाक बात है। इससे हमारा विकास नहीं होता। यहाँ बीमारी फैली है और उसकी चिंता सरकार करेगी, तो आप क्या करेंगे ? आप चाय पियेंगे। फिर सरकार चाहे तो चाय पर कर लगाये और उस पैसे से अस्पताल खोले। आपके हृदय को चाय का ही स्पर्श होता है, भूत दया का नहीं।

आजकल होता यह है कि आप ज्यादा चिट्ठियाँ लिखें, ज्यादा रेल-सफर करें, ताकि सरकार को पैसा मिल सके और कुछ सेवा-कार्य हो सके। इस प्रकार सारा सेवा कार्य अप्रत्यक्ष रूप से चलता है। भूत-दया का काम सरकार करे, साहित्य को उत्तेजन सरकार दे, कानून सरकार बनाये, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, व्यावहारिक शिक्षण विषयक साहित्य के कार्य भी सरकार करे। आपके जरिये सरकार को ज्यादा कर मिले और 'हाँ ना' करते हुए आप उन्हे उत्तेजना दे दें, इतना ही आज होता है। इससे देश बनेगा नहीं।

समाज-सेवा का कार्य उठायें

हम चाहते हैं कि समाज-सेवा का मुख्य कार्य समाज उठा ले और गौण कार्य सरकार। जब सरकार और जनता दोनों इकट्ठी होती हैं, तब ताकत पैदा होती है। हमने कई बार कहा है कि जनता एक है और सरकार शून्य। एक और शून्य

के जोड़ से बड़ी ताकत पैदा होती है। दोनों को अलग करने से सरकार की ताकत शून्य है, परन्तु जनता की कुछ ताकत है। सरकार शून्य है, फिर भी उसका एक स्थान है, उपयोग है, ताकत है। आप ही ने सरकार को ताकत दी है। उसके पीछे आपकी सम्मति है। इसलिए मुख्य ताकत आपकी है। कभी कभी ऐसा होता है कि कोई व्यापारी अपना कारोबार चलाने के लिए मुनीम रखता है और खुद खेल, तमाशे, सिनेमा मे ही फँस जाता है, तो आखिर वह मुनीम ही मालिक बन जाता है। उसी तरह आज हम लोग, जिन्होंने अधिकार प्रदान किया है, कुछ नहीं करते और नौकर ही मालिक बन जाते हैं। इस दुश्चक्र से अगर बाहर निकलना है, तो जनता का सेवा कार्य जनता के हाथ में आना चाहिए। सरकार के हाथ में सयोजन का कार्य हो। परराष्ट्र विषयक तथा रेलवे आदि का काम सरकार सँभाले, बाकी काम जनता स्वतन्त्र रीति से स्वय करे। ऐसा करने से ही वास्तविक स्वराज्य होगा तथा देश और दुनिया का हिंसा से छुटकारा होगा।

अंग्रेजों का राज्य क्यों पनपा ?

जनता अपने हाथ में कारोबार ले यानी जिन लोगों में प्रबन्ध करने की शक्ति है, ऐसे पढ़े लिखे लोग लें। शेष जनता में यह ताकत नहीं है। सामान्य जनता अपना अपना देख लेती है, किंतु पूरे देश की जिम्मेवारी पढ़े लिखों पर ही आती है। इसमें भी सबसे अधिक जिम्मेवारी व्यापारियों पर आती है। अगर भारत के व्यापारियों का देश की जनता के साथ प्रेम सम्बन्ध होता, दोनों का एक दूसरे के प्रति प्रेम और विश्वास होता, दोनों ने अपने-अपने धर्म का पालन किया होता, तो अंग्रेज यहाँ की भूमि मे पैठ नहीं सकते थे। अंग्रेज व्यापारी के रूप में ही आये थे। सात हजार मील दूर से वे यहाँ आये और यहाँ के व्यापारियों को उखाड़कर अपना प्रभाव जमा लिया। यह इसलिए सम्भव हो सका कि यहाँ की जनता और व्यापारियों के सम्बन्ध मधुर और प्रेमल नहीं थे। सामान्य जनता अंग्रेजों के प्रलोभन में नहीं आयी। वह तो त्रस्त ही थी। व्यापारी उसे लूटते थे। अंग्रेज लोग स्वतन्त्र बुद्धि थे। यहाँ के व्यापारी नहीं जानते थे कि

देश की पैदावार का इंतजाम कैसे किया जाय, उद्योग धंधों का विकास कैसे किया जाय। व्यापारियों की सुयोग्य योजना के अभाव में हिन्दुस्तान अंग्रेजों के द्वारा जीता गया। अगर व्यापारियों के पास सुयोग्य योजना होती और वे अपने धर्म का पालन करते होते, तो अंग्रेज लोग भारत को जीत नहीं सकते थे।

अंग्रेजों ने अपनी बुद्धि से काम लिया और त्रस्त लोगों की सद्भावना का लाभ उठाया। यहीं के लोगों की सेना बनायी, एक-दूसरे को लड़ाया और फिर राज्य पर कब्जा कर लिया। अगर यहाँ के व्यापारी अपनी महा-जनता की जिम्मेवारी महसूस करते और अपने को देश के लिए जिम्मेवार समझते, तो यह न होता।

सरकार और व्यापारियों में विरोध अनुचित

आज सरकार और व्यापारी एक-दूसरे का विरोध करते हैं। व्यापारी सरकारी कानूनों के खिलाफ काम करते हैं और सरकार कानून बनाने के पहले व्यापारियों की सलाह नहीं लेती। सरकार समझती है कि व्यापारी स्वार्थी होते हैं। हिन्दुस्तान के व्यापारियों का ऐसा समझना गलत है। छोटे छोटे व्यापारियों की बात छोड़ दें। वे तो बेचारे दुःखी ही हैं। लेकिन जिनकी कुछ हैसियत है, वे केवल स्वार्थी ही नहीं होते, उनमें सज्जनता भी होती है। मुश्किल यही है कि उनकी और सरकार की बुद्धि एक नहीं है। अलग-अलग दिशाओं में जाती है। इससे देश की ताकत नहीं बनती।

आजकल लोग सोचते हैं कि यदि सारा कारोबार सरकार के हाथों में जाय, राष्ट्रीयकरण हो तो ठीक। किंतु रेलवे का राष्ट्रीयकरण हो जाने से क्या फर्क हुआ? आखिर तो देश का चरित्र क्या है, यही मुख्य बात है। व्यापारी और सरकारी कर्मचारी, दोनों एक ही देश के हैं। आज क्या सरकार के हाथ में कम सत्ता है? अब उसमें व्यापार को भी जोड़ देंगे, तो सोचने की बात है कि रामराज्य कैसे बनेगा?

कल्याणकारी राज्य की खतरनाक कल्पना

सरकार का काम माला जैसा है। वह पिरोनेवाला धागा है। प्राइवेट सेक्टर

तो फूल हैं। फूल जितने कम होंगे, धागा उतना ही अधिक दिखाई देगा। बीच-बीच में धागे का दिखाई पड़ना ठीक नहीं है। वास्तव में तो सरकार है ही नहीं, ऐसा महसूस होना चाहिए।

भारत में नास्तिकवाद चलता है। नास्तिक लोग कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। हम उनसे कहते हैं कि ईश्वर की ओर से आपको ऐसा कहने की सुविधा मिली हुई है। ईश्वर ने ऐसी विकेंद्रित योजना बना दी है कि वह स्वयं गायब-सा दीखता है। ईश्वर ने प्रत्येक को अक्ल बाँट दी है। अगर ईश्वर ने अपनी अक्ल का भंडार वैकुंठ में रखा होता और जरूरत के अनुसार बाँटता रहता, तो वह बेचारा काम करते करते पसीना-पसीना हो जाता। आप हमारे मंत्रियों को देखते हैं न! कितनी कम जवाबदारियाँ उन पर हैं; फिर भी वे कितने परेशान रहते हैं! तब बताइये ईश्वर की क्या गति हुई होती। लेकिन उसकी इतनी उत्तम व्यवस्था है कि व्यवस्थापक का दर्शन ही नहीं होता। यही सर्वोत्तम व्यवस्था का लक्षण है। लेकिन उसे भी बीच बीच में अवतार लेना पड़ता है। अर्थात् व्यवस्था में कहीं न कहीं कुछ कमी रह गयी है। इसी तरह सरकार का जितना कम दर्शन होगा, उतनी ही वह उत्तम मानी जायगी। लेकिन आज तो कदम कदम पर सरकार का दर्शन होता है। साहित्य, शिक्षण हर क्षेत्र में सरकार का दर्शन होता है। समाज-सुधार और भूमि सुधार के रक्षण के क्षेत्र में भी सरकार का दर्शन होता है। हर जगह के लोग सरकार से कहते हैं कि हमारे लिए अस्पताल खोलिये, स्कूल खोलिये। इस तरह कल्याणकारी राज्य के नाम पर सरकार का काम बढ़ रहा है। पहले जो राज्य होता था, वह पुलिस-राज्य कहलाता था, जो कि विकसित नहीं माना जाता था। अब विकास हुआ है, तो सरकार ने कल्याण का जिम्मा उठाया है, मानो वह छोटे बालकों की माँ बाप बनी है और उनके हित में काम करती है।

कल्याणकारी राज्य की कल्पना नयी नहीं है, वह पुरानी ही है। अच्छे नृपति के वर्णन में कालिदास ने कहा है : "कुल कार्य राजा करता है। प्रजा को शिक्षा देना, उसका रक्षण, भरण पोषण करना आदि सारे काम वही करता है, इसलिए वही बाप है—'स पिता'। और राज्यभर में जो दूसरे बाप हैं, उनका

काम केवल बच्चे पैदा करना है—'पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः'।" हमें तो यह बड़ा खतरनाक वर्णन लगा। यह पढ़कर हम तो दंग रह गये, डर गये कि सारे पिता केवल उत्पादन के यन्त्र बने रहें और राजा ही कुल काम करे, यह भयानक बात है। इसीका नाम है—कल्याणकारी राज्य। कल अगर मातृ पितृ कार्य भी सरकार के जरिये होना सम्भव हो, तो होगा।

व्यापारी ट्रस्टी बनें

यहाँ सवाल उठाया गया था कि सम्पत्तिदान देने से सरकार आपको आय-कर से बचायेगी या नहीं और उसका जवाब भी दिया गया। ऐसे सवाल और जवाब बेकार हैं। हम चाहते हैं कि आपके हाथ से सेवा कार्य हो। वैसे रजिस्टर्ड संस्था को दान देने से आप कर से बचेंगे। हम तो यह चाहते हैं कि एक दिन ऐसा आये, जब आप पूरा का पूरा काम अपने हाथ में ले लें। तब तो सरकार को कम से कम देना पड़ेगा। तब राज्य ही समाप्त हो जायगा। परन्तु तब तक सरकार से बचकर रहना ठीक नहीं है। सरकार को जो देना है, सो दीजिये और बचे हुए का दान पूरे दिल से दीजिये। हम अपने बच्चे को मदद देते समय यह नहीं सोचते कि इससे कर से बचेंगे। उसे हम अपना जीवन कार्य समझते हैं। उसी तरह से सम्पत्तिदान को भी समझें। हम आपका सिर्फ पैसा ही नहीं चाहते, आपकी बुद्धि भी चाहते हैं। हिन्दुस्तान में प्रबन्ध करने की शक्ति ज्यादा से ज्यादा अगर किसीमें है, तो व्यापारियों में है। लोकतन्त्र में वह शक्ति सबमें आनी चाहिए। चाहे वह ५० साल में आये, पर हम आशा करते हैं कि वह आयेगी। लेकिन आज हालत ऐसी है कि वह शक्ति व्यापारियों में है, दूसरों में नहीं। इसलिए आपको ट्रस्टी बनना चाहिए, जैसा कि गांधीजी हमेशा कहते थे। आपको ट्रस्टी की हैसियत से सोचना चाहिए कि हमें क्या करना होगा। ग्रामदान के काम के लिए कार्यकर्ता चाहिए, तो आप खड़े कर सकते हैं। वे काम करेंगे और उनके पुण्य में आपका हिस्सा होगा। जनता की क्रयशक्ति बहुत कम है। इसलिए हम सर्वोदय का साहित्य पूरे दाम में बेचें, तो महँगा हो जाता है। इसलिए साहित्य को सस्ता बनाने का जिम्मा

भी आपको उठाना चाहिए। आप जो दान देंगे, उस पैसे का उपयोग इन तीन कामों मे तुरन्त करना चाहिए। दानपत्र के कागज पड़े नहीं रहने चाहिए।

देश मे आंतरिक शांति

चुनाव के कारण जातिभेद को नया जीवन मिला है। सब बड़े बड़े नेता भी कबूल करते हैं कि चुनाव के कारण जातिभेद बढ रहा है। चुनाव के कारण गाँव गाँव में आग लग जाती है। अगर आज के जैसी जगह जगह शाति रखने के लिए पुलिस और सेना भेजने की जरूरत पड़ेगी, तो कितना खतरा है। उसके लिए आप कितनी सेना रखेंगे? इस तरह यदि जगह जगह झगड़े चलेंगे, तो देश पर पाकिस्तान का हमला भी हो सकता है। इसलिए देश में अदरूनी शाति बहुत आवश्यक है। हम चाहते हैं कि बँगलोर में समाज सेवा और शाति सेना का काम व्यापारियों को उठाना चाहिए। आप घर घर जाकर लोगों के दु.खों को जानेंगे और फिर आपस में चर्चा करके दु.ख निवारण की कोशिश करेंगे, तो समाज में मधुरता, मिठास पैदा होगी।

व्यापारी ही सेना की माँग भी करते हैं

सेना की माँग ज्यादा से ज्यादा व्यापारी ही करते हैं। कहीं जरा सी लड़ाई हो जाय, तो व्यापारियों को खतरा मालूम होता है और अपने बचाव के लिए वे सेना की माँग करते हैं। अभी स्वेज नहर का झगड़ा चल रहा था, विश्व-युद्ध तो शुरू नहीं हुआ था, मामूली लड़ाई ही चल रही थी, परन्तु कुल आयात निर्यात पर उसका असर हुआ था। उस समय आपकी सारी पंचवर्षीय योजना डाँवाडोल थी। चूँकि उसका दारोमदार आयात निर्यात पर ही है, इस लिए लड़ाई की सूरत में सारी योजना ताश के पत्तों के घर जैसी गिर जायगी। वह तो तब बचेगी, जब आप और हम जगह जगह प्रबंध करें, नहीं तो कल्याण-कारी राज्य के द्वारा ही सारा काम चलेगा, जगह-जगह पुलिस और सेना के जरिये काम चलेगा, तो देश के लिए बड़ा खतरा है। आज देश में सर्वत्र असतोष है। जातिभेद, भाषाभेद, धर्मभेद, छुआछूत, शरणार्थियों की समस्या आदि सब तरह तरह के दु:ख हैं। हिन्दुस्तान में समस्याओं की

कोई कमी नहीं है। अभी डाक विभागवालों की हड़ताल की बात चली थी। बड़ी भयानक बात थी। आखिर वह किसी-न-किसी तरह टल गयी। लेकिन यदि वह होती, तो कुल कारोबार ठप हो जाता। सारा व्यापार-व्यवहार खतरे में था। आज देश में हर जगह असंतोष है। लोगों की तरफ से पत्थर फेंके जाते हैं और सरकार की तरफ से गोलियाँ चलायी जाती हैं। इस तरह एक ओर से पत्थरबाजी हो और दूसरी ओर से लोहशास्त्रों का प्रयोग हो, तो देश की ताकत खतम हो जायगी। इसे कल्याणकारी राज्य का नाम दिया जायगा, परन्तु कुल देश खतरे में रहेगा। इसलिए यदि आप सम्पत्तिदान देंगे और उससे आपके पैसे का उपयोग होगा, तो यह बात तो छोटी सी है, परन्तु शांति सेना के काम में यदि उसका उपयोग होगा, तो वह बड़ी बात होगी। इस काम में हर घर से हिस्सा मिलना चाहिए। आज आप रखवाले रखते हैं और पुलिस के लिए खर्च करते हैं। जब देश के लिए खतरा होता है, तो व्यापारी डगमगा जाते हैं और पुलिस की माँग करते हैं। इस तरह व्यापारियों को पहला खतरा होता है। दुनिया में कहीं भी कोई घटना घटी, तो बम्बई के शेयर बाजार पर उसका असर होता है। जैसे थर्मामीटर में पारा थोड़े से स्पर्श से बढ़ता या घटता है, वैसे ही शेयर बाजार भी एक ऐसा 'सेंसिटिव' (स्पर्शसहिष्णु) यन्त्र है कि दुनिया के किसी भी कोने में अशांति हुई, तो वहाँ एकदम अंतर आ जाता है। जब आपके बाजार-भाव भी अमेरिका से निश्चित होकर आते हैं, तो व्यापार भी आपके हाथ में कहाँ है ? कपास के भाव एक तो यहाँ की बारिश पर निर्भर होते हैं और दूसरे अमेरिका पर। याने इधर से आसमानी और उधर से सुलतानी ! इसलिए अशांति की सूरत में सेवा की पहली माँग व्यापारियों की तरफ से होती है। वह ठीक भी है, क्योंकि वे पैसा रखते हैं।

हिंदुस्तान के व्यापारी ज्यादा से ज्यादा डरपोक होते हैं। उसका कारण है, यहाँ की योजना में कुछ गलती का होना। जैसे चातुर्वर्ण्य एक बड़ी सुन्दर योजना है, जिसमें कहा गया है कि यदि हर कोई अपना-अपना काम निष्काम बुद्धि से करे, तो उससे मोक्ष पा सकता है। परन्तु इसमें यह बात ध्यान में नहीं आयी कि हर वर्ण चारों वर्ण बनें। क्षत्रिय प्रधानतया क्षत्रिय हो, परन्तु उसमें

चारों वर्णों के गुण हों। रक्षा का काम उसका अपना वर्गीय कार्य है। इस तरह रक्षा करे क्षत्रिय और पैसा सँभाले व्यापारी। इस हालत में पैसा सँभालनेवाला ज्यादा-से-ज्यादा डरता है, क्योंकि उसके हाथ में रक्षा की शक्ति नहीं है। वह समझता है कि कोई क्षत्रिय, कोई पुलिस या सेना मेरी रक्षा करेगी। इसलिए व्यापारियों को ठीक से नींद भी नहीं आती। मान लीजिये कि कहीं पंजाब की तरफ अपनी सेना ५० कदम पीछे हटी, तो व्यापारी को खाना हजम नहीं होगा, वह व्याकुल हो उठेगा; क्योंकि रक्षण का काम उसके हाथ में नहीं है और पैसा सँभालने का काम उसके हाथ में है। तलवार इसके हाथ और पैसे की थैली उसके हाथ! कहीं चोरी हो, तो उसीके घर होगी। इस तरह क्षत्रिय के पास रक्षण के लिए तलवार है, परन्तु खतरे के लिए पैसा नहीं है। व्यापारी के पास पैसा है, परन्तु तलवार नहीं है। इसलिए देश के लिए अधिक-से-अधिक सेना की माँग अगर कोई करेगा, तो व्यापारी ही करेगा। इसलिए व्यापारी के हित में यह बात है कि सेना पर इतना पैसा खर्च करने की अपेक्षा अपने कम-से-कम पैसे में देश में शांति रखने का काम करे।

सर्वोदय से रक्षण-समस्या भी हल होगी

अगर अहिंसा के जरिये देश में शांति नहीं होती है, तो सर्वोदय खतरे में है। ग्रामदान से हमारी प्रतिष्ठा कुछ बढ़ी है। सर्वोदय-विचारवाले केवल हवा में काम नहीं करते, जमीन पर भी करते हैं, यह दृष्टि सबमें आनी चाहिए। ग्रामदान से आर्थिक सवाल कुछ अंशों में हल हो सकते हैं, इतनी इज्जत सर्वोदय को मिली है। परन्तु हमारी पूरी इज्जत खतरे में है, अगर हम रक्षण नहीं कर सकेंगे। सर्वोदय रक्षण न कर सके, तो ग्रामदान खतरे में है। तिरुमंगलम् तालुका में इतने ग्रामदान हुए, परन्तु उसके नजदीक ५० मील पर रामनाड-पुरम् में दंगे हुए। अगर ये दंगे ग्रामदान के क्षेत्र में भी फैलेंगे, तो ग्रामदान मृगजल साबित होगा। अगर हम देश का रक्षण सेना पर रखते हैं, तो अहिंसा की प्रतिष्ठा खतरे में है। इसलिए नेताओं के सम्मेलन में ग्रामदान का प्रस्ताव हुआ, परन्तु हम तो शांति सेना की ही बात बोलने लगे। केरल में तो शांति-

सेना का आरंभ हो भी चुका है। यहाँ अभी हम शांति-सेना का नाम नहीं लेंगे, उतनी योग्यता नहीं आयी है, अभी सेवा सेना का ही नाम लेंगे।

व्यापारी ही संपत्तिदान के पैसे का व्यय भी करें

अगर व्यापारी इस काम को उठायेंगे, तो उनकी इज्जत बढ़ेगी और गीता ने जो कहा है, वह स्थान उन्हें प्राप्त होगा। आज व्यापारियों के बिना कहीं भी नहीं चलता है। फिर भी सब लोग व्यापारियों की निंदा करते रहते हैं। एक मामूली आदमी, जिसे कुछ भी अनुभव नहीं है, सभा में उठ खड़ा होता है और व्यापारियों को गालियाँ देता है। इसका अर्थ इतना ही है कि व्यापारी व्यापार के साथ-साथ समाज सेवा का काम करें। आज वह जिम्मा सरकार पर सौंपा गया है। हम चाहते हैं कि व्यापारी यह काम उठायें। आपको सलाह देने के लिए सर्व सेवा-संघ निमित्त के रूप में रहेगा। आप दोनों में पूरा सहयोग हो, आप एकरस होकर काम करें।

संपत्तिदान के पैसे का खर्च आपको ही करना होगा। इस बारे में आप मुझसे क्यों पूछते हैं? पैसा कमानेवाले आप हैं और इंतजाम करनेवाला क्या मैं हूँ? सम्पत्तिदान में निधि से बिल्कुल उलटी बात होती है। 'फंड' में लेनेवाले बँध जाते हैं और देनेवाले छूट जाते हैं। फिर उस पैसे का विनियोग, रक्षण आदि सब लेनेवाले को ही करना पड़ता है। लेकिन सम्पत्तिदान में हम पैसा अपने हाथ में नहीं लेते। देनेवाले को ही यह सब जिम्मेवारी उठानी पड़ती है। शादी करके आप बँध जाते हैं या छूट जाते हैं? तो फिर सम्पत्तिदान देकर छूटना क्यों चाहते हैं? हम चाहते हैं कि आप दान देकर बँध जाइये। आपकी बुद्धि व्यापार में रहे और पैसा यहाँ आये, यह ठीक नहीं है। पैसे लेनेवाले को वह ज्ञान नहीं होगा, जो आपके पास है। कहीं कुँआ बनाना हो, तो आप दो हजार रुपये में बनायेंगे, लेकिन बाबा चार हजार रुपयों में बनायेगा; क्योंकि बाबा को कुँआ बनवाने की अक्ल नहीं है। आपमें पैसा कमाने की अक्ल है। इसलिए जो जिस काम में प्रवीण हो, वही वह काम करे। आप दान देंगे और

आप ही खर्च करेंगे। हम तो मुक्त विहार करते रहेंगे। हम चाहते हैं कि आपका सिर्फ पैसा ही नहीं, बल्कि बुद्धि भी इस काम में लगे।

व्यापारी संपत्तिदान की राशि भी निश्चित करें

सम्पत्तिदान में कितना देना है, आप ही तय कीजिये। उससे उलटे आज आप बाबा से ही पूछते हैं कि बाबा, आपका क्या कोटा है? बाबा का कोटा क्या पूछते हैं, उसका तो इतना सा पेट है, उसको दो रत्तल दूध चाहिए। यह तो आपका काम है। आप हिसाब करके देखिये कि बँगलोर का काम कितने में होता है। पाँच रुपये में होता हो, तो पाँच रुपये दीजिये और पाँच लाख में होता हो, तो पाँच लाख दीजिये। बाबा का कोटा आप क्यों पूरा करेंगे, वह तो बाबा ही पूरा करेगा। बाबा का कोई भरोसा नहीं है। यदि आज ही रात को परमेश्वर उसे बुलाये, तो वह उसी क्षण चला जायगा। वह ईश्वर से यह नहीं कहेगा कि मेरा काम रुका हुआ है, ग्रामदान के काम के लिए मुझे १५ दिन यहाँ रखो। हम तो उससे कहेंगे कि तू चाहेगा, तो मैं तेरे दर्शन के लिए तैयार हूँ और तू मुझे यहाँ रखेगा, तो तेरे बच्चों की सेवा करूँगा। मेरे तो दोनों हाथ लड्डू हैं। इसलिए ध्यान में रखिये कि बाबा का कोटा कुछ भी नहीं है। उसका भार मत महसूस कीजिये। यह आपका काम है, ऐसा समझकर आप बँगलोर के लिए योजना कीजिये और कम-से-कम कितना करना पड़ेगा, इस पर सोचिये। वैसे काम तो अनंत, अपार हैं। आगे आपको देश का कुल-का-कुल काम करना है। परन्तु आज शांति सेना का काम उठा लीजिये। आगे आरोग्य, शिक्षण का भी काम आपको उठाना होगा। उधर राजाजी बी० सी० जी० (क्षय-निवारक टीका) के खिलाफ चिल्ला रहे हैं। परन्तु कौन पूछता है? यह क्यों होना चाहिए? सरकार जो दवा दे, वही सब जगह चले। लोगों का एलोपैथी (डॉक्टरी), होमियोपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा (नैचुरोपैथी) आदि जिस किसीमें विश्वास हो, उसे वे चलायें। सरकार सिर्फ सलाहकार के तौर पर मदद दे। यदि सरकार ही सारा काम करे और कराये, तो देश की उन्नति नहीं होगी। स्वराज्य के बाद करने योग्य कार्य जनता को ही करना चाहिए। याने जो

इन्तजाम करनेवाले हैं, वे ही काम उठायें। सरकार सिर्फ सलाह दे। आज तो व्यापारी सरकारी कानून के छिद्र देखते हैं, याने सरकार और व्यापारी इन दोनों में अक्ल की लड़ाई चलती रहती है।

धीरे-धीरे सरकार का कुल कार्य करें

आपने आय कर की रिआयत के बारे में जो सवाल पूछा, वह बहुत छोटा है। आपको पैसा देना होता और हमें करना होता, तो दूसरी बात थी। परन्तु यहाँ आप पैसा देकर छूट नहीं सकते। आपको तो धीरे-धीरे सरकार का कुल कार्य उठा लेना चाहिए। अगर हम सरकार से कहें कि आप अपना काम छोड़ दें और हम काम न करें, तो वह बनेगा नहीं। सरकार से हम यदि कहें कि आप पुलिस, सेना न रखें और हम स्वयं शांति का प्रबंध नहीं कर सकते हैं, तो वह नहीं बनेगा। हम इंतजाम करेंगे, तो सरकार खुशी से पुलिस और सेना कम करेगी। उसी तरह से हम शिक्षण भी अपने हाथ में लें और आध्यात्मिक शिक्षा देना शुरू करें। इस तरह धीरे-धीरे सरकार के काम कम होते जायँगे।

बॅंगलोर में सेवा-सेना का कार्य करें

फिलहाल आप बॅंगलोर के लिए सेवा-सेना का काम कीजिये। सेना शब्द का मतलब है, सेवा का आक्रमण। विश्वविद्यालय में जो ज्ञानी होते हैं, वे ऐसी विचित्र गायें हैं कि उनके स्तनों में दूध है, फिर भी वे स्वयं बछड़े को दूध नहीं पिलाती हैं, बछड़ा पास आये, तभी पिलाती हैं। लेकिन शंकर और रामानुज में ऐसा वात्सल्य था कि वे घर-घर जाकर ज्ञान देते थे। उनका ज्ञान प्रेरणादायी था। आज के प्रोफेसर उस तरह ज्ञान का आक्रमण नहीं करते हैं, क्योंकि उनमें वात्सल्य नहीं है। सेवा का भी आक्रमण होना चाहिए। हमारे सामने कोई दुःखी आये और हाथ फैलाये, तो हम उसे मदद दें, यह ठीक नहीं है। क्या हम अपने बच्चे को तब मदद देते हैं, जब वह हाथ फैलाये? तो जैसे बच्चे को मदद देते हैं, वैसी ही मदद दें। घर-घर जाकर लोगों के दुःख जान लें और उन्हें मदद पहुँचायें। वही सेवा सेना मौके पर शांति-सेना बनेगी। जहाँ ऐसी सेना होगी, वहाँ अशांति का कारण नहीं रहेगा। इसलिए खतरे का मौका कम

आयेगा। फिर भी कहीं भी आग लग सकती है। आज देश में आग लगाने के बहुत साधन मौजूद हैं। पार्टी भेद, जाति भेद, विषमता कायम है, समाज का ढाँचा बदला नहीं है, उस हालत में कहीं भी अशांति पैदा होगी। ऐसे समय जिन्होंने जनता की सेवा की होगी, वे ही शांति सैनिक बनेंगे और ठीक समय पर उनके बलिदान से शांति स्थापित होगी।

वाणिज्य-मंडल यह काम उठाये

वाणिज्य मंडल (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) को यह काम उठा लेना चाहिए। वाणिज्य मंडल तो शांति मण्डल (चेम्बर ऑफ पीस), अहिंसा मंडल (चेम्बर ऑफ नान वायलेंस), सेवा मंडल (चेम्बर ऑफ सर्विस) होना चाहिए। यह काम मंडल का भी है और व्यक्ति का भी। इसमें संयुक्त और व्यक्तिगत (ज्वाइंट और सेवरल) जिम्मेदारी होगी।

नायनल्ली (मसूर)
१३ १०-'५७

भारतीय व्यापारी जन-सेवक बनें : ४६ :

दैवी विरुद्ध आसुरी संपत्ति

सर्वोदय विचार की खूबी है कि इसमें विरोध पैदा होने के पहले ही शांत हो जाता है। यह एक विशेष विचार है कि मनुष्य मनुष्य के हितों में विरोध नहीं है। आजकल लोग समाज को दो टुकड़ों में बाँट देते हैं और उनके बीच विरोध की कल्पना करते हैं। फिर उस विरोध को मिटाने के लिए कई बातें खड़ी करते हैं। यह सबकी सब मात्र एक कल्पना-सृष्टि है। इसी कल्पना सृष्टि को राजनीति शास्त्र और समाजशास्त्र का रूप दिया गया है। इसलिए दुनिया में जहाँ-तहाँ झगड़े ही झगड़े चल रहे हैं। बहुसंख्यक के विरुद्ध अल्पसंख्यक का सवाल हर जगह खड़ा है। उससे समाज के दो टुकड़े बनते हैं और समाज को टुकड़ों में सोचने की आदत ही पड़ जाती है। विद्यार्थियों का एक

संघ बनता है, जो समझता है कि विद्यार्थियों के हित का ख्याल करने की जिम्मेवारी अपनी है। उसके अलावा सारी दुनिया मानो उनके खिलाफ खड़ी है। इस तरह विद्यार्थी विरुद्ध शिक्षक, बूढ़े विरुद्ध जवान, स्त्री विरुद्ध पुरुष, मजदूर विरुद्ध मालिक आदि पचासों विरोध निर्माण होते हैं। क्या ये सारे विरोध वास्तव में होते हैं? वास्तव में अगर कोई विरोध होता है, तो एक ही है—दैवी संपत्ति विरुद्ध आसुरी संपत्ति। दुर्गुण और सद्गुणों का विरोध है, जिसकी लड़ाई हरएक के दिल में चल रही है। हरएक के मन में कुछ अच्छी और कुछ बुरी वृत्तियाँ न्यूनाधिक प्रमाण में रहती हैं, जिनका झगड़ा चलता रहता है। मन बड़ा कुरुक्षेत्र है, उसके अलावा दुनिया में और कहीं भी झगड़ा नहीं है। अगर कहीं झगड़ा दीखता है, तो वह भीतर का प्रतिबिम्ब स्वरूप है।

व्यापारी लोभ-वृत्ति दूर करें

मैं लोभी हूँ, संग्रह करता हूँ। मेरे मन में लोभ का जो दोष पड़ा है, उसका परिणाम यह होता है कि समाज में दूसरा प्रतिलोभ पैदा होता है। फिर चोर निर्माण होते हैं। चोर तो निमित्तमात्र है। मेरे मन में जो लोभ पड़ा है, जो मुझे नाहक संग्रह करने के लिए प्रेरित करता है, वह चोर के रूप में बाहर दिखाई देता है। इस बात को मैं नहीं समझता हूँ, बल्कि उस चोर को अपना विरोधी मानता हूँ। वास्तव में उसके और मेरे बीच में विरोध नहीं है। वह चोर तो मैंने पैदा किया है। मेरे मन में अच्छी और बुरी वृत्तियों की जो लड़ाई चल रही है, उसमें अगर लोभ बलवान् बन गया, तो सामने वह चोर का रूप लेकर खड़ा होता है। मैं लोभ को यहीं निर्बल बना दूँ, तो वह चोर के रूप में बाहर खड़ा नहीं होगा। लेकिन मैं यह बात नहीं समझता और उस चोर के बंदोबस्त के लिए योजना करता हूँ—पुलिस, कोर्ट, अदालत, जज और जेल! लेकिन अपनी लोभ निवृत्ति की कोई योजना नहीं करता। अगर लोभ रहेगा, तो पुलिस और जेल के रहते चोर भी बना ही रहेगा। यह समझने की बात है।

जीवन को सामूहिक रूप देने की जरूरत

समाज में वर्गों की कल्पना करना ही गलत है। यह सारा वर्गों का विचार पश्चिम से आया है। इसके आधार पर पश्चिमवालों ने कई प्रकार के राजनैतिक विचार बनाये हैं। परन्तु राजनीति में यूरोप के लोग बहुत अपरिपक्व हैं। इन दिनों उन्होंने विज्ञान में बहुत प्रगति की है। हमें उनसे बहुत सीखना है। विज्ञान की हमें बहुत जरूरत है। इसलिए कि हम अहिंसा को बढ़ाना चाहते हैं। जितना विज्ञान बढ़ेगा, उतनी अहिंसा बढ़ेगी। विज्ञान से मनुष्य के हाथ में जो शक्तियाँ आयी हैं, वे मनुष्य को एकत्र रहने के लिए मजबूर करेंगी। सामूहिक साधना करने की जिम्मेवारी विज्ञान पैदा करेगा।

व्यक्तिगत साधना हिंदुस्तान में बहुत चली है, सामाजिक साधना भी कुछ चली है। इसीलिए भक्ति मार्ग बना है। हमारे यहाँ लोग मौज करने के लिए नहीं, बल्कि भक्ति के लिए इकट्ठा होते हैं। यह अपने देश की ताकत है। ब्राह्म-समाज, प्रार्थना समाज के जैसा कोई समाज नहीं बनाते हैं। लेकिन शाम को इकट्ठा होकर भगवान् का नाम लेते हैं, यह हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी सामूहिक वस्तु है। भक्ति-मार्ग ने साधना को सामूहिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया। अब सारे जीवन को ही सामूहिक रूप देने की जरूरत विज्ञान ने पैदा की है। भक्ति मार्ग का जो अरुणोदय रूप था, इसीकी प्रभा को अब विज्ञान रूपी सूर्य बढ़ा रहा है। यह एक बड़ी विचित्र बात मैंने आपके सामने रखी है, क्योंकि आजकल जो उठा, वह विज्ञान को अध्यात्म का विरोधी मानता है। यह गलत विचार है। विज्ञान अध्यात्म को परिपूर्ण बना रहा है। इसलिए हम विज्ञान को बहुत चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि विज्ञान की शक्ति से दुनिया बहुत आगे बढ़ेगी।

यूरोप और अमेरिका की कमी

यूरोप और अमेरिका का राजनीति शास्त्र बिल्कुल कच्चा है, उसी तरह उनका समाज-शास्त्र बिल्कुल पोला है। वे मानस शास्त्र भी विकसित नहीं कर पाये हैं। वे मन की विविध आकांक्षाओं, उसके विकारों का परीक्षण

और निरीक्षण करते हैं, उसीको मनोविज्ञान कहते हैं। परन्तु उन्होने मन को जीतने का शास्त्र नहीं बनाया है। उसके परिणामस्वरूप उनका समाज शास्त्र भी समाज को टुकड़ों में बाँटता है। उन्होंने परस्पर विरोधी हितों का विचार पैदा किया है और उसे वे यहाँ तक ले जाते हैं कि वे कहते हैं कि सृष्टि के साथ विरोध होता है। हम जमीन खोदते हैं, वह भी एक विरोध है। हम पेड़ों के फल छीनकर खाते हैं, तो पेड़ों के साथ हमारा विरोध होता है। इस तरह वे दुनिया में सर्वत्र विरोध ही देखते हैं। जिसे हम सेवा समझते हैं, जैसे पेड़ों की सेवा, प्राणियों की सेवा, उसे भी वे संघर्ष कहते हैं। पेड़ों के, प्राणियों के, पृथ्वी के साथ संघर्ष, इस तरह से उन्होंने संघर्ष की परिभाषा बनायी है। माता के स्तनों में दूध होता है, वह बच्चे को प्यार से दूध पिलाती है, यह हमारा दर्शन है। परन्तु उनका दर्शन यह है कि बच्चे के मुँह का माता के स्तन के साथ संघर्ष होता है और उसमें से दूध निकलता है। बच्चा उससे लाभ उठाता है। यह तो मैंने जरा विनोद किया।

पश्चिम का विज्ञान और पूर्व का समाज-शास्त्र

विज्ञान उनके समाज शास्त्र के खिलाफ खड़ा है और बावजूद इसके कि मनुष्य के हाथ में विज्ञान की खूब शक्तियाँ आयी हैं, फिर भी आज सर्वत्र भय ही भय है। जितनी विज्ञान की शक्ति पहले कभी नहीं थी, उतनी आज है। अब तो हम आकाश में ग्रहों को घुमा रहे हैं। इतनी सारी शक्तियाँ मनुष्य के हाथ में आयी हैं, तो समाज में कितना सुख होना चाहिए। परन्तु आज उल्टी ही बात दिखायी देती है। इस समय दुनिया में जितना ज्ञान है, उतना पहले कभी नहीं था और आज दुनिया में जितना भय है, उतना पहले कभी नहीं था। ज्ञान के साथ भय नहीं, निर्भयता होनी चाहिए। इसलिए हम पश्चिम का विज्ञान लेना चाहते हैं और यहाँ के समाजशास्त्र को, जो आत्मज्ञान पर खड़ा है, विज्ञान के साथ जोड़ना चाहते हैं। यह कार्य सर्वोदय कर रहा है।

सर्वोदय का वैज्ञानिक विचार यह है कि जनता की सेवा प्रतिनिधियों द्वारा नहीं होनी चाहिए। जनता को स्वयं यह काम करना चाहिए। पश्चिम की

पद्धति यह है कि जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है, जिनकी सरकार बनती है, जो सेवा करती है। फिर लोग बिलकुल पराधीन बन जाते हैं। इस तरह हमारा सारा भला-बुरा करने का अधिकार चंद लोगों के हाथ में सौंपना अत्यन्त खतरनाक है। इसलिए हमने व्यापारियों से अपील की कि आप लोग जन-सेवा में लग जायँ। आज आप जो व्यापार करते हैं, वह भी सेवा का एक प्रकार है। लेकिन आज उसे स्वार्थ का रूप मिला है। अगर उस काम के साथ आप सेवा करेंगे, तो आपका व्यापार मजबूत बनेगा और हिन्दुस्तान में स्वतंत्र जन-शक्ति विकसित होगी। हिन्दुस्तान की परतंत्रता व्यापारियों ने प्राप्त की है। अब हिन्दुस्तान की आजादी को मजबूत बनाने का काम भी व्यापारियों को करना चाहिए।

नायनहल्ली (मैसूर राज्य)
१३-१०-५७

उप-शीर्षकों का अनुक्रम

श

स

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

पुस्तक	मूल्य
शिक्षा में अहिंसक क्रांति	१.००
महादेवभाई की डायरी (१-२) प्रत्येक	५.००
अंतिम झाँकी	१.५०
बापू के पत्र	१.२५
अफ्रीका मे गांधी	१.००
गांधीजी और विश्वशांति	०.६०
गांधीजी क्या चाहते थे ?	०.५०
गीता प्रवचन १.२५, सजिल्द	१.५०
गीता प्रवचनानि (संस्कृत)	३.००, ४.००
शिक्षण विचार	२.५०
मोहब्बत का पैग़ाम	२.५०
नगर-अभियान	२.००
लोकनीति	२.००
भूदान-गंगा (सात खंड) प्रत्येक	१.५०
आत्मज्ञान और विज्ञान	१.००
सर्वोदय विचार व स्वराज्य-शास्त्र	१.००
ग्रामदान	१.००
स्त्री-शक्ति	१.००
ज्ञानदेव चिन्तनिका	१.००
साहित्यिकों से	१.००
शान्ति सेना	०.७५
कार्यकर्ता क्या करें ?	०.७५
कार्यकर्ता-पाथेय	०.५०
जय जगत्	०.५०
शुचिता से आत्मदर्शन	०.४०
साम्यसूत्र	०.३७
राम-नाम : एक चिन्तन	०.३०
सर्वोदय पात्र	०.२५
क्रान्त दर्शन	१.२५
प्रेरणा प्रवाह	१.२५
मधुकर	१.००
समग्र ग्रामसेवा की ओर (तीन खंड)	६.००
बुनियादी शिक्षा पद्धति	०.६०
शासनमुक्त समाज की ओर	०.५०
ग्राम-स्वराज्य : क्यों और कैसे ?	०.१५
ग्राम भारती	०.२५
संपत्तिदान-यज्ञ	०.५०
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२.५०
स्थायी समाज व्यवस्था	२.५०
अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया	२.५०, ३.००
सर्वोदय दर्शन	३.००
सत्य की खोज	१.५०
बोलती घटनाएँ (पाँच भाग) प्रत्येक	०.५०
माता पिताओं से	०.३७
बालक सीखता कैसे है ?	०.५०
बालक बनाम विज्ञान	०.७५
देर है, अन्धेर नहीं	०.७५
आर्थिक विचारधारा	६.००
चम्बल के बेहड़ों मे (संक्षिप्त)	१.५०
नक्षत्रों की छाया मे	१.५०
चलो, चलें मंगरौठ	०.७५
बाबा विनोबा (छह भाग)	१.८०
प्यारे भूले भाइयो ! (पाँच भाग)	१.५०
जाजूजी : जीवन और साधना	१.२५
भूदान-गंगोत्री	२.५०
कोरापुट में ग्राम-विकास का प्रयोग	२.००
भूदान यज्ञ : क्या और क्यों ?	१.५०
ग्रामदान क्यों ?	१.२५
धरतीमाता की गोद में	०.७५

सर्वोदय-विचार	०.७५
भूदान-आरोहण	०.५०
शोषण-मुक्ति और नवसमाज	०.६२
गाँव का गोकुल	०.२५
सामूहिक प्रार्थना	०.२५
सूत्रांजलि	०.२०
मानवता की नवरचना	२.५०
एशियाई समाजवाद	१.५०
लोकतान्त्रिक समाजवाद	१.५०
विश्वशान्ति क्या सम्भव है ?	१.२५
सर्वोदय और शासनमुक्त समाज	१.००
लोक-स्वराज्य	०.५०
समाजवाद से सर्वोदय की ओर	०.३७
वर्ग संघर्ष	०.६२
विदेशों में शांति के प्रयोग	०.७५
अहिंसात्मक प्रतिरोध	०.५०
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	०.२५
लोकशाही कैसे लायें ?	०.३०
चरखा संघ का इतिहास	५.००
बुनाई	४.००
कपास	२.५०
कताई-शास्त्र	२.००
चरखा संघ का नवसंस्करण	१.००
घरेलू कताई की आम बातें	१.२५
घरेलू कताई की आम गिनतियाँ	०.७५
कताई गणित (भाग १)	१.००
कताई गणित (भाग २, ३, ४)	प्रत्येक ०.७५
आगे का कदम	०.७५
दाँत बनाना	०.६०
खाद और पेड़ पौधों का पोषण	१.००
जापान की खेती	०.७५
सुधरे हुए खेती के औजार	०.५०
हाथ चक्की	०.५०
पशु लोक में पाँच वर्ष	१.००
गो सेवा की विचारधारा	०.५०
गो सेवा-गोष्ठी	०.५०
गो-उपासना	०.२५
घर-घर में गाय	०.२५
बच्चों की कला और शिक्षा	८.००
हमारा राष्ट्रीय शिक्षण	२.५०, ३.००
सफाई : विज्ञान और कला	१.००
सुन्दरपुर की पाठशाला	०.७५
पूर्व-बुनियादी	०.५०
सर्वोदय की सुनो कहानी (५ भाग)	१.२५
पहली रोटी	०.२५
चन्द्रलोक की यात्रा	०.२५
भूदान पोथी	०.२५
कुलदीप (नाटक)	०.२५
एक भेंट (नाटक)	०.६२
प्रायश्चित्त (नाटक)	०.२५
पावन-प्रसंग	०.५०
किशोरलालभाई की जीवन-साधना	२.००
गुजरात के महाराज	२.००
स्मरणांजलि	१.५०
मेरी विदेश-यात्रा	०.६२
यात्रा के पथ पर	०.५०
मेरा जीवन विकास	०.५०
जॉर्ज फॉक्स का सत्याग्रही जीवन	०.४०
स्वामी नारायणगुरु की जीवनी	०.२५
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि	१.५०
गृह-सेवा	१.२५
चरित्र सम्पत्ति	०.७५
सहजीवन सहअध्ययन : एक प्रयोग	०.८५
ताओ उपनिषद्	०.७५
नीति निर्झर	१.२५

VINOBA-PADAYATRA
IN
KERALA
MANJESWARAM (AUGUST 23, 1957)
MAGLAPPADY
KUMBALA
KASERGODE
UDUMA
PERIYA
KANJANGAD
NEELESWARAM
KARIVALLURE
PAYYANNURE
PAZHAYANGADY
PAPPINISSERY
CANNANURE
EDAKKAD
TELLYCHERY
MELADY
BADAGARA
KUNDOTTY
AREEKODE
EDWANNA
NILAMBUR
POOKOTTUMPADAM
PULLANKOD
CHERUVANUR
PALGHAT
ELAPPULLY
KOLLANKODE
AYHANY
TRICHUR
PUTHUKAD
CHALAKUDY
KARUKUTTY
KALADY
ALWAY
ERNAKULAM
NADAKKAY
VYKKAM
KALLARA
KOTTAYAM
CHANGANASSERY
LANNUR
ADUR
KOTTARAKARA
AYOOR
TRIVANDRUM
PARASSALA
(APRIL 10, 1957)
S CANARA
COORG
MYSORE
NILGIRIS
COIMBATORE
MADURA
RAMANADAPURAM
ARABIAN
SEA
INDIAN OCEAN